9

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

डा० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1991

सुविख्यात सांसद
मोनोग्राफ सीरीज

डा० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख

लोक सभा सचिवालय
नई दिल्ली
1991

539LS—2

लो० स० स० (सं० शो० सू० से०—पी० ए०) सु० सां० मो०/9

© लोक सभा सचिवालय, 1991

जनवरी, 1991

मूल्य: 30 रुपए

लोक सभा के प्रक्रिया तथा कार्य संचालन नियम (सातवां संस्करण) के नियम 382 के अधीन प्रकाशित तथा प्रबन्धक, फोटोलिथो विंग, भारत सरकार मुद्रणालय, मिण्टो रोड, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

आमुख

डा० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख उन विरले लोगों में से हैं, जिन्होंने एक सिविल सेवा अधिकारी, रिजर्व बैंक के गवर्नर, वित्त मंत्री और अग्रगण्य जननेता के रूप में देश के राष्ट्रीय जीवन में अपना योगदान दिया। उनका कार्यक्षेत्र और रुचियां वित्त से लेकर शिक्षा, योजना और समाज सेवा, बागवानी और भाषा विज्ञान जैसे विविध क्षेत्रों तक व्याप्त थीं।

डा० देशमुख ने 1919 में अपने राजनीतिक जीवन की शुरूआत की। पहली लोक सभा (1952—56) में अपनी अल्पकालिक किन्तु अविस्मरणीय कार्यावधि के दौरान उन्होंने जिस विशिष्टता और निष्ठा से कार्य किया, उससे उनकी ख्याति और भी बढ़ गई। विख्यात अर्थशास्त्री के रूप में उन्होंने संसद को वित्त और योजना के क्षेत्रों में अपने विशेष ज्ञान और अनुभव का परिचय दिया। वह 1950 में केन्द्रीय वित्त मंत्री और योजना आयोग के सदस्य बने और 1956 तक इन पदों पर कार्यरत रहे। वित्त मंत्री के रूप में उन्होंने देश के आर्थिक पुनर्निर्माण में प्रमुख भूमिका अदा की और भारत में नियोजित अर्थव्यवस्था की नींव रखी। यह निर्विवाद रूप से सत्य है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद के वर्षों में राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के निर्माण का कार्य डा० देशमुख के अनुभवपूर्ण मार्गदर्शन में शुरू हुआ और देश में अर्थव्यवस्था की नींव सुदृढ़ हो गई।

14 जनवरी, 1991 को डा० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख के जन्म दिवस के उपलक्ष में लोक सभा सचिवालय सुविख्यात सांसदों पर मोनोग्राफ श्रृंखला के अंतर्गत एक मोनोग्राफ प्रकाशित कर रहा है। हमें आशा है कि यह संक्षिप्त जीवन परिचय पाठकों को उनके जीवन एवं कार्य से कुछ हद तक परिचित करायेगा; सभा में दिये गये उनके भाषणों के माध्यम से पाठक यह जान पाएंगे कि एक अच्छे सांसद के रूप में उनका योगदान क्या था और यह भी कि उनमें किसी राजनैतिक लाभ अथवा प्रसिद्धि की लालसा नहीं थी तथा अपने राजनीतिक कार्यक्षेत्र में वह अपने स्वविवेक को ही अपना गुरू मानते थे और भारत को प्रगति के लिए ही पूर्णरूपेण समर्पित थे।

रवि राय
अध्यक्ष, लोक सभा
और
अध्यक्ष, भारतीय संसदीय ग्रुप

नई दिल्ली;
जनवरी, 1991

विषय सूची

आमुख

भाग एक

डा० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख

जीवनवृत्त

(1)

भाग दो

उनके विचार

अन्तरिम संसद/लोक सभा/राज्य सभा में डा० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख के चुनिंदा भाषणों से उद्धृत अंश

एक

आर्थिक और वित्तीय मामले

1

वित्त नियम संशोधन विधेयक

(15)

2

भारतीय आयकर (संशोधन) विधेयक

(19)

3

सामान्य बजट 1951-52

(26)

4

व्यक्ति की अधिकतम आय सीमा

(39)

5

खाद्य स्थिति

(46)

6

सम्पदा शुल्क विधेयक, 1953

(55)

7क और ख

प्रथम पंचवर्षीय योजना

(61 और 68)

8

भारतीय स्टेट बैंक विधेयक

(79)

9क और ख

भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) विधेयक

(86 और 104)

10

जीवन बीमा (आपातिक उपबंध) विधेयक

(114)

11

जीवन बीमा निगम विधेयक, 1956

(126)

दो

संवैधानिक और संसदीय मामले

12

राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव

(140)

13

संविधान (दसवां संशोधन) विधेयक, 1956

(अंतर-राज्य बिक्री और खरीद पर करों के बारे में)

(149)

14

सार्वजनिक निगमों पर संसदीय नियंत्रण

(160)

15

अध्यादेश जारी करना

(169)

16

आंध्र राज्य विधेयक

(177)

17

वित्त मंत्री पद से त्यागपत्र देते हुए जारी वक्तव्य

(186)

18
राज्य पुनर्गठन विधेयक
(192)

परिशिष्ट
डा० सी० डी० देशमुख: कालाक्रम
(216)

भाग एक

डा० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुखः जीवनवृत्त

डा० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख—जीवनवृत्त

डा० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख स्वातंत्र्योत्तर काल के अग्रणी और गतिशील जननायक थे, जिन्होंने स्वतंत्र भारत के वित्त मंत्री के रूप में देश के सुनियोजित आर्थिक पुनर्निमाण में प्रमुख भूमिका अदा की। चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख जैसे असाधारण प्रतिभा, योग्यता और साहस वाले व्यक्ति के लिये जिन्होंने विविध क्षेत्रों में अपना योगदान दिया, यह अलंकरण उनके सर्वथा उपयुक्त होते हुए भी न्याय नहीं कर पाएगा। उनका जीवनवृत तो सभी महान विद्वान, भाषाविद, कुशल वक्ता, बागवानी विशेषज्ञ, व्यावहारिक समाजसेवी, जनहित हेतु समर्पित और असाधारण योग्यता वाले सिविल सेवा अधिकारी के महान व्यक्तित्व को समेटे हुए है। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में कुशलतापूर्वक और उत्साहपूर्वक कार्य किया, जैसाकि उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि उन्हें सर्वाधिक संतोष और खुशी इस बात से मिली है कि उन्होंने कई उपवन सुनियोजित ढंग से लगाये और पाले पोसे है।

प्रारंभिक जीवन और कार्यक्षेत्र

चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख का जीवन जो विशिष्टता लिये हुए था वैसा बहुत कम भारतीयों में देखने को मिलता है। डा० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख भारत के बीसवीं सदी के महान सपूतों में से हैं। नौ भाइयों और बहनों में चिन्तामणि सबसे बड़े थे और उनके परिवार में सरकारी सेवा में जाने की परम्परा थी। उनके पिता, द्वारकानाथ गनेश देशमुख एक छोटे कस्बे के जाने माने वकील थे। अपनी धर्मपरायण माता भगीरथी बाई से चिन्तामणि में मानवता के प्रति प्रेम और अध्यात्म की भावना पैदा हुई।

14 जनवरी, 1890 को "मकर संक्रांति" जैसे पुनीत दिवस पर महाराष्ट्र के कोलाबा जिले के नाटा गांव में जन्मे इस बालक की नैसर्गिक प्रतिभा समय के साथ-साथ निखरती गई और चिन्तामणि ने छोटी उम्र से शिक्षा के क्षेत्र में विलक्षण सफलता प्राप्त करनी शुरु कर दी। उनकी हाई स्कूल शिक्षा बम्बई में 11 वर्ष की आयु में शुरु हुई, जहां उन्होंने निष्ठावान शिक्षक श्री आर० के० लागू से अंग्रेजी और संस्कृत, फ्रेंच और जर्मन सीखी।

1912 में उन्होंने बम्बई विश्वविद्यालय से मैट्रिक परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त किया। संस्कृत में पहला जगन्नाथ शंकरसेट वजीफा प्राप्त किया। अगले दो वर्षों में उन्होंने एलफिस्टन कालेज में "प्रिवियस" और "इन्टरमीडिएट" परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त किया। 1915 में वे जीसस कालेज, कैम्ब्रिज पहुंचे जहां उन्होंने 1917 में वनस्पति, रसायन और भू-विज्ञान की परीक्षाओं में प्रथम स्थान प्राप्त किया तथा वनस्पति विज्ञान में "फ्रेंक स्मार्ट पुरस्कार" प्राप्त किया। 1918 में "इंडियन सिविल सेवा" की खुली प्रतियोगी परीक्षा में जो कि तब लन्दन में हुआ करती थी, सफल हुए उम्मीदवारों की सूची में उनका नाम सर्वप्रथम था। उनके बारे में यह कहा गया कि उनकी सफलता का श्रेय उनकी विलक्षण स्मरण शक्ति और कड़े परिश्रम को जाता है किन्तु इससे भी इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि उनमें असाधारण योग्यता थी।

इग्लैंड में रहते हुए उन्होंने "इनर टेंपल" में कानून का अध्ययन भी किया और 1919 में कानून की अंतिम परीक्षा उत्तीर्ण की। परन्तु उन्होंने प्रशासनिक अधिकारी बनने का विकल्प चुना था इसलिए उन्होंने 1965 में ही वकालत को अपनी जीवन वृत्ति के रूप में अपनाया।

डा० देशमुख के विशिष्ट जीवन का प्रारम्भ नवम्बर, 1919 से हुआ। जब वह भारतीय सिविल सेवा में नियुक्त हो गये। वह ब्रिटिश सरकार के अधीन सरकारी सेवा में निरन्तर आगे बढ़ते रहे। सेंट्रल प्रोविन्सेज और बराड़ में सेटलमेंट आफिसर के रूप में कुछ समय (1926-31) तक कार्य करने के बाद वह राजस्व, वित्त, वाणिज्य और उद्योग तथा लोक निर्माण विभागों में सरकार के सचिव रहे। 1931 में उनका चयन दूसरी गोलमेज कांफ्रेंस के, जिसमें महात्मा गांधी ने भाग लिया था, सचिव के रूप में किया गया और वह फेडरल स्ट्रकचर कमेटी से सम्बद्ध रहे। 1939 में वह शिक्षा, स्वास्थ्य और भूमि विभाग में भारत सरकार के संयुक्त सचिव रहे और फिर भारतीय रिजर्व बैंक में पहले बैंक के केन्द्रीय बोर्ड में सरकार के निदेशक के रूप में और बाद में बैंक के केन्द्रीय बोर्ड के सचिव के रूप में नियुक्त किये गये। दिसम्बर 1941 में डा० देशमुख रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर के रूप में नियुक्त किये गये और इसके पश्चात् उन्होंने भारतीय सिविल सेवा से त्यागपत्र दे दिया।

गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक

अगस्त, 1943 में श्री जेम्स टेलर के पश्चात् डा० देशमुख रिजर्व बैंक के पहले भारतीय गवर्नर नियुक्त किए गए और उन्हें विश्व के युवा बैंक गवर्नरों की श्रेणी में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब उनको नियुक्त किया गया तब यह बैंक आरम्भिक अवस्था में था और यह केन्द्रीय बैंक केवल कुछ मूल कार्य ही करता था जैसे मुद्रा जारी करना,

वाणिज्यिक बैंकों, तथा केन्द्रीय और राज्य सरकारों के बैंकर के रूप में कार्य करना, देश में सरकार द्वारा लिये गये ऋण का प्रबंध करना। जुलाई, 1949 में सेवानिवृत होने तक उन्होंने इस बैंक को एक आधुनिक विकासोन्मुख बैंक बना दिया था और इसमें कुछ नये विभाग पूर्णतः कार्य करने लग गये थे और कई नये विभागों के गठन पर विचार किया जा रहा था। और कुछ का गठन किया जा रहा था। उनके द्वारा बनाये गये अनुसंधान और सांख्यिकी विभाग देश को आर्थिक नीति के निर्धारण में बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए। बैंकिंग विकास विभाग, औद्योगिक वित्त विभाग, भारतीय औद्योगिक वित्त निगम सभी उनकी सूझ-बूझ और दूरदर्शिता के प्रतीक हैं। डा० देशमुख की अध्यक्षता में ही गठित समिति को ग्रामीण ऋण और ग्रामीण तथा कृषि विकास वित्त विभाग की स्थापना के संबंध में सिफारिशें करने का दायित्व सौंपा गया। डा० देशमुख के गवर्नर के रूप में कार्यकाल में ही रिजर्व बैंक एक प्राइवेट शेयरधारियों के बैंक से बदलकर एक राष्ट्रीयकृत संस्था बना, किन्तु वह स्वतंत्र सलाहकार के रूप में आर्थिक तथा वित्तीय मामलों में सरकार को सलाह देने की अपनी भूमिका पूर्ववत् निभाता रहा।

डा० देशमुख ने 1944 में ब्रेटन वुड्स कांफ्रेंस में भारत का प्रतिनिधित्व किया जिसके द्वारा विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की स्थापना की गई और उन्होंने इन दोनों संस्थाओं के गवर्नर के रूप में कई वर्षों तक कार्य किया। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री लार्ड केनेस ने भी उनके योगदान की प्रशंसा की।

राजनीति में प्रवेश

राजनीति में देर से आने वाले डा० देशमुख ने यह कभी भी नहीं माना कि राजनीति की दांव-पेच भरी जिन्दगी उनके उपयुक्त है। अपनी इसी धारणा और विश्वास कि गैर-राजनैतिक और तकनीकी क्षेत्र में वह देश की बेहतर सेवा कर सकते हैं के कारण ही उन्होंने एग्जिक्यूटिव कौंसिल में वित्त सदस्य के पद को ठुकरा दिया जिसकी पेशकश भारत के तत्कालीन वायसराय, लार्ड वेवेल द्वारा 1946 में की गई थी।

सरदार पटेल ने एक बार डा० देशमुख से यह चर्चा की थी यह भारतीय मंत्रिपरिषद को वित्त मंत्री के रूप में सहयोग दें परन्तु उन्होंने घरेलू परिस्थितियों के कारण इसके लिये असमर्थता व्यक्त की। वित्तीय राजदूत के रूप में वह 1949 में संयुक्त राज्य अमरीका और यूरोप गये और उन्होंने संयुक्त राज्य अमरीका से गेहूं उधार लेने के लिये आरंभिक वार्ता की। इस यात्रा के पश्चात् प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने एक नदी घाटी परियोजना से संबंधित बजट में समायोजन करने के लिए उन्हें वित्त मंत्रालय की सहायता करने को कहा। बाद में उनसे योजना आयोग का गठन करने को कहा गया। जून 1950 में जब डा० जान मैथाई ने वित्त मंत्री के पद से त्यागपत्र दिया तब जवाहरलाल नेहरू द्वारा यह

पूछे जाने पर कि वित्त मंत्री किसे बनाया जाये। डा० देशमुख ने एन० गोपाल स्वामी आयंगर का नाम सुझाया। आयंगर ने लिखा कि इस पद के लिये डा० देशमुख ही उपयुक्त हैं। नेहरू के जोर देने पर डा० देशमुख इस पद को संभालने के लिये राजी हुए और पंजाब सरकार ने उन्हें अन्तरिम संसद के प्रतिनिधि के रूप में चुना। 1952 में उन्होंने कोलाबा संसदीय क्षेत्र बम्बई से प्रथम लोक सभा का चुनाव जीता और पुनः वित्त मंत्री नियुक्त किये गये।

डा० देशमुख के मंत्रिमंडल में शामिल होने पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित ने आशा व्यक्त की कि छोटे-मोटे राजनीतिज्ञों की हरकतों से उन्हें कोई परेशानी नहीं होगी। उन्हें इस बात का श्रेय जाता है कि अपने मंत्रिमंडल सहयोगियों से उनके संबंध बेहतर रहे। बम्बई को एक द्विभाषी राज्य रखे जाने के प्रश्न पर पंडित नेहरू से मतभेद होने के कारण उन्होंने 1956 में मंत्रिमंडल से त्यागपत्र दे दिया। इससे पहले उनके राजनैतिक जीवन का अध्याय समाप्त हो गया, किन्तु जन सेवा वह करते रहे।

वित्त मंत्री, आर्थिक नीति निर्माता और योजनाकार

ऐसे समय जबकि देश की आर्थिक स्थिति संतोषजनक नहीं थी, केन्द्रीय वित्त मंत्री का पद ग्रहण करते हुए उन्होंने एक विकासोन्मुख एवं व्यावहारिक वित्तीय नीति लागू की। डा० देशमुख ने 2 अगस्त, 1950 को संसद में अपने प्रथम भाषण में आर्थिक नीति के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए न केवल सरकार के लक्ष्य को स्पष्ट किया बल्कि देश के आर्थिक विकास के प्रति अपने दृढ़ विचारों को भी व्यक्त किया। उन्होंने मुद्रास्फीति रोकने, खाद्य, कपास और पटसन के मामले में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने, औद्योगिक उत्पादन को अधिकाधिक बढ़ाने और ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार पैदा करने, देश के संसाधनों का उपयोग अधिकाधिक लाभप्रद रूप से करने हेतु ठोस वित्तीय नीति तैयार की।

डा० देशमुख ने 1952 में अपने पूर्ववर्ती मंत्री, डा० जान मैथाई को कराधान जांच समिति की अध्यक्षता के लिए राजी किया। यह समिति डा० देशमुख ने तत्कालीन कराधान ढांचे में सुधार करने हेतु नियुक्त की थी। इससे पहले 1949 में उन्होंने डा० पी० सी० महालनोबिस के सहयोग से विशेष रूप से कृषि उत्पादन और राष्ट्रीय आय आंकड़ों को एकत्र करने की पद्धति में सुधार करने का कार्य किया और मंत्रिमंडल के सीधे नियंत्रण में एक केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय की स्थापना की। उन्होंने वित्त आयोग के गठन के संबंध में शीघ्र ही कदम उठाये और वित्त आयोग ने 1952 में अपनी पहली रिपोर्ट पेश की जिसमें केन्द्र और राज्यों के बीच राजस्व के वितरण के संबंध में मार्गनिर्देश सुझाये गये।

देश में योजनाबद्ध तरीके से काम करने की संभावनाओं का पता लगाने और योजना

सचिवालय बनाने का दायित्व पंडित नेहरू ने डा० देशमुख को सौंपा। योजना आयोग की स्थापना के लिए श्री एन० आर० पिल्ले और श्री त्रिलोक सिंह की सहायता से एक स्कीम का कच्चा मसौदा तैयार किया गया तथा 1 अप्रैल, 1950 को आयोग का उद्घाटन किया गया। डा० देशमुख योजना आयोग के सदस्य बनाए गए। आयोग के प्रमुख निर्देशपद ये थे: (एक) देश में उपलब्ध सामग्री, तकनीकी, पूंजीगत एवं मानव संसाधनों का मूल्यांकन करना, तथा इन संसाधनों को बढ़ाने की संभावना का पता लगाना; (दो) इन संसाधनों के प्रभावी एवं संतुलित उपयोग को सुनिश्चित करना; (तीन) प्राथमिकताएं निर्धारित करना तथा योजना के कार्यान्वयन हेतु चरणों की व्याख्या करना; (चार) योजना के सफल कार्यान्वयन हेतु स्थितियां पैदा करना; (पांच) योजना के प्रत्येक चरण को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक तंत्र के स्वरूप को निश्चित करना; और (छः) प्रगति का समय-समय पर मूल्यांकन करना।

आयोग ने अपनी स्थापना के दो वर्ष के भीतर प्रथम पंचवर्षीय योजना रिपोर्ट प्रस्तुत की, जो एक असाधारण उपलब्धि थी। प्रथम योजना सर्वाधिक सफल योजना रही है तथा इसने भारत में योजना के कार्यान्वयन के लिए एक सही पथ-प्रदर्शक के रूप में कार्य किया है। डा० देशमुख तथा उनके दल के सक्षम अर्थशास्त्रियों के प्रयास से योजना के सिद्धांत एवं तंत्र तथा इसकी प्रभावोत्पादकता के दृढ़तापूर्वक स्थापित करने में सहायता मिली।

प्रमुख जन नेता तथा प्रख्यात शिक्षाशास्त्री

डा० देशमुख राजनीति से सन्यास लेने के पश्चात् संभवतः जनकार्यों में और अधिक सक्रिय रूप से भाग लेने लगे थे। उन्हें शैक्षिक, विद्वानोचित एवं सांस्कृतिक कार्यों में अपनी रुचि को आगे बढ़ाने का अवसर मिल गया। उन्होंने स्वैच्छिक एवं अवैतनिक कार्यों के लिए खुले मन से समय दिया तथा इसके लिए अपनी बौद्धिक तथा प्रशासनिक योग्यताओं का उपयोग किया। अनेक संगठनों, यथा नेशनल बुक ट्रस्ट (1957-60); भारतीय प्रशासनिक स्टाफ कालेज, हैदराबाद (1959-60); भारतीय लोक प्रशासन संस्थान (1964-65); केन्द्रीय संस्कृत बोर्ड (1966-67); प्रशासनिक सुधार आयोग; भारत सरकार के मंत्रालयों के तंत्र तथा प्रक्रिया संबंधी अध्ययन दल (1968) के चेयरमैन नियुक्त हुए। वे 1956 में संविधि द्वारा स्थापित विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के चेयरमैन (1956-61) के पद को सुशोभित करने वाले प्रथम व्यक्ति थे। इस अवधि में उन्होंने भारत के विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा में सुधार करने के लिए ठोस आधार बनाने में सहायता प्रदान की। वे 1962 से 1967 तक दिल्ली विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहे। इस अवधि के दौरान, उन्होंने इसे ऊंची शिक्षा के लिए एक सर्वोत्कृष्ट केन्द्र का स्वरूप

प्रदान किया। वे सामाजिक विकास परिषद् (1964); भारतीय आर्थिक विकास संस्थान (1965-74); भारतीय जनसंख्या परिषद् (1970-82); तथा भारतीय सांख्यिकी संस्थान, कलकत्ता (1945-1964) के प्रेसीडेंट और भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद् (1960-67) के वाइस प्रेसीडेंट भी रहे।

वे अन्तर्राष्ट्रीय शैक्षिक योजना संस्थान, यूनेस्को, पेरिस के शासी बोर्ड के सदस्य थे। वह 1965 से 1970 तक, संयुक्त राष्ट्र प्रशिक्षण तथा अनुसंधान संस्थान के न्यासी बोर्ड के सदस्य एवं वाइस-चेयरमैन रहे तथा विश्वविद्यालय सेवा की भारतीय राष्ट्रीय समिति के चेयरमैन थे।

डा० देशमुख तथा उनकी पत्नी, श्रीमती दुर्गाबाई के प्रयासों से 1959 में इंडिया इंटरनेशनल सेन्टर की स्थापना की गई तथा इसकी स्थापना के समय से मृत्युपर्यन्त वे इसके प्रेसीडेन्ट बने रहे। यह संस्था, जिसका मुख्यालय नई दिल्ली में है, विश्व के विभिन्न समुदायों के बीच विचारों एवं जानकारी के आदान-प्रदान, तथा समझ एवं भाईचारे को बढ़ाने के लिए एक केन्द्र के रूप में कार्य कर रही है।

1969 में डा० सी० डी० देशमुख को सर्वसम्मति से एक गैर-दलीय उम्मीदवार के रूप में राष्ट्रपति का चुनाव लड़ने के लिए लोकतांत्रिक विपक्षी पार्टी द्वारा आमंत्रित किया गया क्योंकि उन्हें "सर्वाधिक ईमानदार और निष्कलंक, अप्रतिम उपलब्धियों तथा महान ख्याति से परिपूर्ण व्यक्ति एवं सर्वोपरि, एक विवादरहित देशभक्त माना जाता था जिनका किसी दल के साथ कोई संबंध नहीं था"। तथापि, वे डा० जाकिर हुसैन से हार गये।

सुविख्यात वक्ता और लेखक

विभिन्न जनकार्यों में गहन रूप से लगे होने के बावजूद, डा० देशमुख ने लेखन-कार्य को पर्याप्त समय दिया तथा अनेक भाषण दिए, जिनमें से अनेक पुस्तक रूप में उपलब्ध हैं। एक सामान्य प्रशासक के रूप में उनके कार्य-काल के दौरान उनकी एक प्रारंभिक रिपोर्ट "दि रिसेट्लमेंट ऑफ दि रायपुर डिस्ट्रिक्ट (खालसा) 1932 में प्रकाशित हुई जो अपने प्रकार की एक उत्कृष्ट रिपोर्ट है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के चेयरमैन के रूप में उन्होंने अनेक भाषण दिये जिन्हें बाद में संकलित करके दो खण्डों में अर्थात् "इन दि पोर्टल्स ऑफ इंडियन यूनिवर्सिटीज" "ऑन दि थ्रेशहोल्ड आफ इंडियाज सिटिजनहुड" नाम से प्रकाशित किया गया। पेर जैकॉब्सन फाउंडेशन के तत्वावधान में 1965 में वाशिंगटन में दिए गए भाषण के दो भाग बाद में "दि यूजफुलनेस ऑफ मोनेटरी मीन्स इन करींग इन्फ्लेशन" शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुए। उनके अन्य उल्लेखनीय भाषण हैं, 1959 में मद्रास विश्वविद्यालय के माननीय वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री मेमोरियल भाषण सीरीज में दिया गया भाषण "सिटीजन्स आफ नो मीन कंट्री"

गांधी मेमोरियल फाउंडेशन, बम्बई के तत्वावधान में दिया गया भाषण "हिन्दी और हिन्दुस्तानी — आफिशियल लैंगुएज और लिंगुआ, फ्रैंका ऑफ इंडिया, 1962 और 1963 में क्रमशः नागपुर विश्वविद्यालय में किंखेड़े मेमोरियल भाषण सीरीज तथा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में स्मट्स मेमोरियल भाषण सीरीज में दिए भाषण "प्री-रिक्विज़िट्स ऑफ डेवलपमेंट इन अन्डर-डेवलप्ड कंन्ट्रीज" तथा "दि कॉमनवेल्थ ऐज इंडिया सीज इट"।

उनके मन में आरंभ में संस्कृत के प्रति जो आकर्षण और स्नेह था, उसके लिए भी उन्हें समय मिल गया तथा वे कालिदास के मेघदूतम (1943) गांधी सूक्ति मुक्तावली (1957) संस्कृत के श्लोकों में महात्मा गांधी के चुने हुए वचन; संस्कृतकाव्य-मल्लिका (1968), उनके द्वारा संस्कृत में रचित कविताएं; भगवतगीता कोमेंटरी (1976), धम्मपदः स्टडी ऑफ दि डॉक्टरीन ऑफ बुद्ध (1977) अमरकोश (1981) के अनुवाद-कार्य में लग गये। अंग्रेजी में उनकी कृतियान हैं: इकोनोमिक डेवलपमेंट्स इन इंडिया, 1946-56: ए पर्सनल रिट्रोस्पेक्ट (1957); फ्री बट फेटर्ड: दि इल्लीट्रेट सिटिजन (1970) सोशल चेंज इन इंडिया (1970), रिफ्लेक्शन्स ऑन फाइनेंस, एजूकेशन एंड सोसायटी (1972), आस्पेक्ट्स ऑफ डेवलपमेंट (1972), दि कोर्स ऑफ माई लाइफः आटोबायोग्राफी (1976)।

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान की प्राप्ति

मैसूर, नागपुर, पूणे उस्मानिया तथा हैदराबाद, अन्नामलाई, इलाहाबाद और दिल्ली विश्वविद्यालयों तथा प्रिंसटन, न्यू जर्सी, अमरीका और लीसेस्टर ब्रिटेन के विश्वविद्यालयों द्वारा उन्हें एक दर्जन से भी अधिक मानद डाक्टरेट डिग्रियों से सम्मानित किया गया। 1945 से 1964 तक भारतीय सांख्यिकीय संस्थान, कलकत्ता के प्रेसीडेंट के रूप में सांख्यिकीय के क्षेत्र में की गई उनकी उत्कृष्ट सेवाओं को ध्यान में रखते हुए भारतीय सांख्यिकीय संस्थान, कलकत्ता द्वारा उन्हें डाक्टर ऑफ साइंस की मानद डिग्री से विभूषित किया गया। इसी अवधि के दौरान केन्द्रीय सांख्यिकीय कार्यालय की स्थापना हुई तथा राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण को संस्था का रूप दिया गया।

1959 में फिलीपीन्स गणराज्य ने उन्हें असाधारण सरकारी सेवा के लिए मैग्सेसे पुरस्कार से सम्मानित किया। भारत सरकार ने राष्ट्रीय जीवन में डा० देशमुख और उनकी धर्मपत्नी के अगणित योगदान को ध्यान में रखते हुए उन्हें संयुक्त रूप से पद्मविभूषण से अलंकृत किया

ऊंचे सिद्धांतों एवं दुर्लभ व्यक्तित्व वाला जीवन

डा० सी० डी० देशमुख को उस युग की एक महान विभूति के रूप में स्मरण किया जाएगा जब सार्वजनिक जीवन में किसी व्यक्ति की प्रतिष्ठा और महत्ता केवल उस व्यक्ति के चरित्र, गुण एवं विचार-शक्ति की स्वाभाविक प्रवृति पर निर्भर रही थी। वे इन गुणों से परिपूर्ण थे तथा विनम्रता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। उनके अपार अनुभव तथा प्रभावशाली विद्वता ने उन्हें एक ऐसी अनुकूल स्थिति सुलभ कर दी थी जहां से वे ईमानदारी एवं कुशलता के अटल आदर्शों, शिक्षा तथा प्रबोधन की आवश्यकता तथा संस्कृति एवं विचार-शक्ति के मूल्य के बारे में अपने विचारों को स्पष्ट कर सकें। उन्हें यह उचित प्रतीत नहीं होता था कि इनके अतिरिक्त जो मूल्य हैं, वे सार्वजनिक तथा राजनैतिक जीवन में पुरुषों एवं महिलाओं के लिए कभी पथ-प्रदर्शक बन जाएं। उनके अपने ऊंचे दर्शन एवं सिद्धातों में कभी भी कोई व्यतिक्रम उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने अस्पष्ट रूप से तैयार की गई कोरी सिद्धांतवादिता क़ा अनुसरण करने के स्थान पर रचनात्मक परिणामोन्मुख नीतियों को प्राथमिकता देने की मांग की तथा आत्महित; राजनीति अथवा राजनीतिक नेताओं की परवाह किए बिना अद्भुत उपलब्धियां प्राप्त कीं।

1959 में, अपने एक सारगर्भित भाषण "सिटिजन्स आफ नो मीन कंट्री" में उन्होंने धर्मग्लानि के संकट, नैतिक सिद्धांतों के क्षीण होते जाने के विरुद्ध चेतावनी दी और यह भय व्यक्त किया कि जब तक भारत के लोग नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक ह्रास का डटकर सामना करने के लिए अपनी आध्यात्मिक विरासत पर ध्यान नहीं देंगे, तब तक भगवद्गीता के निम्न सुविख्यात श्लोक को चरितार्थ नहीं किया जा सकेगा:

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानम अधर्मस्य तदात्मानं सृज्याम्यहम्
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।

(हे भारत, जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब-तब मैं अपने ही रूप की रचना करता हूं अर्थात् प्रकट करता हूं। साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिए तथा धर्म की स्थापना करने के लिए प्रत्येक युग में प्रकट होता हूं।)

यह धारणा निरर्थक ही नहीं व्यक्त की गई थी तथा तीस वर्ष बीत जाने के बाद भी इसकी प्रासंगिकता निर्विवाद बनी हुई है।

श्रद्धांजलि

1982 में, डा० सी० डी० देशमुख के निधन से भारत ने एक सच्चा महान सपूत खो दिया। उनके निधन पर शोक व्यक्त करते हुए भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने 4 अक्टूबर, 1982 को लोक सभा में कहा था कि "सिविल सेवा अधिकारी, विद्वान, राजनीति में विलम्ब से प्रवेश करने वाले, जागरूक सांसद, असाधारण आयोजक तथा वित्त मंत्री, शिक्षाशास्त्री, लेखक तथा अनेक सांस्कृतिक एवं सामाजिक सेवा संस्थाओं के संस्थापक के रूप में डा० देशमुख ने राष्ट्र को जीवंत बनाने में ठोस योगदान किया था।" उन्होंने कहा था, "यह सदन उनकी अनेक क्षेत्रों में उनके योगदान तथा उपलब्धियों से भली-भांति परिचित है। वे और श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख एक ऐसे असाधारण दम्पत्ति थे जिनकी सेवाओं को कृतज्ञतापूर्वक स्मरण किया जाएगा।"

प्रो० मधु दंडवते ने डा० देशमुख को "हमारे राष्ट्र के जीवन में एक अद्भुत व्यक्तित्व" बताते हुए कहा था कि "वे सत्यनिष्ठा और विद्वत्ता के एक दुर्लभ समन्वित रूप थे। उन्होंने कभी भी अपने जीवन पर सत्ता की लालसा को हावी होने नहीं दिया तथा अपने दृढ़ विश्वासों को सदैव ऊपर बनाए रखा।"

4 अक्तूबर, 1982 को, राज्य-सभा में उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए तत्कालीन सभापति श्री एम० हिदायतुल्ला ने कहा कि डा० देशमुख ने "असाधारण सम्मान" के साथ अनेक सरकारी कार्यालयों में कार्य किया तथा "भारत और विदेशों में, दोनों जगह, ख्याति" प्राप्त की। श्री हिदायतुल्ला ने कहा, "उनकी दूरदृष्टि एवं गहन बुद्धिमत्ता के कारण उनका बहुत सम्मान किया जाता था। मेरा उनके साथ मैत्रीपूर्ण संबंध था तथा मैं सदैव उनके श्रेष्ठ गुणों की प्रशंसा करता था।"

1971 में, उनके 75वें जन्मदिवस के अवसर पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए प्रख्यात समकालीन संस्कृत विद्वान, डा० वी० राघवन ने डा० देशमुख के सम्मानित जीवन-वृत्त को एक कविता में इस प्रकार व्यक्त किया था:

"श्री देशमुखश्लाघा"

(डा० वे० राघवः)

चिन्तामणि-द्वारकनाथ-देशमुख। त्वमाभासि यथार्थनामा।
यदाभवो भारतकोशमन्त्री चिन्तामणिश्चिन्तितदस्तदा भूः (1)

यथाधिकोशेषु तथाधिविद्योद्यन्येषु नानाविषयेषु च त्वम्।
स्वतन्त्रराष्ट्राभ्युदयप्रदेशु प्राणीण्यतो देशमुखो व्यराजः (2)

संस्कारमार्षं निजमत्यजन् यः पाश्चात्यसंस्कारसमुज्जवलात्मा।

प्रत्नस्य नूत्नस्य समन्वयसया प्यादर्शवदाजसि भारतोर्त्याम् (3)

चिन्तामणि मन्त्रमुपास्य हर्षो हर्षप्रदां साधयति स्म वाचम्।
सा विश्वरूपा बहुदेशगा वाक् चिन्तामणि त्वां सहजं समेता (4)
विशिष्य दिव्यां तनुमादधाना या संस्कृता वाक्शगा तवेयम्।
ययासि पुनस्य विभूषितश्च स्मृतैव साग्रे तव सन्निधने (5)

नूनं पदं तत्तदुपागतं त्वां तथापि यत्किंचिदनागतं चेत्।
हानिः पदस्येव, न ते गुणाब्धे पदश्रियों नावरसग्ड्लज्जा (6)

ज्ञानेन शीलेन च पीर्णपूतां लोकोपकारेण तथात्मतुष्टया।
करोति यो यज्ञवदात्मयात्रा-मिहेव स स्वर्गजयी यथा त्वम् (7)

ज्ञानशीलवया वृद्धगुणश्लाघानुरागिणा।
मित्र-"देशमुख"-श्लाघा राघवेण कृतादरात् (8)

डा० सी० डी० देशमुख के सम्मान में डा० वी० राघवन द्वारा रचित कविता के अंग्रेजी अनुवाद का हिन्दी रूपान्तरण।

एक. चिन्तामिणि द्वारकानाथ निःसन्देह आपने अपने नाम को सार्थक प्रमाणित किया है। जब आप भारत के वित्तमंत्री थे, तब आप सचमुच में चिन्तामणि अर्थात् पारस पत्थर थे जिससे इच्छित वस्तु प्राप्त की जा सकती थी।

दो. वित्तीय, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक मामलों में और वस्तुतः स्वतंत्र हुए देश के कल्याण एवं विकास से संबंधित अनेक प्रकार के मामलों में आप अपनी योग्यता के कारण सदैव आगे रहते थे और इसलिए आपने देश के मुखारविन्द अर्थात् "देशमुख" की गरिमा प्राप्त की।

तीन. आपने अपने ऋषियों की विरासत का परित्याग किए बिना पश्चिम की संस्कृति के साथ स्वयं को सज्जित किया है और इस प्रकार आप भारत में प्राचीन और नवीन मिश्रण के एक समन्वित रूप बनकर चमके हैं।

चार. महान कवि श्री हर्ष ने चिन्तामणि के रहस्यपूर्ण मन्त्र की रचना की तथा वाणी को उत्कृष्टता प्रदान की जिससे उन्हें आनन्द की प्राप्ति हुई; आपने विभिन्न देशों में विविध प्रकार से बोली जाने वाली वाणी का ज्ञान प्राप्त किया यानी चिन्तामणि अनेक रूपों में आपके पास आई।

पांच. उस वाणी का नैसर्गिक स्वरूप संस्कृत है, जिससे आप कभी

अभिभूत होते थे, आप उसके प्रकांड पंडित हैं और जब भी आप उसके बारे में सोचते हैं, वह आपके समक्ष उपस्थित हो जाती है।

छः आपने निश्चित रूप से अनेक महत्वपूर्ण पदों को सुशोभित किया, जिन पदों को आपने सुशोभित नहीं किया, उनके लिए यह घाटे की स्थिति ही रही क्योंकि गुणों का खजाना तो आपके पास था। वास्तव में, जो पद वंचित रह गये, उन्हें इस बात की लज्जा नहीं थी कि वे अपने को कम महत्वपूर्ण पदों से सम्बद्ध कर लेते।

सात. जो व्यक्ति अपनी जीवन यात्रा को पूर्ण ज्ञान एवं चरित्र के साथ, विश्व-सेवा करते हुए तथा आत्म-संतुष्टि के साथ एक सच्चे बलिदानी के रूप में पूरा करता है, वह अपने लिए स्वर्ग को जीत लेता है।

आठ. राघवन उन व्यक्तियों के गुणों की प्रशंसा करने में बड़प्पन समझता है जो ज्ञान, चरित्र और आयु में उससे बड़े हैं तथा उसने अपने मित्र देशमुख की प्रशंसा में उत्साहपूर्वक इस कविता की रचना की है।

पुस्तकें **सम्पर्क-सूत्र**

1. देशमुख, सी० डी० **इकोनोमिक डेवलपमेंट इन इंडिया 1946-1956, ए पर्सनल रेट्रोस्पेक्ट, एशिया पब्लिशिंग बम्बई,** 1957
2. " **सिटिजन्स आफ नो मीन कंट्री,** जी०एस० प्रेस, मद्रास, 1959
3. " **दि कोर्स आफ माई लाइफ** ओरिएन्ट लॉगमैन, नई दिल्ली, 1947
4. देशमुख दुर्गाबाई **चिन्तामन एंड आई, एलायड पब्लिशर्स,** नई दिल्ली, 1980
5. नारायण प्रसाद, पी० एस० **सी०डी० देशमुख : हिज कंट्रीब्यूशन टु मोनेटरी एंड इकोनोमिक पॉलिसी** लांसर इन्टरनेशनल, नई दिल्ली, 1985
6. सिन्हा, एल०एन० (संपादित) **इकोनोमिक एंड सोशल डेवलपमेंट : एसेज इन ऑनर आफ डा० सी० डी० देशमुख** वोरा एंड कम्पनी, बम्बई 1972

समाचार पत्र

1. **दि टाइम्स ऑफ इंडिया** (नई दिल्ली) 4 और 5 अक्तूबर, 1982
2. **दि हिन्दुस्तान टाइम्स** (नई दिल्ली) 5 अक्तूबर, 1982
3. **फायनेंसियल एक्सप्रेस** (नई दिल्ली) 7 अक्तूबर, 1982

लोक सभा वाद-विवाद 4 अक्तूबर, 1982

राज्य सभा वाद-विवाद 4 अक्तूबर, 1982

भाग-दो

उनके विचार

अन्तरिम संसद/लोक सभा/राज्य सभा में डा० चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख के चुनींदा भाषणों से उद्धृत अंश

I

आर्थिक और वित्तीय मामले 1

वित्त निगम (संशोधन) विधेयक*

मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि भारतीय वित्त अधिनियम, 1949 और वित्त अधिनियम, 1950 में संशोधन करने वाले विधेयक पर विचार किया जाए।"

इस विधेयक पर विचार करते हुए, मेरे लिए अविभाजित हिन्दू परिवार पर आयकर के भार के औचित्य के विवादास्पद प्रश्न पर बोलना आवश्क नहीं है। मैं वर्ष 1949 से आरम्भ करना चाहता हूं, जब पहली बार ऐसे हिन्दू परिवारों के लिए छूट सीमा को बढ़ाकर 3,500 रुपए और वैयक्तिक सीमा को 3,000 रुपए किया गया था। संविधान सभा (विधायी) में विधेयक पर चर्चा के दौरान यह प्रस्ताव रखा गया था और बाद में इस छूट को बढ़ाकर 5,000 रुपए कर दिया गया था और इसके साथ ही यह उचित समझा गया कि उच्च छूट सीमा का लाभ ऐसे मतदाताओं को न दिया जाए, जो कुछ समय के लिए हिन्दू परिवार हैं बल्कि उन परिवारों को दिया जो कम से कम दो व्यस्क करदाता हों या दो शाखाएं हों, जैसाकि वित्त अधिनियम, 1949 में उल्लेखित है कि "भागीदारी में हिस्सेदारी के लिए योग्य"। वित्त अधिनियम, 1950 में, हिन्दू अविभाजित परिवार के लिए छूट सीमा इन्हीं शर्तों के अन्तर्गत बढ़ाकर 7,200 रुपए कर दी गई थी।

इस संबंध में, मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि "मिताक्षरा" परिवार में, एकमात्र जीवित पुरुष और उसकी पत्नी का बिना बच्चे के पैतृक सम्पत्ति से होने वाली आय के लिए एक एकल के रूप में ही मूल्यांकन किया जाएगा, लेकिन उसके पुत्र उत्पत्ति पर उसे हिन्दू परिवार का दर्जा दिया जाएगा। हिन्दू परिवार की इसी विशेषता के कारण, उन अधिनियमों में इन शर्तों को रखना आवश्यक था। इन शर्तों को इस प्रकार तैयार किया गया था कि उच्च छूट का लाभ तब तक न दिया जाए जब तक कि करदाता का परिवार, एकल परिवार से भिन्न न हो, क्योंकि उसे अपनी आमदनी से अपनी पत्नी/पति और अवयस्क बच्चे का पालन भी करना होता है। वित्त अधिनियम, 1949 और 1950 के

*अन्तरिम संसद, वाद-विवाद, 11 अगस्त, 1950, कालम 892—894; 12 अगस्त, 1950, कालम 999—1002।

शाब्दिक अर्थ के अनुसार यह सही नहीं पाया गया है, क्योंकि उच्च छूट सीमा का लाभ ऐसे परिवार द्वारा भी लिया जा सकता है जिसमें पति, पत्नी और अवयस्क बच्चा हो, क्योंकि पत्नी, हालांकि बटवारा की मांग नहीं कर सकती, परन्तु हिन्दू कानून के अनुसार यदि कभी पिता और अवयस्क बच्चे के बीच बटवारा होता है तो वह भी अपना हिस्सा मांग सकती है। अपीलीय सहायक आयुक्त द्वारा ऐसे ही एक मामले को सही करार दिए जाने के पश्चात हमें इस बात की जानकारी हुई, जिसमें एक करदाता ने अपील के माध्यम से इस पर लाभ (छूट) प्राप्त किया था। हमारे पास दो ही विकल्प थे, या तो निर्णय को स्वीकार करते या नियम में संशोधन करते। बोर्ड को अपील के निर्णय की सूचना मई, 1950 में दी गई। अतः अब संशोधन इस प्रकार किए जाने का प्रस्ताव है—"बंटवारे में हिस्से की हकदार" के स्थान पर "बटवारे का दावा करने की हकदार" शब्द रखे जाएं।

अतः अविभाजित हिन्दू परिवार को जो अन्य वैकल्पिक शर्तें पूरी करनी होती हैं, वे इस प्रकार हैं—(क) परिवार में कम से कम दो सदस्य 18 वर्ष से ऊपर के हों, जो बटवारे में दावे के हकदार हों; या (ख) कि परिवार में कम से कम दो सदस्य हों जो बटवारे के हकदार हों, और उनमें से कोई भी एक दूसरे का पारम्परिक वंशज न हो और दोनों एक जीवित वंश के वंशज न हों।

अब मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि हम भूतलक्षी प्रभाव में संशोधन क्यों कर रहे हैं। अनजाने में हुई भूल के कारण यह संशोधन करना पड़ रहा है। अतः इस अधिनियम में संशोधन उसी तारीख से किया जा रहा है, जिससे यह लागू हुआ है। अन्यथा, इस असंगति का लाभ केवल उन्हीं कुछ लोगों को मिलेगा, जिन्होंने इसका पता लगाया है और इसका लाभ प्राप्त करने का दावा किया है। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि ऐसे अनेक मामले पहले ही निपटाए जा चुके हैं, जिनमें इस असंगति का लाभ नहीं दिया गया या इसकी मांग नहीं की गई थी।

मैं यह कह कर, अपनी बात समाप्त करना चाहता हूं कि आयकर जांच आयोग की सिफारिशों के अन्तर्गत हिन्दू अविभाजित कुटुंब के मूल्यांकन का आम प्रश्न अभी भी विचाराधीन है। लेकिन सभा यह मानेगी कि इस प्रश्न पर वर्तमान विधेयक के साथ चर्चा असंगत है। हिन्दू कोड विधेयक को संसद द्वारा पारित किए जाने या अस्वीकार किए जाने के पश्चात हमें इस प्रश्न पर सभी पहलुओं पर चर्चा के लिए तैयार रहना चाहिए। जैसा कि सभा को जानकारी है, विधेयक में एक उपबंध है, जिससे हिन्दू कुटुंब के "मिक्षरा" परिवार और "दयाभागा" परिवार के स्तर पर प्रभाव पड़ेगा।

12 अगस्त, 1950 को श्री टी० टी० कृष्णामाचारी और पंडित ठाकुर दास भार्गव द्वारा चर्चा के दौरान उठाए गए मुद्दों के उत्तर में उन्होंने कहा कि पंडित ठाकुर दास भार्गव हिन्दू

अविभक्त कुटुंब के हितों पर बल देने के किसी भी अवसर को नहीं छोड़ते हैं मैं यह कहकर उनका अनादर नहीं करना चाहता कि वे सदैव गुस्से में रहते हैं, परन्तु वे इस बात को मानेंगे कि हिन्दू अविभक्त कुटुंब पर कर लगाने पर विस्तृत चर्चा करना वर्तमान विधेयक के क्षेत्राधिकार में नहीं है। आयकर जांच आयोग की सिफारिशों के अनुरूप हिन्दू अविभक्त कुटुंब पर कर लगाने के प्रश्न के अतिरिक्त, मैंने कल जो कुछ कहा था, अब और कुछ कहने को नहीं है मैं जब हिन्दू कोड विधेयक की बात करता हूं, तो उनके निर्णयानुसार "मितक्षरा" और "दयाभागा" हिन्दू अभिवाजित कुटुंबों में अन्तर रखा जाए या नहीं, यह कहना मुश्किल है। मेरा कहने का यह तात्पर्य नहीं है कि यदि हिन्दू कोड विधेयक पारित नहीं होता तो हिन्दू अविभक्त कुटुंब पर आयकर के मूल्यांकन के लिए इसके दर्जे पर विचार ही नहीं किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त, उन्होंने इस विधान को भूतलक्षी प्रभाव से संशोधित करने के बारे में कहा है। लेकिन मैंने इस बारे में भी कल स्पष्टीकरण दे दिया था, इस संबंध में अब और कुछ नहीं कहना है। मैंने इस बात को नोट किया है और स्पष्ट किया है और इसे भूतलक्षी रूप से लागू करना क्यों आवश्यक है जहां तक पंजाब में व्याप्त विशेष (प्रथा) रिवाज का संबंध है, मुझे इस विशेष रिवाज की जानकारी नहीं; मैंने इन्हें नोट कर लिया है। मैंने जो दो संशोधनों की सूचना दी है, उनमें मैं इन्हें भी शामिल करूंगा।

इसके अतिरिक्त टी॰ टी॰ कृष्णामाचारी द्वारा व्यक्त ये विचार बहुमूल्य हैं कि इस विधान द्वारा जो शब्दों का परिवर्तन किया जाना है, उससे हिन्दू अविभक्त कुटुंब के विभाजन के पश्चात आकलन से संबंधित आयकर अधिनियम की धारा 25 (क) के कार्यान्वयन पर प्रभाव पड़ने की सम्भावना है। मुझे उनकी चिन्ता के कारणों की जानकारी नहीं है और मुझे इस मामले में उनके द्वारा व्यक्त की गई शिकायतों की जानकारी है और इसके उत्तर में धारा 25 (क) के कार्यान्वयन के बारे में उन्हें कुछ आश्वासन दिए गए हैं। आयकर अधिकारियों को पहले ही आवश्यक अनुदेश जारी कर दिए गए हैं और यदि श्री कृष्णामाचारी महसूस करते हैं कि, अभी भी कुछ कठिनाइयां हैं, तो उन्हें इनकी जानकारी दिल्ली स्थित केन्द्रीय राजस्व बोर्ड को देनी चाहिए। वे इनकी जांच करके, उचित शिकायतों का निवारण करेंगे।

मैं इसी विषय पर बोल रहा हूं। मैं कहना चाहता हूं कि पंडित ठाकुर दास भार्गव, जब इन दो संशोधनों का उल्लेख कर रहे थे तो वह स्वयं एक बात कहना भूल गए। उन्होंने कहा था कि वित्तीय स्थिति के कारण, वह हिन्दू अविभक्त कुटुंबों के आम प्रश्न पर चर्चा

नहीं करना चाहते। ऐसा लगता है कि पिछले कुछ दिनों के दौरान हुई चर्चा के परिणामस्वरूप, उन्हें महसूस हुआ है कि वित्तीय स्थिति काफी बेहतर है।

यह प्रस्ताव—

"कि भारतीय वित्त अधिनियम, 1949 और वित्त अधिनियम, 1950 में संशोधन करने वाले विधेयक स्वीकृत हुए।"

2

भारतीय आयकर (संशोधन) विधेयक*

मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 में और संशोधन करने वाले विधेयक पर विचार किया जाए।"

भारतीय आयकर अधिनियम, 1922 की धारा 9 के अन्तर्गत मकान सम्पत्ति से आय, कर योग्य है। मकान की मरम्मत, बीमा किश्त, बंधक राशि पर लगने वाले ब्याज, भू-किराया, भू-राजस्व, किराया वसूली खर्च, मकान खाली रहने पर छूट को निकालकर मकान (सम्पत्ति) से होने वाली वास्तविक वार्षिक आय पर आयकर का आकलन किया जाना है। नगर पालिका करों के लिए, विशेष रूप से कोई भी छूट नहीं दी गई है, क्योंकि नियम में जब से भारत में आयकर लागू हुआ है, इसकी छूट नहीं दी जाती है। वर्ष 1939 में जब अधिनियम में संशोधन किया गया था, धारा 9 में भी संशोधन किया गया था ताकि निम्न नई मदों के संदर्भ में मकान सम्पत्ति नाम से छूट का प्रावधान किया जा सके: जिन मामलों में सम्पत्ति पर वार्षिक शुल्क लगाया जाता है, पूंजी प्रभार नहीं लगाया जाता, ऐसे प्रभार की राशि पर छूट देय होगी। न्यायालय की "बिक्री" या अन्य बाध्यकारी समझौते के अन्तर्गत आवश्यक वार्षिक अदायगी की छूट देने के लिए यह संशोधन किया जाना आवश्यक है। लेकिन यह भावना कभी भी नहीं थी कि संशोधन के अन्तर्गत नगर पालिका करों को भी सम्मिलित किया जाए; हालांकि ये प्रति वर्ष देय होते हैं। लेकिन इन्हें सम्पत्ति पर प्रभार नहीं माना गया। वास्तव में उस समय सभा में नगर पालिका करों के लिए प्रस्तुत किए गए विशिष्ट संशोधन, का सरकार द्वारा विरोध किया गया और इसे वापस ले लिया गया। अतः 1939 के अधिनियम में संशोधन के पश्चात भी बम्बई सरकार द्वारा लगाए गए नगर पालिका करों और शहरी स्थावर सम्पत्ति कर को वार्षिक किराया मूल्य की गणना के उद्देश्य के लिए नामंजूर किया जाता रहा है। इस तथ्य की

---

*अन्तरिम संसद, वाद-विवाद, 14 दिसम्बर, 1950, कालम 1822—1825, 18 दिसम्बर, 1950, कालम 1950—1955।

बम्बई और मद्रास उच्च न्यायालयों द्वारा पुष्टि की गई थी, लेकिन एक वर्ष पश्चात, वर्ष 1943 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने विभाग के विरुद्ध निर्णय दिया। सरकार ने निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल में अपील भी की थी, लेकिन एक अन्य करदाता इसे बम्बई उच्च न्यायालय ले गया, जिसने अपने पूर्व निर्णय को बदलने से मना कर दिया। सरकार की इलाहाबाद उच्च न्यायालय के विनिर्णय के विरुद्ध अपील पर संयुक्त रूप से हाल ही में उच्चतम न्यायालय द्वारा सुनवाई हुई और उन्होंने 26 मई, 1950 को अपना निर्णय दिया है कि क्योंकि नगर पालिका कर "वार्षिक प्रभार" के अन्तर्गत आते हैं और पूंजी प्रभार नहीं हैं अतः ये भी छूट के लिए अनुज्ञेय हैं।

जैसाकि मैंने पहले कहा है कि यह भावना कभी नहीं थी कि जहां तक कर वसूली के मामले में इन शब्दों का इस प्रकार अर्थ लगाया जाए। अतः हमारा यह विचार था कि हालांकि विनिर्णय के प्रति हमारा कोई विरोध नहीं है और उच्चतम न्यायालय के विनिर्णय के विरुद्ध कहने में हम सक्षम भी नहीं हैं, फिर भी हम, राजस्व वसूली की दृष्टि से, यह महसूस करते हैं कि हमारी यह भावना भी नहीं थी। अतः सभा में वाद-विवाद के दौरान यह निश्चित भी हो गया कि एकमात्र विकल्प यही है कि कानून में परिवर्तन किया जाए ताकि नगर पालिका करों संबंधी यह छूट न दी जाए।

तब हमने यह विचार किया कि सभा में इस विधेयक को लाने तक इन्तजार किया जाए या अध्यादेश जारी किया जाए।

उच्चतम न्यायालय का फैसला प्राप्त होते ही, हमें विभिन्न संगठनों और व्यक्तियों से इस आशय के अभ्यावेदन प्राप्त होने आरम्भ हो गए कि उच्चतम न्यायालय द्वारा पुरानी व्याख्या को गलत घोषित किए जाने की वजह से, पहले वसूल किए गए कर को वापस किया जाए। भारत और यू० के० दोनों देशों में अपनाई गई परम्परा के अनुसार भी आयकर विभाग द्वारा जिन मामलों में कर निर्धारण को अंतिम रूप दे दिया गया है, कोई छूट नहीं दी जाती है और जिस तारीख को नई व्याख्या दी गई है, अपीलों में या विचाराधीन आवेदनों या समय सीमा के अन्दर दाखिल आवेदनों पर ही करोड़ों रुपए खर्च हो जाएंगे और भविष्य में लगातार करोड़ों रुपए की हानि होगी। अतः, हमने सोचा कि सही रास्ता यही होगा कि जिन दो करदाताओं ने न्यायालय में मामले जीते हैं, उन्हें छोड़कर शेष के लिए एक अध्यादेश जारी किया जाए और पिछले 64 वर्षों से प्रचलित परम्परा को ही अपनाया जाए।

इसके साथ ही, हमने इस अवसर पर इस विशेष कर के बारे में इक्विटीज पर विचार किया। जैसा कि आप जानते हैं कि नगर पालिका कर अनेक प्रकार के होते हैं। कई बार

ये शुद्ध रूप से सम्पदा कर किस्म के होते हैं। हालांकि उनमें सेवा तत्व भी होता है। कई बार इन्हें सम्पदा कर सेवा कर ही माना जाता है। हमने महसूस किया कि जहां तक सेवा करों का संबंध है वे एक भार है जो कि किरायेदार पर पड़ना चाहिए, न कि भू-स्वामी (मकान मालिक) पर। नगर पालिका निकायों में कर-प्रणाली में एकरूपता के अभाव में यह संभव नहीं है, अतः हमने सोचा कि एक विशेष प्रतिशत का सुझाव देकर हम इस जटिल समस्या को हल कर लेंगे, अर्थात् नगर पालिका या अन्य स्थानीय कर का आधा या सम्पत्ति के वास्तविक वार्षिक मूल्य $12\frac{1}{2}$ प्रतिशत, जो भी कम हो। जिस प्रकार गणना की गई है, उसे उपखंड 5 के नीचे दिए गए उदाहरण में स्पष्ट किया गया है।

चूंकि मैं जो विधेयक प्रस्तुत कर रहा हूं वह सभा में बार-बार प्रस्तुत विचारों के अनुरूप है और यह 64 वर्ष से प्रचलित परम्परा भी है अगर इसलिए हमने स्थिति की कुछ इक्विटीज की भी गणना की है। अतः मैं आशा करता हूं कि सभा इस संकल्प से सहमत होगी।

भाषणों* के दौरान, उच्चतम न्यायालय के फैसले का आदर दिए जाने और न्यायालयों द्वारा दिए गए किन्हीं भी निर्णयों आदि का अनादर न किए जाने के बारे में काफी कुछ कहा गया है। इन आलोचनाओं में कोई तर्क नहीं है। सभा कानून को बनाने वाली इकाई है और न्यायालय को कानून की व्याख्या करनी होती है। यदि न्यायालय की व्याख्या से सभा सहमत नहीं है तो सभा अपना मत सुस्पष्ट करने की एक और कोशिश करती है और इस प्रकार की कोशिश से न्यायालय की अवमानना नहीं होती क्योंकि हम मानते हैं कि न्यायालय संविधान में निहित भाषा की व्याख्या करते हैं। मैं मानता हूं कि हम अपना मत सुस्पष्ट करने में विफल रहे हैं और हम न्यायालयों के निर्णयों को स्वीकार करते हैं। इसके साथ ही, यदि जन नीति की मांग है कुछ कार्यों को सुनिश्चित किया जाए, तब सभा का कार्य है कि सारे मामले पर पुनः विचार करें और एक सही प्रारूप तैयार करें। अतः मैं समझता हूं कि यह कहना निरर्थक है कि सभा के इन कार्यों से न्यायालय की भावनाओं को चोट पहुंचेगी क्योंकि ऐसा कहने का यह अर्थ हो जाएगा और यह स्वीकार करना होगा कि विधि निर्मात्री यह सभा न होकर न्यायालय है।

आइए, यह देखें कि उच्चतम न्यायालय ने वास्तव में किस मुद्दे पर फैसला किया है। यह माना गया है कि व्याख्या के अनुसार "पूंजी प्रभार के अतिरिक्त सम्पत्ति पर अन्य प्रभार लगाने" के अन्तर्गत काफी व्यापक अर्थ निकलता है और इसमें नगर पालिका कर या बम्बई अचल सम्पत्ति कर जैसे शहरी कर शामिल हैं। बम्बई और मद्रास उच्च

---

*14 दिसम्बर, 1950 को विधेयक पर चर्चा का उत्तर देते हुए।

न्यायालयों ने एकाधिक बार इन्हीं शब्दों की व्याख्या की थी कि इस प्रकार के करों को लगाने के लिए ये पर्याप्त नहीं हैं। अतः स्वाभाविक है कि जिन विशेष शब्दों का हमने उपयोग किया है उनकी सीमा के संबंध में मतभेद होने की संभावना थी। उच्चतम न्यायालय ने इस पर विचार नहीं किया और वास्तव में इस पर विचार करना उसके कार्यक्षेत्र में नहीं था कि जो व्याख्या वे कर रहे हैं वहीं विधायिका का वास्तविक आशय था जैसा कि 1939 की असेम्बली के वाद-विवादों से झलकता है अथवा कराधान नीति के तौर पर की गई व्याख्या करना उचित थी। ये ही वे मामले हैं जिन पर हमें निर्णय लेना है। किसी न्यायालय की अपेक्षा हम अपने आशय को बेहतर समझते हैं और इसलिए मेरे विचार से स्थिति में सुधार करने का प्रयास करके उसमें सुधार करना ही सरकार और सभा दोनों का ही अधिकार है।

अगला विषय इस कानून को पूर्व प्रभावी बनाने का है। सामान्य रूप से यह माना जाता है कि कानून को पूर्ववर्ती समय से लागू नहीं किया जाना चाहिए जैसाकि एक वक्ता ने कहा है सिवाय ऐसी परिस्थिति के जहां पर राहत देने अथवा किसी खराब स्थिति को ठीक करने की आवश्यकता है। हम मानते हैं कि ऐसी स्थिति में पूर्व प्रभावी कानून की आवश्यकता है। यह एक ऐसा ही मामला है जिसके बारे में निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई व्याख्या से एक अवांछनीय स्थिति उत्पन्न हो गई है। उच्चतम न्यायालय ने शब्दों की जो व्याख्या की है वह छोटी अदालतों द्वारा की गई व्याख्या से भिन्न है। रिकार्ड से पता चलता है स्पष्टतः ऐसा आशय भी नहीं था कि उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई उन शब्दों की व्याख्या को मान लिया जाना चाहिए। अतः इसको स्पष्ट करना आवश्यक हो गया है और स्पष्ट करने वाला कानून सामान्य रूप से पूर्व प्रभावी होता है क्योंकि इसमें सिर्फ वही होता है जो कानून का आशय होता है। इस प्रकार के स्पष्टीकरण संबंधी कानून, जिन्हें पूर्व प्रभावी बनाया गया हो, के उदाहरण न केवल हमारे देश में हैं अपितु अन्य देशों में भी हैं। ब्रिटेन में एक ऐसा मामला आया था जिस पर हाऊस आफ लार्ड्स ने जनवरी, 1926 में निर्णय दिया था—मैं उस मामले का नाम नहीं लूंगा कि कर देयता से पूर्व पूर्ववर्ती वर्ष में प्राप्त आय के संबंध में आकलन वर्ष के दौरान आय का वही स्त्रोत होना चाहिए। जिस आधार पर पूर्ववर्ती वर्ष की आय निर्धारित की गई थी वही माना जाना चाहिए। हाऊस आफ लार्ड्स का यह निर्णय कानून के आशय के अनुरूप नहीं था। अतः इस निर्णय के कुछ माह पश्चात ही संसद द्वारा इसे निरस्त करने हेतु एक पूर्व प्रभावी कानून पारित किया गया था, जिसमें यू० के० फाइनेन्स एक्ट आफ 1926 का उल्लेख था। यह बात गौर करने योग्य है कि आऊस आफ लार्ड्स के निर्णय को निरस्त करने हेतु जब ब्रिटेन के अधिनियम में संशोधन किया गया था तो उन्होंने उस

विशेष कर निर्धारिती को; जो अपना मामला हाऊस आफ लार्ड्स में ले गया था, भी संशोधन के क्षेत्राधिकार से छूट नहीं मिली थी।

मेरे विचार से ऐसा ही एक भारतीय मामला वृति-कर परिसीमा (संशोधन और विधिमान्यकरण) अधिनियम 1949 भी है। इस अधिनियम की प्रस्तावना इस प्रकार है:

> "चूंकि न्यायिक तौर पर यह कहा गया है कि उत्तर प्रदेश जिला बोर्ड अधिनियम, 1922 (1922 का अधिनियम दस) की धारा 108 के खंड (ख) के अंतर्गत विभव और सम्पत्ति पर लगाया गया कर की परिसीमा 50/- रुपये प्रतिवर्ष निर्धारित की गई है जो वृति-कर परिसीमा अधिनियम 1944 की (1941 का अधिनियम 20) की धारा 2 के अनुसार वृत्ति व्यापार, आजीविका अथवा रोजगार के लिए निर्धारित की गई है और चूंकि वृत्ति कर (परिसीमा) 1941 को उत्तर प्रदेश में म्यूनिसिपल अथवा जिला बोर्डों द्वारा विभव और सम्पत्ति पर उस अधिनियम की धारा 2 को लागू करके लगाए गए करों को हटाने और इस अधिनियम को लागू करने से पूर्व इसको मान्य करने के प्रयोजन से इसमें संशोधन करना समीचीन है।"

अतः सभा इस बात को याद रखेगी कि जब कोई विशेष कर कानून के आशय के विपरीत कानून के अंतर्गत अथवा अंदर आता है न्यायालय द्वारा किए गए कानून के दुरुपयोग को समाप्त करने के लिए पूर्ववर्ती प्रभाव से कानून में संशोधन करना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं किया गया तो लाभ वादी व्यक्ति को मिलेगा और जो व्यक्ति विधान के आशय के अनुरूप कानून का पालन करेगा वह घाटे में रहेगा। अतः समानता के मूल सिद्धान्त का उल्लंघन होगा।

वाद-विवाद के दौरान विधानसभा में पूर्व चर्चाओं का उल्लेख किया गया था यह बात ठीक है कि पहले भी कानून में संशोधन करने के प्रयास किये गये थे ताकि म्युनिसिपल कर की कटौती को मंजूरी दी जा सके। इस प्रस्ताव को 1948 के वित्त विधेयक में शामिल किया गया था। प्रवर समिति ने इस प्रस्ताव को इस टिप्पणी के साथ हटा दिया:—

> "आय-कर के प्रयोजन से कोई ऐसी कटौती करने का औचित्य किसी भी भांति से संगत नहीं है और हमने सोचा है कि इस प्रश्न पर वार्षिक वित्त विधेयक की बजाय नियमित आयकर संशोधन के माध्यम से विचार करना अधिक उपयुक्त होगा।"

इसके बाद इस संबंध में एक संशोधन का प्रस्ताव आयकर और व्यापार लाभकर विधेयक 1948 में रखा गया था। प्रवर समिति ने पुनः एक प्रकार से समझौते का सुझाव

दिया था लेकिन अन्ततः उसे वापस लेने का निर्णय किया गया था और ऐसा कोई उपबंध सम्मिलित नहीं किया गया।

एक या दो वक्ताओं ने इस प्रकार के कर की साम्या का उल्लेख किया है। 1939 से पूर्व म्युनिसपल कर के लिए कटौती का आय निर्धारण में विशेष रूप से कोई प्रावधान नहीं था और भारत में जब से आय कर शुरू किया था तब से इसकी कटौती नहीं की गई थी। ऐसा क्यों नहीं किया गया इसके दो कारण हैं। पहला कारण यह है कि कराधान का सामान्य सिद्धान्त है कि ऐसी किसी देयता या प्रभार की स्वीकृत नहीं दी जानी चाहिए यदि वह राशि आय अर्जित करने में खर्च नहीं की गयी है बल्कि वह आय का विनियोजन है और यह सिद्धान्त आय-कर अधिनियम की धारा 10(4) के अनुरूप है। मुम्बई सरकार द्वारा लगाये गये म्युनिसिपल कर और शहरी अचल संपत्ति कर भी इसी श्रेणी में आते हैं क्योंकि स्वामी पर स्वामित्व के नाते यह कर लगाया जाता है। ये देयताएं किसी विशेष क्षेत्र में स्वामी पर किसी सम्पत्ति का स्वामित्व होने के नाते लगायी जाती हैं न कि किसी आय का स्वामी होने के नाते। म्युनिसिपल कर की कटौती क्यों नहीं लगायी जाती हैं और क्यों नहीं दी जानी चाहिए इसका दूसरा कारण यह है कि वास्तव में यह विशिष्ट सेवाओं और सुविधाओं की दर है जिसके लिए स्वामी को अपनी आय में से उसी तरह व्यय करना पड़ता है जिस प्रकार वह अपनी अन्य व्यक्तिगत आवश्यकताओं और सुविधाओं पर व्यय करता है। म्युनिसिपल कर आम तौर पर वार्षिक मूल्यांकन का 15 से 25 प्रतिशत के बीच और अक्सर 25 प्रतिशत के आसपास की दर से लगाया जाता है। एक मुम्बई शहरी अचल सम्पत्ति कर भी है जिसे उस सरकार द्वारा लगाया जाता है और मुम्बई म्युनिसिपल्टी उस पर वार्षिक मूल्यांकन का दस प्रतिशत की दर से वसूली करती है। आय कर से इस कर की कटौती करना राज्य सरकारों और स्थानीय प्राधिकरणों का केन्द्रीय राजस्व स्रोतों पर अतिक्रमण करना समझा जायेगा और यह अतिक्रमण इतना अधिक हो सकता है कि केन्द्रीय राजस्व के लिए कुछ भी न बचे। इस पहलू पर सभा को बहुत ही ध्यानपूर्वक विचार करना चाहिए।

हमारा निर्णय सिद्धान्त पर आधारित है। यदि स्थानीय करों के फलस्वरूप आयकर निर्धारण कम होगा तो राज्य और केन्द्र के कराधान अधिकारियों के बीच विवाद उत्पन्न होगा और भारत सरकार स्थानीय निकायों द्वारा कराधान की जाने वाली प्रत्येक वृद्धि की प्रतिशतता का विरोध करना आवश्यक समझेगी और ऐसा करना संविधान के सुचारू संचालन में बाधक होगा। कर की सम्यकता के संबंध में यह एक अतिरिक्त दलील है जिसे कुछ वक्ताओं ने उठाया था।

तदानन्तर स्थिति को ठीक करने के उपायों के संबंध में विलम्ब होने का भी उल्लेख

किया गया था। वस्तु स्थिति इस प्रकार है: उच्चतम न्यायालय ने अपना फैसला 26 मई, 1950 को दिया था। हमें इसकी एक अप्रमाणित प्रतिलिपि 11 जुलाई, 1950 को मिल सकी। तत्पश्चात् इस मामले पर विचार करने तथा परिणामों का आकलन करने और विस्तारपूर्वक विधान बनाने पर भी कुछ समय लगा जो 13 अगस्त, 1950 को हो पाया। इस मामले पर विचार करने में मुझे कुछ समय लगा और सारा मामला सरकार के सामने 26 अगस्त 1950 से पूर्व नहीं रखा जा सका और 31 अगस्त, 1950 को इस बारे में निर्णय लिया गया था। इसके बाद विधि मंत्रालय के साथ प्रारूप संबंधी कई मुद्दे तय करने थे और अध्यादेश मुद्रित करना था और अन्ततः इसे 7 अक्तूबर, 1950 को जारी किया गया था। इस बीच यह मान लेना उचित नहीं है कि सभी मामले खुले रहे। केवल उत्तर प्रदेश में ही मामले रुके रहे जो इलाहाबाद मामले से प्रभावित हुए थे। देश के शेष भागों में पूर्व निर्णयों के अनुसार ही कर वसूल किया जाता रहा।

इस संबंध में सभा की रुचि आंकड़े पर होगी। सरकार के पास खुले मामलों और अन्य मामलों के बीच किसी किस्म का भेदभाव न बरतने के लिए दो विकल्प थे। एक तो ऐसा कानून था कि सभी मामलों में कर लौटा दिया जाये चाहे उनका अन्तिम रूप से निर्धारण हो गया हो, दूसरा विकल्प था ऐसा विधान बनाना और कानून को स्पष्ट करना कि वार्षिक प्रभार का पूंजीगत प्रभार न होने के कारण इसमें सम्पत्ति कर कभी भी सम्मिलित नहीं किया गया था। पहले विकल्प से सरकार को लगभग 25 करोड़ रुपये वहन करने पड़ते। भले ही राशि सिर्फ ऐसे मामलों में ही लौटाई जाए जो विद्यमान कानून के अंतर्गत संभव है तो भी लौटाई जाने वाली राशि छः करोड़ रुपये होगी।

मेरे विचार से मैंने सिवाय किरायेदार के दायित्व संबंधी एक या दो छोटे मुद्दों को छोड़कर चर्चा के दौरान उठाये गये लगभग सभी मुद्दों का उत्तर दे दिया है। यह मुद्दा उठाया गया था कि भत्ता पर्याप्त नहीं है। म्युनिसिपल कराधान में इतनी विभिन्नता है कि इसके लिए कोई सूत्र तैयार करना अनिवार्य है और हमने सोचा कि आधे आधे का सूत्र सबसे ठीक है। हमने प्रावधान रखा है कि जहां पर यह आधा वार्षिक किराये के साढ़े बारह प्रतिशत से कम है तो इस प्रयोजन हेतु कम राशि को लिया जाये। मैं अब सभा की स्वीकृति हेतु अपना प्रस्ताव प्रस्तुत करता हूं।

3
सामान्य बजट, 1951-52*

बजट पर हुई चार दिन की जोरदार बहस के अन्त में मैं बजट के पक्ष में बोल रहा हूं। मुझे दी गई सूचना से मुझे बल मिला है। गत वर्षों के दौरान बजट की तीव्र और कटु आलोचना की गई थी। की गई आलोचना तथा दिये गये सुझावों को ध्यान में रखते हुए मैंने सन्तुलित बजट तैयार करने का प्रयास किया है। फिर भी मैं भारी उलझन में हूं। बजट में परियोजनाओं और पूर्ण रोजगार उपलब्ध कराने हेतु अतिरिक्त व्यय की व्यवस्था होनी चाहिए इसमें ग्रामीण विकास तथा कुटीर उद्योगों के विकास के लिए भी धन की व्यवस्था होनी चाहिए। राज सहायता के तौर पर दी जाने वाली राशि को दुगना करने की भी व्यवस्था होनी चाहिए। देश की सुरक्षा के हित में सशस्त्र बलों के लिए अधिक धनराशि की व्यवस्था होनी चाहिए। इसमें प्रत्यक्ष कर भी नहीं होने चाहिए विशेष रूप से आम व्यक्ति पर कर न लगाया जाये और इन सबके बावजूद यह ऐसा बजट हो जिससे मुद्रास्फीति न हो और मूल्यों में कमी आए। इन सभी बातों को पूरा करवाना असंभव है। इस सुझाव से यह और भी असंभव हो जाता है कि सरकार चलाने के लिए सभी उच्च वेतन प्राप्त अधिकारियों को हटा दिया जाये अथवा ऐसा कोई भी अधिकारी न हो जिसका वेतन तीन अंकों से अधिक न हो।

अपने बजट के साथ इस बजट की तुलना करते हुए आशा है कि कुछ असंतुष्टों को छोड़कर सभी इस बात से सहमत होंगे कि मैंने जो बजट प्रस्तुत किया है उससे देश आर्थिक प्रगति के पथ पर मजबूती से आगे बढ़ेगा। पहले मिश्रित अर्थव्यवस्था के संबंध में, इस बजट में कोई स्पष्ट सामाजिक तथा आर्थिक आदर्श देखने को नहीं मिलता। मैं ऐसी आलोचना को अधीर आदर्शवाद मानता हूं। मेरा कहना है कि इस बजट को इस प्रकार से तैयार किया गया है जिससे देश के आर्थिक विकास की मजबूत नींव रखी जा सके।

मेरा दावा है कि मुद्रास्फीति का मुकाबला करने और सरकार और गैर-सरकारी क्षेत्रों के बीच सन्तुलन कायम रखने, भावी भारत के निर्माण में समाज के सभी वर्गों को

---

*अन्तरिम संसद वाद-विवाद, 14 मार्च, 1951, कॉ॰ 4573—4587

उत्साहपूर्वक साथ लेने और उनमें देशभक्ति जगाने एवम् मित्र देशों से स्वीकार्य शर्तों पर आने वाली पूंजीगत सहायता की संभावनाओं को बढ़ाने की दिशा में यह बजट आजादी के बाद बनाये गये किसी भी पूर्व बजट से अधिक प्रभावी होगा इसके अतिरिक्त यह बजट देश में वर्ग ईर्ष्या को दूर करने का प्रयास है जो जरूरी सामूहिक प्रयास को पंगु बना देता है। मैं आम व्यक्ति, जिनका यह देश है, से उनके बच्चों और उनके बच्चों के बच्चों के नाम पर उनसे बलिदान करने के अनुरोध को गलत नहीं समझता। हम मिश्रित अर्थव्यवस्था के किस चरण में हैं इसकी व्याख्या करने का कोई औचित्य नहीं है। हमारी रुचि उत्पादक स्रोतों का अधिकतम उपयोग करने में हैं। निजी क्षेत्र जितनी सहायता कर सकते हैं और करते हैं हम उस सहायता के लिए उनका स्वागत करेंगे तथा अपनी ओर से पूरी कोशिश करेंगे कि जनहित में गैर-सरकारी अर्थव्यवस्था ठीक से कार्य करने की स्थिति में हो। परन्तु विश्वास की कमी अथवा नीति की कमी के कारण कोई रुकावट आती है तो हम संविधान के ढांचे के अंतर्गत उसे दूर करने का प्रयास करेंगे ताकि इस कार्य में जनशक्ति और धन का उपयोग किया जा सके। मैं इस बात को उचित ही जानता हूं कि अर्थव्यवस्था में सरकारी क्षेत्र का बिना सोचे समझे एकदम विस्तार किया जाये और मेरे विचार से ऐसा सोचना अव्यवहारिक है। हमारे, नये लोकतंत्र में थकी हुई, जल्दबाजी में और अपूर्ण रूप से प्रशिक्षित नौकरशाही है। मुझे शक है कहीं यह अपने कार्यबोझ से ही न टूट जाये यदि हमने समझदारी से काम न लिया तो। इसका मतलब यह है कि जो औद्योगिक नीति हमने कुछ समय पहले घोषित की थी उसमें कोई आवश्यक परिवर्तन नहीं किया गया है। पुनः दोहराकर मैं सदन का समय नष्ट नहीं करना चाहूंगा क्योंकि मेरे विचार से इसके मुख्य तत्व और विशेषतायें माननीय सदस्यों को याद हैं।

इस अवसर पर उद्योग नियंत्रण और विकास विधेयक का उल्लेख करूंगा। मेरे विचार से नाम में कुछ परिवर्तन हो गया है। मैं सभा को आश्वासन देता हूं कि इसे एक तरफ उठाकर नहीं रखा गया है लेकिन यह सोचा गया था कि योजना आयोग की स्थापना के साथ इस प्रकार के कोई उपाय किये जाये तो वे ऐसे हों जो योजनायें योजना आयोग लागू करे उनके अनुरूप हों, जहां तक निजी क्षेत्र का प्रश्न है। दूसरी शब्दों में कुछ समन्वय की आवश्यकता थी क्योंकि विधेयक को मूल रूप में संवैधानिक उपबंधों को ध्यान में रखकर और बिना किसी वास्तविक आधार अथवा बिना किसी वास्तविक अनुभव के आधार पर तैयार किया गया था। महोदय, मेरे ख्याल से योजना आयोग इस विधेयक पर कुछ समय से विचार कर रहा है और इसकी सिफारिशें वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय को सौंप दी गई हैं और मुझे कोई शंका नहीं है कि यह मंत्रालय शीघ्र ही एक सुविचारित विधेयक प्रस्तुत

करेगा या विधेयक पर सुविचारित संशोधन पेश करेगा जिन पर चयन समिति ने पहले ही विचार करके अपनी रिपोर्ट दे दी है।

निजी क्षेत्र में व्यवहार के बारे में बहुत ही कठोर बातें कही गई हैं पूंजीपति सहयोग नहीं कर रहे हैं जैसे जल्दबाजी में दिये गये वक्तव्यों की मैं निन्दा करता हूं। हमारी नीति अच्छे और बुरे भेद करने वाली होनी चाहिए तथा अच्छे तत्वों को बढ़ावा देने तथा बुरे तत्वों और समाज विरोधी तत्वों को दबाने वाली होनी चाहिए। इस संबंध में मैं समझता हूं कि कर-राहतों के बारे में थोड़ी गलतफहमियां हैं जिन्हें गत दो तीन वर्ष तक दिया गया है। यह महसूस किया गया है कि ये सभी राहतें बढ़े हुए औद्योगिक उत्पादन के रूप में या सरकारी ऋणों के समर्थन के रूप में तुरन्त दिखाई देनी चाहियें। पहले तो मेरे विचार से इनमें से कुछ राहतें उन वर्गों, जिन्हें हम पूंजीपति कहते हैं, के लिए बिल्कुल नहीं थी; ये राहतें निम्न मध्यम वर्ग अथवा निम्न आय ग्रुपों के लिए थीं। कुछ मामलों में 10,000 रुपये और 25,000 रुपये की बीच आय वाले ग्रुपों को जानबूझकर खुली राहत दी गई थी जो पूंजीपतियों अथवा उद्यमियों को प्रोत्साहन देने के लिए नहीं बल्कि पूंजी निवेशकर्ता, जो कि एक आम व्यक्ति है, शायद एक उच्च किस्म का आम व्यक्ति, को प्रोत्साहित करने के लिए दी गई थी।

यही व्यक्ति थे जो पहले "मनी मार्किट" और पूंजी निवेश बाजार का समर्थन किया करते थे। परिणामों का आकलन करने के प्रयास में हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हम एक प्रकार के सामाजिक आन्दोलन से गुजर कर आये हैं। जो संवैधानिक परिवर्तन हुए हैं तथा अन्य परिवर्तन होने जा रहे हैं, आय "शिफ्टिंग" के अतिरिक्त, विभिन्न वर्गों के भविष्य में स्वयं एक विभिन्नता आ गई है और पूंजी निवेश बाजार किस प्रकार का होगा। यह भली प्रकार जानने में कुछ समय लगेगा। फिर भी, यह आलोचना कि हमारे ऋण लेने संबंधी कार्यक्रम को समर्थन नहीं मिला है इसलिए गत वर्ष दी गई कर राहतें व्यर्थ गई हैं मेरे विचार से एक गलत धारणा है। मैं नहीं मानता कि धनी वर्ग हमारे ऋण कार्यक्रम का समर्थक था—उनका धन मूलतः औद्योगिक मशीनों को लगाने में व्यय हुआ है। 50 प्रतिशत "मनी मार्किट" को समर्थन बैंकों और बीमा कम्पनियों जैसे संस्थागत पूंजी निवेशकर्ताओं से था और शेष समर्थन काफी हद तक मेरे ख्याल से पुराने उच्च मध्यम वर्गों द्वारा किया गया था। अब ये वर्ग किसी न किसी प्रकार अर्थात् मुद्रास्फीति से अथवा संवैधानिक परिवर्तनों से, अपने भविष्य में परिवर्तन देख रहे हैं और मेरे विचार से यही कारण है, जिसकी वजह से हमारे ऋण कार्यक्रमों को गत दो या तीन वर्षों में सफलता नहीं मिली है।

किसी विशेष वर्ष में निजी पूंजी निवेश में कमी को उस वर्ष अथवा अल्पावधि के दौरान वस्तुओं के उत्पादन की कमी का कारण नहीं कहा जा सकता और इसलिए मुद्रास्फीति दवाब नहीं बढ़ा सकता। मुख्य उद्योग जिनमें उत्पादन कम रहा है वह कपड़ा और जूट टैक्सटाइल हैं। कच्चे माल की कमी, और मैं इसे पुनः दोहराता हूं। तथापि इसे कुछ नफरत के साथ उद्धृत किया गया था, इन दोनों उद्योगों में उत्पादन में अधिक उत्पादन न होने का प्रमुख कारण रहा है। इन मामलों में कम उत्पादन होने के पीछे कराधान व्यवस्था का कोई दोष नहीं कहा जा सकता। अब हमने एक मामले में जो उपाय किये हैं वे बहुत सफल होंगे और दूसरे मामले में कच्चे माल की सप्लाई बढ़ाने हेतु उत्साही उपाय किये हैं। मैं आशा करता हूं कि अगले वर्ष इन उद्योगों में अधिक उत्पादन होगा और इन उद्योगों का कारोबार इस वर्ष की अपेक्षा बहुत अच्छा रहेगा।

बाद में अनेक उद्योगों में उत्पादन बढ़ा है। अपने भाषण में मैंने कुछ आंकड़े उध्दृत किये थे। मैं कुछ आंकड़े और उद्धत करना चाहूंगा। 1950 के पहले दस माह के जो आंकड़े इस समय उपलब्ध हैं उनमें 1946 के मुकाबले कच्चे लोहे का उत्पादन 13 प्रतिशत हुआ है, सीधी ढलाई में 124 प्रतिशत, अर्द्ध तैयार इस्पात में 112 प्रतिशत विद्युत उत्पादन अब 120 प्रतिशत है और 1946 के मुकाबले विद्युत उत्पादन अब 120 प्रतिशत है और 1946 के मुकाबले सीमेंट का उत्पादन 165 प्रतिशत है। अनेक छोटे उद्योगों में उत्पादन में काफी वृद्धि हुई है। उदाहरण के तौर पर, डीजल इंजनों का उत्पादन 1946 के मुकाबले नौ गुणा बढ़ा है, सिलाई की मशीनों का उत्पादन लगभग पांच गुणा बढ़ा है, पावर ट्रांसफारमरों का उत्पादन चार गुणा हुआ है, कास्टिक सोडा और सोडा ऐश का उत्पादन 1946 के मुकाबले 3-3/4 गुणा हुआ है। निजी पूंजीनिवेश के संबंध में वर्ष-वार संक्षिप्त आंकड़े उपलब्ध नहीं है परन्तु यह बात माननी होगी कि उत्पादन का रुख अल्पावधि के दौरान पूंजीनिवेश के रुख के साथ बदलना आवश्यक नहीं है।

सुझाव दिये गये हैं कि प्रत्यक्ष कराधान में वृद्धि करके इस देश को चलाया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति जो आय-कर निर्धारितियों की कुल संख्या तथा उन लोगों की संख्या जो सुपर-टैक्स देते है का अध्ययन करे तो पायेगा कि कुल आयकर दाताओं की संख्या जनसंख्या का 2 प्रतिशत है। निर्धारितियों की कुल संख्या लगभग छः लाख है— मैं समझता हूं कि गणना ठीक होगी तथा सुपर टैक्स देने वाले लोग 28,000 हैं। मेरे विचार से यह कल्पना करना देश को केवल इन लोगों पर कर लगाकर चलाया जा सकता है, स्वयं को धोखे में रखना है जैसा कि मेरे माननीय साथी ने बताया है कि इसमें सरकारी कर्मचारियों की काफी संख्या है जो अपना कर भुगतान ईमानदारी के साथ करते हैं।

अधिकतर कर 25,000 रुपये से अधिक आय वाले लोग देते हैं। कुल आयकर

दाताओं की तुलना में 3000 रुपये से कम आय के लोग 19% हैं और उन्होंने 0.49 करोड़ रुपये का भुगतान किया है। यह आंकड़ा वर्ष 1949-50 का है जब छूट सीमा लागू नहीं हुई थी। अब ये मुक्त हो गये हैं 3000 रुपये और 3500 रुपये के बीच, 0.50 करोड़ रुपये के कर का भुगतान किया गया था और कुल के प्रति इनकी संख्या की प्रतिशतता 12.1 है। 3500 रुपये और 5000 रुपये के बीच की आय वालों ने 1.34 करोड़ रुपये का कर भुगतान किया था। 10,000 रुपये और 15,000 रुपये के बीच के लोगों द्वारा 4.63 करोड़ का कर भुगतान किया गया था। 15,000 रुपये से ऊपर की आय वालों द्वारा 67.33 करोड़ रुपये का कर भुगतान किया गया था और कुल के प्रति इनकी संख्या की प्रतिशतता 42.3 थी। सुपर टैक्स स्तर से ऊपर वाले लोगों की संख्या अर्थात 25,000 रुपये की सीमा से ऊपर 28,000 है। इसमें अधिकारी भी सम्मिलित हैं। यह संभव है कि भविष्य में कुछ समय बाद कर बढ़ाने की गुंजाइश है लेकिन ऐसे देश में जहां हम कर चोरी की समस्या से लड़ रहे हैं वहां पर कर में हर वृद्धि ईमानदार लोगों और उन लोगों पर जो अपना कर अदा करने के लिए तैयार हैं और इसका भुगतान करते हैं, पर बहुत भारी पड़ता है। मेरे विचार से जैसा कि कुछ माननीय सदस्यों ने बताया है कि हमारा कर्त्तव्य पहले कर चोरी की समस्या से निबटना है। इसके बारे में बहुत उपाय सुझाए गये हैं और शायद कुछ कर दिये जायेंगे लेकिन हम यह मानते कि इस समय कर-चोरी की समस्या को हल करने के लिए हमारे पास कोई संतोषजनक उपाय नहीं है।

यदि हमारे पास आय के आंकड़े होते तो मैं समझता हूं कि कराधान का ढांचा और अधिक वैज्ञानिक होता। मुश्किल यह है कि हमें ये आंकड़े अभी तक उपलब्ध नहीं हुए हैं। सम्भव है अगले वर्ष इस समय मेरे स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति उक्त प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूप से दे सकेगा। क्योंकि अब राष्ट्रीय आय समिति अपनी रिपोर्ट देने वाली है और मैं समझता हूं कि वह अपनी रिपोर्ट में वर्ष 1948 के राष्ट्रीय आय के आंकड़े प्रस्तुत करेगी तथा सम्भवतया इस रिपोर्ट में समाज के विभिन्न क्षेत्रों के बीच आय के वितरण का उल्लेख भी होगा। इसलिए जब तक मेरे पास उक्त आंकड़े नहीं होंगे, मैं माननीय सदस्य के प्रश्न का उत्तर नहीं दे पाऊंगा। अब हम कालाबाजारी, करअपवंचन आदि की समस्या पर विचार करते हैं। इस सन्दर्भ में मैं तो यही समझता हूं कि उनमें देशभक्ति की कोई विकृत अवधारणा है। यह ठीक है कि हमारा कर्तव्य है कि हम उनसे निपटने के लिए अपनी ताकत को बढ़ाएं, जिस प्रकार कि हम सभी असामाजिक तत्वों से निपटते हैं। लेकिन दूसरी ओर हम यही उम्मीद कर सकते हैं कि आम आदमी का सही आचरण ही अपने प्रभाव से उनकी धनलिप्सा को कम कर सकता है।

इस संबंध में धारक बांड जारी करने के बारे में भी चर्चा हुई थी। हमने केन्द्रीय राजस्व बोर्ड में इस सुझाव पर काफी गम्भीरतापूर्वक विचार किया और हम इस निष्कर्ष पर

पहुंचे हैं कि इससे कुछ काला धन तो हमारी तिजौरी में आ सकता है, लेकिन हमें उस धन से हाथ धोना पड़ेगा जो नियमित प्रक्रिया से हमारी तिजौरी में आता है। इस प्रकार धारक बाण्ड जारी करने से हमारी पूंजी जुटाने की प्रक्रिया पूरी तरह गड़बड़ा जाएगा।

उसमें अनिवार्य बचत का उल्लेख भी किया गया है जिसके बारे में मैं यह संक्षिप्त चर्चा कर सकता हूं। मुश्किल तो यह है कि आप अनिवार्य बचत और ऋण लेना दोनों घोड़ों पर एक साथ सवार नहीं हो सकते। आपको दोनों में से एक को अपनाना होगा। पिछले वर्ष हमने उक्त प्रक्रिया को अपनाया। इसमें पहली अड़चन हमारे सामने यह आई कि कृषि क्षेत्र पर किसी प्रकार की अनिवार्य बचत लागू करने का कोई व्यावहारिक उपाय नहीं था, क्योंकि कराधान का अधिकार राज्यों के पास है। यह क्षेत्र अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण भाग है और इस बात को ध्यान में रखकर श्रमिक नेताओं ने दावा किया कि अनिवार्य बचत को पूरी तरह मजदूरों पर लागू नहीं किया जा सकता। इसके बाद यह अनिवार्य बचत उच्चतम स्तर के सरकारी अधिकारियों पर लागू होती है जिन्हें 500 रुपये या लगभग इतनी बचत की कटौती करनी पड़ती है। मैं समझता हूं कि यह कटौती $12^1/_2$ प्रतिशत होती है। 250 रुपए तक की अनिवार्य बचत के उच्चस्थ अधिकारियों के बाद एक अनिवार्य बचत योजना है। रेलवे मजदूर इसमें अपवाद हैं। वे जन कल्याण के लिए स्वयं अनिवार्य बचत हेतु सहमत हो गए हैं। मैं समझता हूं कि यह व्यवस्थित रूप से अभी भी चल रही है। मुझे तो लगता है कि उक्त स्थिति से निपटने के लिए किसी भी प्रकार की अनिवार्य बचत से परम्परागत रूप से ऋण लेना लगभग असम्भव हो जाएगा। इसलिए हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि व्यावहारिक रूप से, विशेषकर उस तरीके से, संसाधन नहीं जुटाए जा सकते।

यहां बचत अभियान और ऋण की दर की बात आती है। जहां तक बचत अभियान का मुद्दा है, इस प्रश्न के उत्तर में मैं पहले ही बता चुका हूं कि जिन नए अधिकारियों को हमने नियुक्त किया है उन्होंने इस कार्य में काफी परिश्रम किया है। हमने प्रायोगिक तौर पर कतिपय राज्यों में लागू कमीशन एजेन्ट प्रणाली को पुनः अपनाया है। हम ग्रामीण क्षेत्रों में निक्षेप प्रमाणपत्र संबंधी नए तरीके का प्रसार करने हेतु डाकपालों को नियुक्त कर रहे हैं। हमें पूरा विश्वास है कि निक्षेप प्रमाण पत्र का नया तरीका लोकप्रिय होगा और ऐसा भी हो सकता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में आय के अनिश्चित संसाधनों को देखते हुए हम उनसे बचत करने के अन्य तरीकों को अपनाने का प्रयास कर सकते हैं, जिन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में पूंजी लगाई है। मैं औचित्यपूर्वक यह दावा कर सकता हूं कि जो कुछ मैंने बचत से आकलन लगाया है वह पूरा होगा चाहे बजट में अप्रत्यक्ष कराधान की कितनी भी व्यवस्था की गई हो।

जहां तक पूंजी बाजार के लिए ऋण दर का प्रश्न है, मैं यह बिल्कुल नहीं जानता कि

तत्संबंधी समीक्षा क्या थी—क्या यह आकलन अधिक था या काफी कम था। मैंने कुछ वक्ताओं को यह कहने के लिए एकत्र किया कि यह आकलन अधिक है और इतना धन नहीं जुटाया जा सकता और यदि ऐसा हुआ तो हमारी स्थिति क्या होगी। दूसरी समीक्षा यह थी कि यह आकलन कम था क्योंकि ब्याज की दर पर्याप्त नहीं थी। अब मैं यहां पुनः पूंजी बाजार में हुए परिवर्तनों की ओर ध्यान दिलाता हूं यह विचार करते हुए कि इस मामले में हमारे आकलन राज्य सरकारों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, गत दो-तीन वर्षों के आंकड़े एक पृथक और उत्साहवर्धक प्रगति दिखाते हैं। उनमें से कई राज्य सरकारी प्रतिभूतियों का बड़ा भाग रखते हैं और रिजर्व बैंक की कार्यपद्धति यह है कि वह उन्हें स्वयं न खरीद कर बाजार में जारी करके राज्यों को धन उपलब्ध कराता है अथवा यदि वे ऐसा करते हैं तो यह उनके अपने कार्य क्षेत्र में आते हैं। इस प्रकार सब कुछ देखा जाए तो हमने राज्य सरकारों के लिए ऐसी पूंजी व्यवस्था का प्रावधान किया है, जिससे मुद्रास्फीति न बढ़े। इसके उपरान्त हम उन्हें खुले बाजार से ऋण लेने की अनुमति देते हैं। हमने हाल ही में एक-दो राज्यों को विशेषकर पद्धति से ग्रामीण क्षेत्रों में भी धन जुटाने की अनुमति दी है।इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए मैं समझता हूं कि ऋण लेने संबंधी हमारा आंकलन युक्तिसंगत है लेकिन इसके साथ-साथ सन्तुलित भी है। सन्तुलित इसलिए है कि हम नहीं समझते कि बाजार पर अधिक भार डाल रहे हैं। इस सन्दर्भ से कोई भी व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि पूंजी बाजार की भावी दर क्या होगी।

मैंने स्पष्ट किया है कि पूंजी दर पर नियंत्रण करने संबंधी प्रक्रिया का मुद्रास्फीति से गहरा संबंध है और यदि रिजर्व बैंक अपनी पूंजी बाजार की कार्यवाही को एक निश्चित दर पर इसकी दर को स्थिर करने के लिए जारी रखता है, तो वित्त व्यवस्था में मुद्रास्फीति बढ़ने का हमेशा खतरा बना रहता है। यह वह प्रक्रिया है जिस पर रिजर्व बैंक और केन्द्रीय सरकार सहमत हुए हैं और इसे नहीं अपनाया जाना चाहिए। इस प्रकार इन परिसीमाओं के अन्दर ऋण की दर नियंत्रित की जाएगी। कभी-कभी ऐसा होता है कि स्थितियां हितकर नहीं होती और पूंजी की मांग नहीं होती तथा थोड़ी सी बिक्री से भी बाजार में मन्दी आ जाती है। अन्य समय में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो खरीदने के इच्छुक होते हैं और दर में उतार-चढ़ाव होता रहता है। इसलिए प्रतिभूतियों के मूल्यों में भी उतार-चढ़ाव दिखाई देता है। मैं समझता हूं कि आप ऋण की दर के बारे में कुछ भी नहीं कर सकते और यदि आप कोई उपयुक्त कदम उठाना चाहे तो उससे कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा। मेरा विश्वास है कि पूंजी बाजार में सफलता की कुंजी मुद्रास्फीति को रोकने में है इसीलिए हमे मुद्रा के मूल्य में वृद्धि करनी है और इसी बात को ध्यान में रखकर बजट का नियंतन किया गया है।

महोदय, इस बात के लिए आलोचना की गई है कि बजट से मुद्रास्फीति बढ़ रही है। मैं समझता हूं कि यह विचार बिल्कुल गलत है। जहां तक प्रत्यक्ष कराधान का संबंध है मैं नहीं समझता हूं कि कोई यह दावा कर सकेगा कि इससे मुद्रास्फीति बढ़ रही है। इससे तो मुद्रास्फीति में कमी आने की सम्भावना ही प्रबल होती है। जहां तक अप्रत्यक्ष कराधान के लिए सबसे बड़ा एकमात्र मद तम्बाकू है। जहां तक तम्बाकू उपभोक्ता अपनी खपत को बनाए रखना चाहते हैं, इस वृद्धि का प्रभाव इस खपत को किसी अन्य तरीके से कम करने पर पड़ेगा। इसलिए अनिवार्य वस्तुओं के अलावा अन्य वस्तुओं पर कराधान का समूचा प्रभाव वस्तुओं की खपत में कमी लाएगा और इस प्रकार इससे मुद्रास्फीति पर रोक लगेगी। अन्य मदों पर कराधान काफी व्यापक है। निर्यात शुल्कों से निश्चित रूप से मुद्रास्फीति में कमी आती है। निस्संदेह निर्यात शुल्क मुद्रास्फीति को रोकने का एक उपाय है और यही कारण है कि जब हमने रुपये का अवमूल्यन किया तो पटसन पर निर्यात शुल्क लगाया, क्योंकि इससे निर्यातकों से मिलने वाले लाभ की राशि का एक हिस्सा सरकार के पास आता है। शराब और स्प्रिट पर अधिभार एवं आयात शुल्क और खनिज तेलों पर शुल्कों को युक्तिसंगत बनाना छोटी-छोटी मदें हैं, जिनसे एक करोड़ रुपया प्राप्त हो सकता है तथा एक प्रकार से मैं समझता हूं कि इन्हें अनिवार्य मद नहीं समझा जाना चाहिए। आयात पर 5 प्रतिशत अधिभार पर, जिससे 2 करोड़ रुपये की प्राप्ति हो सकती है, आपत्ति हो सकती है क्योंकि इससे जीवन यापन लागत एवं कुछ उत्पादन लागत में वृद्धि हो जाएगी।

जीवन यापन लागत के संबंध में कुछ आंकड़े उद्धृत किए गए थे। मैं आपको योजना आयोग के समाज सेवा प्रभाग में दिए गए परिकलन के निष्कर्ष बताता हूं जिससे यह प्रकट होता है कि बम्बई के लिए बजट में प्रस्तावित विभिन्न करों—प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर, के परिणामस्वरूप कर्मचारी वर्ग के जीवन यापन लागत सूचकांक में अधिकतम वृद्धि और रेलवे भाड़ों में वृद्धि 1.15 प्वाइन्ट अथवा 33 प्रतिशत होगी। अन्य केन्द्रों के लिए यह प्रतिशत कम होगी, क्योंकि इनके जीवन यापन लागत सूचकांक में रेलवे भाड़ा सम्मिलित नहीं है।

एक प्रकार से बजट से मुद्रास्फीति बढ़ती है। यह मुद्रास्फीति बजट से होने वाले कार्यों से नहीं बढ़ती बल्कि जो कार्य नहीं होते हैं उनसे बढ़ती है। इसलिए बजट में 52 करोड़ रुपये का अनारक्षित घाटे का प्रावधान है। जहां तक घाटे को पूरा किया जाएगा उससे मुद्रास्फीति पर रोक ही लगेगी और जितना घाटा पूरा नहीं हो पाएगा उससे मुद्रास्फीति बढ़ेगी। यद्यपि निष्पक्ष रूप से मैं यह कहूंगा कि जहां तक यह घाटा रिजर्व बैंक में विदेशी मुद्रा को देखते हुए हमारी खरीद के अनुरूप होगा, यह पूंजी अनिवार्य रूप से

आन्तरिक परिचालन में नहीं आएगी, इसलिए उस सीमा तक इसकी कठोरता कम हो जाएगी।

जहां तक कराधान की मात्रा का संबंध है वाद-विवाद में कई शिकायतें की गई हैं। मैं नहीं समझता कि यह उक्त शिकायतों से निपटने का उपयुक्त अवसर है। मैं समझता हूं कि और भी ऐसे अवसर आएंगे, विशेषकर प्रवर समिति में, जब इन सुझावों पर, विशेषकर मिट्टी के तेल एवं मदों के बारे में, ध्यान दिया जा सकेगा। लेकिन इस बारे में मैं कोई वादा नहीं करता।

महोदय, अब मुख्य बात जो मैं यहां बताना चाहता हूं वह यह है कि मैंने 50 करोड़ के घाटे को अपूरित छोड़ दिया है और मैंने अन्त अतिशेष 43 करोड़ रुपया छोड़ा है। अब मैं माननीय सदस्यों के दिमाग से यह भ्रान्ति दूर कर देना चाहता हूं कि हमारे ऊपर लगाई गई 50 करोड़ रुपये की राशि की सीमा सांविधिक नहीं है। और न यह बैंकर की सीमा है। यह तो एक विवेक की सीमा है। लेकिन पुराने दिनों के नकद अन्त अतिशेष के कुल कारोबार को ध्यान में रखते हुए, मैं समझता हूं, कि कोई भी समझदार व्यक्ति इस निष्कर्ष पर पहुंचेगा कि इस आयामी बजट का अन्त अतिशेष 50 करोड़ रुपये के आसपास होना चाहिए। लेकिन जो बात मैं स्पष्ट करना चाहता हूं वह यह कि मैंने केवल 43 करोड़ रुपये का प्रावधान किया है। यह ऐसा नहीं है कि मैंने इस बजट में पूर्णता प्राप्त कर ली है। इसलिए यह आलोचना कुछ हद तक गलत है कि कतिपय आकलनों को कम आंका गया है, मैंने भारत-पाकिस्तान व्यापार समझौते के सम्भावित लाभप्रद प्रभावों पर विचार नहीं किया। इस तथ्य से हटकर मैंने जितना अच्छा आकलन हो सकता था उतना किया और समझौते वाला तथ्य भी मुझसे छुपा हुआ नहीं था। बजट बनाते हुए कुछ समय तक इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया गया। लेकिन मैं नहीं समझता हूं कि इससे कोई विशेष अन्तर आएगा। यदि इससे पटसन निर्यात में वृद्धि उसी स्तर पर होती रहेगी जितनी गत वर्ष थी तो मैं सोचता हूं कि यह हमारा सौभाग्य होगा। मैं यह बिल्कुल नहीं जानता कि भारी मात्रा में पटसन की वस्तुएं उपलब्ध होने का अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा और अन्य क्या मुद्दे उत्पन्न होंगे लेकिन आमतौर पर मैं समझता हूं कि मैंने पूरी ईमानदारी से बजट आकलन बनाए हैं।

मैं समझता हूं कि अधिकाश सदस्यों को कुछ आशंका है—यद्यपि वे इस बात से सहमत जान पड़ते हैं कि इस वर्ष कुछ ठोस उपाय करने आवश्यक थे लेकिन फिर भी वे भविष्य के प्रति आशंकित लगते हैं। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ कि क्या कराधान जारी रहेगा अथवा प्रत्येक वर्ष हमें नए-नए कर लगाने चाहिए। यह तथ्य मेरा ध्यान बजट के उद्देश्य की ओर आकर्षित करता है। जैसा कि मैंने कहा है कि बजट का उद्देश्य

आगामी पांच-छह वर्षों के विकास के लिए एक अच्छी शुरुआत करना है। कोलम्बो योजना में हमने प्रतिवर्ष 300 करोड़ रुपये के खर्च का प्रावधान किया था, इसमें केन्द्र और राज्यों के लिए संयुक्त रूप से व्यवस्था थी। इसमें हमने सोचा कि हमें 200 करोड़ रुपये स्वयं जुटाने चाहिए अर्थात यहां पुनः केन्द्र और राज्य क्षेत्रों का संयुक्त रूप से योगदान होना चाहिए। मैंने गत वर्षों के आंकड़ों का अध्ययन किया है। और मैं देखता हूं कि हमारे आंकड़ें उनसे काफी कम हैं। मैं समझता हूं कि कुल घाटा लगभग 100 करोड़ रुपये का होगा। अर्थात् हम अपने विकास कार्य पर लगभग 100 करोड़ रुपये के घाटे की वित्त व्यवस्था चला रहे हैं। इस समय मैं समझता हूं कि हमारा घाटा 50 अथवा 60 करोड़ रुपये के आसपास होगा। यदि स्थितियों में सुधार होता है, जैसी की सम्भावना है तो मैं समझता हूं कि हमारा घाटा कुछ कम हो जाएगा अर्थात् हमें अपनी विकासात्मक योजनाओं के लिए 200 करोड़ रुपये जुटाने होंगे।

ऐसी बातों में मैं विश्वास नहीं करता, फिर भी मुझे ऐसी उम्मीद है कि राहत और पुनर्वास पर हमें सदा खर्चा करना पड़ेगा। मैं समझता हूं कि दो-तीन वर्ष में यह खर्च कम हो जाएगा। इस समय यह खर्च 35 करोड़ रुपये है। इसके बाद खाद्यान्न संबंधी राज सहायता आती है। माननीय सदस्यों ने जो कुछ कहा उस सब के बावजूद मैं समझता हूं कि यह प्रणाली काफी अच्छी नहीं है और मुझे उम्मीद है कि एक दिन ऐसा आएगा कि बजट में खाद्यान्न संबंधी राज सहायता का कोई प्रावधान नहीं होगा। यह राशि लगभग 20 करोड़ रुपये होगी। हमारी खाद्य आत्मनिर्भरता योजना से अधिक अन्न उपजाओं को जोड़ा गया है और ये योजनाएं कई वर्ष तक चलती रहेंगी। लेकिन उसके बाद मैं समझता हूं कि इस खर्च में कुछ राहत मिलेगी अब हम ई०पी०टी० जमा वापस कर रहे हैं। यह प्रक्रिया एक-दो वर्ष में पूरी हो जानी चाहिए। यदि आप इन आकड़ों को जोड़ें तो आप देखेंगे कि भविष्य में हमारे बजट को उक्त खर्चे से काफी राहत मिलेगी। इसलिए मैं इतना निराशावादी नहीं हूं कि हमें कराधान की प्रक्रिया को जारी रखना पड़ेगा। मेरा कहना है कि यदि हालात इस प्रकार नहीं बदलते तो हमें कराधान और विकास के बीच का रास्ता चुनना पड़ेगा। मेरा पुनः अनुरोध है कि हमें ऐसा प्रयास करना चाहिए और भावी पीढ़ी के लिए स्वयं को एक सीमा में रखना चाहिए।

कार्यकुशलता और सेवाओं पर निर्भरता आदि से संबंधित आम मामलों से निपटने के मामले में प्रधान मंत्री जी ने मेरा कार्य काफी हल्का कर दिया है। सदन के भूतपूर्व सदस्य के रूप में किसी भी प्रकार से मेरे लिए कुछ कहना कठिन होता, क्योंकि ऐसा करने में विशेष दलील देनी पड़ती। लेकिन मैं यह कहना चाहूंगा कि सरकारी कार्यों और सेवाओं में कठिन परिश्रम का पूरा सदुपयोग नहीं किया जाता और हाल के वर्षों में इतना अधिक सरकारी कार्य हुआ है जिसकी हमने कल्पना तक नहीं की थी। विभिन्न क्षेत्रों में हमारा

जनसम्पर्क काफी बढ़ गया है और जहां तक मेरी व्यक्तिगत जानकारी है, उच्चस्थ अधिकारियों पर काम का अत्यधिक बोझ है।

महोदय, हमने जो परियोजनाएं शुरू की हैं उनके स्वरूप के बारे कुछ आलोचना हुई है। मेरा विश्वास है कि यदि इस प्रक्रिया को नए सिरे से शुरू किया जाए तो हमें उत्साहवर्धक तरीके से कुछ नदी घाटी परियोजनाओं को प्रारम्भ करना चाहिए। मुझे इस मामले में बहुत कुछ करना है और मुझे उनके प्रशासन को परखने का अवसर भी मिला है। सब कुछ देखते हुए मैं समझता हूं कि यह विचार काफी सुदृढ़ है तथा अपनी भूमि की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना सबसे सस्ता और अत्यधिक किफायती तरीका है। अर्थात् विभाजन के बाद जिस स्थिति में हम पहुंच गए हैं उससे निपटने के लिए हमें अपनी भूमि को अत्यधिक उपयोग में लाना होगा। लघु सिंचाई योजनाएं भली-भांति चल रही हैं लेकिन मानसूनी स्थिति की विषमता को देखते हुए उन पर अधिक निर्भर नहीं रहा जा सकता, जैसा कि आप देश के अधिकांश हिस्सों को देखते हैं। अधिकांश कुएं, तालाब और यहां तक कि कृष्णाराज सागर भी समय पर वर्षा न होने से सूखने लगते हैं, जबकि दूसरी ओर मुझे विश्वास है कि ये बड़ी-बड़ी नदी घाटी परियोजनाएं काफी लाभदायक और स्थायी सिंचाई का साधन बनेंगी। मैं समझता हूं इनके अपेक्षित परिणाम अस्पष्ट हैं तथा यह तथ्य भ्रामक है। मेरी समझ में नहीं आता कि दो वर्ष पूर्व शुरु हुई नदी घाटी परियोजना का अपेक्षित परिणाम अभी कैसे प्राप्त होगा क्योंकि इसमें अभी बांध नहीं बना है, नहरें नहीं खुदी हैं। यह बात सही है कि मद्रास में जहां ये योजनाएं पहले शुरु हुई थी, वहां कुछ योजनाओं के माध्यम से कुछ राजस्व प्राप्त होने लगा है और यह एक अच्छा संकेत है। समूचे भारत में ऐसी योजनाएं चल रही हैं और मैं समझता हूं कि यह उद्यम का एक अच्छा क्षेत्र है, जिसमें आज भारत को हर कीमत पर निवेश करना चाहिए। अन्तशेष के संबंध में यह आलोचना भी उचित नहीं है कि अन्तशेष कम होना चाहिए। अन्तशेष तो रहता है चाहे उसे कम रखा जाए या कराधान करके यथास्थिति को बनाए रखा जाए क्योंकि गत दो तीन वर्षों में शायद ही कराधान हुआ हो। राहत दी गई इसलिए अन्तशेष को कम रखा गया और इसके परिणामस्वरूप हम मुद्रास्फीति के परिणामों से इसलिए बचे रहे कि हमारी विदेशी मुद्रा की मांग उस राशि से काफी अधिक थी, जितनी राशि हमने अन्तशेष में कम की थी। दूसरे शब्दों में हमें 400 करोड़ रुपये खर्च करने पड़े जिसका हमने मशीनों, खाद्यान्न एवं अन्य साधनों के लिए भुगतान किया। इस प्रकार हमारा अन्तशेष 400 करोड़ रुपये कम हो गया जिसका आपको स्टर्लिंग रूप में रिजर्व बैंक को भुगतान करना पड़ा। 400 करोड़ रुपये के बजाय आपने स्पष्ट रूप से 400-172 करोड़ रुपये का भुगतान किया। इस सीमा तक आप निश्चित रूप से विदेशी मुद्रा की लागत को पूरा करने हेतु धनराशि जुटाते हैं। इसलिए मैं नहीं समझता कि कोई ऐसी बात

है जिसके लिए सरकार को दोषी ठहराया जाए। अन्तशेष को कम करने के मामले में हम उम्मीद कर रहे थे कि हम समापन की ओर आ रहे हैं, लेकिन यदि इस वर्ष ऐसा होता है तो अगले वर्ष के अन्त में हम ऐसा नहीं पाएंगे कि हम उस छोर तक पहुंच गए हैं और यही कारण है कि मैंने इस सभा से यह कहने का साहस किया है कि उन अन्तशेषों की प्रतिपूर्ति आत्म-बलिदान और आत्म-निर्भरता के कृत्य से की जाए।

अब अर्थव्यवस्था और खर्चे पर नियंत्रण की बात आती है। जहां तक खर्च पर नियंत्रण का प्रश्न है, मैं सदा सभा के साथ रहा हूं। लेकिन जैसा कि मैंने पिछले अवसरों पर स्पष्ट रूप से बताया था कि यह एक दीर्घकालीन प्रक्रिया है। इस मामले में हमें एक सतत प्रक्रिया अपनानी पड़ेगी। इसके लिए ऐसी कोई चकाचौंध कार्यवाही नहीं की जा सकती, जिसके कि तुरन्त परिणाम बजट में दिखाई दें। मैं तो केवल यह बात पुनः कह सकता हूं कि अर्थव्यवस्था के मामले में हम उदासीनता नहीं बरतेंगे।

जहां तक अर्थव्यवस्था संबंधी उपायों के परिणामों का संबंध है मैंने उन योजनाओं का बड़े ध्यानपूर्वक अध्ययन किया, जो हमने तैयार की थी और मुझे अपने सहयोगियों से इस बात पर सहमत होना पड़ा कि जिन क्षेत्रों में मुझे आर्थिक उपायों की संम्भावना थी वहां इस समय उनकी अधिक गुंजाइश नहीं थी। ऐसा हो सकता है कि कर्मचारियों की अधिकता को कम करने के लिए उनकी कुछ छंटनी करनी पड़े और इसी प्रकार की अन्य बातें हैं। लेकिन यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसे पूरे वर्ष भर अपनाना पड़ेगा। यह सुझाव कि एक दिन में एक व्यक्ति को 19,000 अथवा 20,000 नोटिस जारी करने का सुझाव, जैसा कि बम्बई में किया गया था, मुझे ठीक नहीं लगता। एक सुझाव प्रो० के० टी० शाह द्वारा दिया गया था कि प्रवर वित्त समिति को खर्चे संबंधी मदों की पूरी छानबीन करने का पूरा-पूरा अवसर नहीं दिया गया। मैं समझता हूं कि उनकी धारणा कुछ पुरानी है। मैं उन्हें चुनौती दे सकता हूं कि प्रवर वित्त समिति के किसी भी सदस्य से पूछ कर अपनी सन्तुष्टि कर सकते हैं कि उन्हें कितनी सामग्री सप्लाई की जाती है और उक्त योजनाओं की संवीक्षा करने में कितना समय लगाते हैं।

इन परियोजनाओं के बारे में एक प्रश्न उठाया गया था कि हम राज्य सरकारों को अधिशुल्क लगाने हेतु प्रेरित कर सकते हैं। स्पष्ट रूप से हमने ऐसा ही किया है, लेकिन इससे वर्तमान खर्च में कटौती नहीं हो पाएगी। जहां तक केन्द्र का संबंध है इससे निश्चित रूप से हमारे ऋणों की वापसी के अवसर बढ़ जाएंगे जो ऋण हमने उन्हें दिए हैं। मेरा विश्वास है कि एक राज्य ने ऐसा विधान पारित कर लिया है। और दूसरा भी ऐसा ही करने वाला है और सरकार तथा योजना आयोग दोनों, राज्यों को इस बात पर सहमत करने का पूरा प्रयास कर रहे हैं जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि जिन्हें इन नई

सिंचाई योजनाओं का लाभ पहुंचता है, वे इन योजनाओं पर खर्च की गई धनराशि की अदायगी के भागीदार बनें। यह एक बहुत ऊंचा विचार है और इस प्रक्रिया को अपनाया जा रहा है। भाग 'ग' राज्यों के बारे में छोटी सी बात और है। इस बात पर उनसे मेरी पूरी सहानुभूति है मुझे खेद है कि हमने इसका पूरा विवरण नहीं दिया कि उनके बजट में क्या व्यवस्था होती है। मैं नहीं जानता हूं कि अगली बार भी यह विवरण दिया जा सकेगा, लेकिन यदि वह विवरण उपलब्ध हुआ तो मैं विश्वास दिलाता हूं कि जहां तक भाग 'ग' राज्यों का संबंध है बजट में महत्वपूर्ण परिवर्तनों के बारे में पर्याप्त विवरण दिया जाएगा।

अब मुझे आवंटित समय समाप्त होने वाला है। मैं समझता हूं कि जो सन्देश मैं सभा के लिए छोड़ रहा हूं मुझे आशंका है कि कहीं यह संदेश पराजय या कुंठा के गर्त में डूब न जाये। मैं समझता हूं कि वर्तमान स्थिति, जिसे मैं एक आपात स्थिति मानता हूं, आर्थिक विकास की आपात स्थिति है। यह कोई दूसरे प्रकार की आपात स्थिति नहीं है। मैं समझता हूं वर्तमान आपात स्थिति, हम सबके लिए चुनौती है और आज के भारत में बुजदिल लोगों के लिए कोई जगह नहीं है। ... श्री देशपांडे ने मुझे ग्रामवासियों पर कराधान करने का उल्लेख करने की चुनौती दी है। मैं यही बात बताना चाहता था। मैं उन गांवों का बार-बार दौरा करना चाहूंगा जिन पर मैंने कराधान अनिवार्य बताया है। मैं उस खर्चे से होने वाले लाभ को बताना चाहूंगा जिस खर्च का वित्त पोषण कराधान से किया जाता है और इस प्रकार राष्ट्रीय प्रयास की प्रेरणा को स्पष्ट करना चाहूंगा।

व्यक्ति की अधिकतम आय सीमा*

मेरा ख्याल है कि इस प्रकार के प्रस्ताव** पर विचार करने के लिये कोई पृष्ठभूमि आवश्यक थी और सौभाग्य से हमें यह बात योजना के उप स्थापन से मिल गई है। योजना दरअसल क्या है? योजना का उद्देश्य उत्पादन, विनियोग और विकास है। अर्थात् उद्देश्य यह है कि समुदाय के लिये विशेषकर समुदाय के उस भाग के जिसकी स्थिति अपेक्षाकृत कम अच्छी है, सामाजिक सेवाओं की व्यवस्था की जाये।

सौभाग्य की बात है कि योजना के अन्तर्गत सामाजिक सेवाओं पर जो राशि व्यय की जाने वाली है—वह लगभग 19 या 20 प्रतिशत है, उसे हम बनाये रख सकते हैं, यद्यपि नई योजना के 20 प्रतिशत का अर्थ यह होगा कि वह पुरानी योजना के 19 या 20 प्रतिशत से कहीं अधिक होगा। यह स्पष्ट है कि जिस सीमा तक हम विकास के लिये धन राशियां व्यय कर सकते हैं, हम आय, धन और अवसर की असमानताओं को दूर करने के लिये निश्चित कार्यवाही कर रहे हैं। इसके बाद हमारे सामने प्रश्न आता है उत्पादन का। मेरा विचार है कि यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमें इस प्रश्न पर एक ऐसे वातावरण में विचार करना चाहिये जो भावना/अनुचित उत्साह या आशंका से मुक्त हो, क्योंकि यह अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि उत्पादन की जिन विधियों को हम अगले 5 वर्षों में काम में लाने जा रहे हैं उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार की गलती नहीं होनी चाहिये।

इस प्रसंग में, मैं यह आवश्यक समझता हूं कि मेरे माननीय मित्र श्री गाडगिल ने जो विभिन्न तरीके बताये हैं उनके बारे में मैं एक बार ही सभी बातें स्पष्ट कर दूं। आय और अवसर की समानता लाने का सर्वोत्तम उपाय उत्पादन के अधिकांश साधनों का राष्ट्रीयकरण करना है। इसका अर्थ एक अत्यन्त प्रगतिशील समाजवाद है। हमने योजना में इस बात के कारण बताये हैं कि हम इस समय इसे व्यवहार्य क्यों नहीं समझते और हम इस निष्कर्ष पर क्यों पहुंचे कि सरकारी और गैर-सरकारी उद्योगों का कंधे से कंधा मिला कर चलना देश के लिये आवश्यक क्यों प्रतीत होता है। वह एक ऐसी बात है जिसे

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 25 मई, 1966, पृष्ठ 9518-9527

**इस सदन का मत है कि सरकार को किसी व्यक्ति की अधिकतम आय निर्धारित करने के लिए शीघ्र ही उचित कदम उठाने चाहिए—यह संकल्प 27 जुलाई, 1956 को श्री विभूति मिश्र ने पेश किया था।

विरोधी पक्ष के कुछ सदस्यों ने भी स्वीकार किया है। इसलिये मेरा ख्याल है कि जहां तक विचाराधीन प्रश्न का सम्बन्ध है, यह कहना संगत नहीं कि हम समाजवाद के पथ पर चलना शुरू करें और समय आने पर सब ठीक हो जायेगा। यह स्पष्ट है कि उस समय ऐसा केवल इसलिये होगा क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार सरकार का कर्मचारी होगा। दूसरे शब्दों में हमारे यहां एक अत्यन्त व्यापक नौकरशाही होगी। वेतन-भोगी वर्ग उस वर्ग की अपेक्षा पारिश्रमिक के निर्धारण के पक्ष में अधिक होता है जो गैर-सरकारी उद्योगों के क्षेत्र में कार्य करता है। किन्तु आज हमारे सामने यह प्रश्न नहीं है।

जहां तक वेतनों का सम्बन्ध हैं, केन्द्रीय वेतन आयोग का और अधिक वेतन पाने वाले कुछ सरकारी नौकरों के वेतन के आंकड़ों का उल्लेख किया गया था। माननीय सदस्यों को यह ज्ञात है कि वेतनमानों की सिफारिशें सरकारी सेवाओं में आने वाले नये लोगों के लिये की गई और सरकार ने उन्हें स्वीकार कर लिया है। बात यह है कि कुछ पुराने अफसर अभी मौजूद हैं और विरोधी दल के लिये वही उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। किन्तु यह बात भुलानी नहीं चाहिये कि वेतन आयोग की सिफारिशों को मुख्य रूप से स्वीकार कर लिया गया है और सचिवों के उच्चतम वेतन के अतिरिक्त, जो कि 3,000 रुपये प्रति मास तक जायेगा, उच्चतम वेतन 2,500 रुपये प्रति मास होगा। वेतन आयोग ने व्यक्तिगत वेतन 3,000 रुपये प्रतिमास तक का निर्धारण करने की सिफारिश की है।

जैसा कि मैं कह चुका हूं, कि यहां पर हम वेतन के प्रश्न पर विचार नहीं कर रहे हैं। जैसाकि माननीय सदस्यों ने कहा है कि यदि आप आय की उच्चतम सीमा निर्धारित करें भी और करायान के बाद कुछ आय रह जाती है तो मुझे इस बात में संदेह है कि सार्वजनिक क्षेत्र का कोई वेतन इस प्रकार की उच्चतम सीमा की परिधि में आयेगा। इसका कारण यह है कि आपको आय के 30 हजार, 36 हजार या 40 हजार रुपये प्राप्त करने के लिये आपकी आय 60,000 रुपये होनी चाहिये। इसलिये मेरा ख्याल है कि हमें वास्तविक प्रश्न से परे नहीं हटना चाहिये और सरकारी कर्मचारियों के वेतन की चर्चा इस समय नहीं करनी चाहिये।

राज्य सभा में एक संकल्प प्रस्तुत किया गया था जिसमें वेतन की उच्चतम सीमा निर्धारित करने की मांग के अतिरिक्त यह कहा गया था कि सरकारी नौकरों के वेतन एक विशिष्ट स्तर पर निर्धारित किये जायें। किन्तु हमारा संबंध यहां इस प्रश्न से नहीं है। इस बात को देखते हुए कि हमारे सामने मुख्य समस्या उत्पादन की है हमें इस पर पूर्ण रूप से विचार करना होगा। पहली बात यह है कि हम उत्पादन को किन उपायों से बढ़ाने में सफल होंगे और दूसरी बात यह है कि आय और सुविधाओं का वितरण होगा। इसलिये

मेरा ख्याल है कि सामाजिक न्याय का उल्लेख पूंजीवाद उत्पादन के प्रति सामान्य जनता की भावनायें—ये बातें तो मतदाताओं को पसन्द आयेंगी। आर्थिक बुराइयों की ओर संकेत हम क्या करने वाले हैं इस संबंध में निश्चित वक्तव्य देने की मांग, सदाश्यता के अभाव की बात, नैतिक दायित्व की चर्चा, गैर सरकारी उद्योग क्षेत्र के प्रति हमारा पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण—आदि बातें वास्तव में ऐसी हैं जो समस्या को हल करने वाली नहीं हैं। हमें अपने आपको एक ऐसी समिति में गठित कर लेना चाहिये जो एक मत से अधिकतम उत्पादन करने और उसके वितरण में अधिकाधिक समानता लाने की इच्छा रखती हो। यदि हम यह चाहते हैं तो हमें इन सुझावों और आरोपों को त्याग देना चाहिए। इस मूलभूत कार्य को करने के लिये हम उन लोगों की अपेक्षा अधिक उत्साह और लगन से जुटे हुए हैं, जिन पर कार्यपालिका के कार्य का दायित्व नहीं है। यह इसलिये कि सभा अन्ततोगत्वा योजना की क्रियान्विति की आशा हम से करती है। इस सभा को निश्चय ही यह अधिकार है कि जिन उपायों को हम काम में लाने का इरादा रखते हैं, उनकी वह आलोचना करें किन्तु औरों की तरह हम इसे अपने दृष्टिकोण से देखें तो हम यही करेंगे कि लक्ष्य की पूर्ति के लिये हम जितने व्यग्र हैं उतना और कोई नहीं हो सकता। इसलिये सभा से मैं अपील करता हूं कि वह ऐसी बातें न कहे कि हम पूंजीपतियों के प्रति पक्षपात करते हैं या कि हम पर उनका प्रभाव बहुत ज्यादा है।

मैं चाहता हूं कि योजना आयोग ने योजना के पृष्ठ 32, पैरा 19 से 29 में "असमानताओं में कमी" के बारे में विस्तारपूर्वक जो कुछ कहा है, सभा इन बातों को ध्यान में रख कर उसे अत्यन्त सावधानी से पढ़े। योजना का यह सारा भाग पढ़ने के लिये मेरे पास समय नहीं है, किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि माननीय सदस्य इसे निष्पक्ष भाव से पढ़ें तो इस सम्बन्ध में, उन्हें जो कठिनाइयां प्रतीत हो रही हैं, उनमें से कुछ दूर हो जायेंगी।

अगला प्रश्न यह है कि यदि उत्पादन को हम इतना अधिक महत्व देते हैं तो यह आवश्यक है कि हम उत्पादन को प्रोत्साहित करें। आप उसे प्रोत्साहन कहें अथवा भौतिकवादी दिलचस्पी बात वही है। उसे धनी लोगों को लागू किया जाये तो, और गरीब लोगों को लागू किया जाये तो, बात वही ही है। माननीय सदस्य जब यह कहते हैं मेरा ख्याल है कि श्री मुकर्जी ने यह कहा था कि—"इस बात पर विचार कीजिये कि लाखों देशवासियों को यह मनोवैज्ञानिक संतोष होगा। किन्तु उनके साथ न्याय होगा"—तो मैं उनसे सहमत हूं। निश्चय ही उससे उत्पादन में वृद्धि होगी। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि आप गैर-सरकारी उद्योगों के क्षेत्र में प्रोत्साहन देने के दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। आपको यह बात निश्चित कर लेनी चाहिये कि जिस प्रकार का प्रोत्साहन आप दे रहे हैं वह सर्वोत्तम व्यक्तियों को आकर्षित करने के लिये पर्याप्त होगा, यद्यपि आप अनिच्छापूर्वक

उन्हें गैर सरकारी उद्योगों के क्षेत्र में कार्य करने दे रहे हैं यह ऐसा प्रश्न नहीं है जिसे गणित के सूत्र से अथवा एक बार ही हल किया जा सकता है। यह संभव है कि पुराने अनुभव के आधार पर वास्तविक पारिश्रमिक के संबंध में उनकी जो आशायें हैं वे अत्यधिक महत्वपूर्ण हों। और जैसे-जैसे समय बीतेगा और कराधान के नये उपाय निकलेंगे वैसे-वैसे वे कम पारिश्रमिक पाने की आशा करेंगे। मैं केवल प्रोत्साहन और उत्पादन को ध्यान में रखते हुए यह कहता हूं कि आज जो बात संभव नहीं है वह अगले दो-तीन या पांच वर्षों में संभव हो सकती है। यही बात है जिसके कारण समाज के अत्यन्त धनी लोगों की संख्या कम करने के लिये दूसरे शब्दों में कराधान और विशेषकर प्रत्यक्ष कराधान के बारे में हम क्या कार्यवाही करने वाले हैं—इसे हम अधिक स्पष्ट नहीं कर सकते हैं।

माननीय सदस्य श्री मुकर्जी ने यह मांग की थी कि इस संकल्प पर जो मतैक्य है उसे देखते हुए अभी यहां पर घोषणा कर दूं कि असमानताओं को दूर करने के लिये सरकार क्या कार्यवाही करने वाली है। गत छः वर्षों में राजकोषीय प्रशासन सम्बन्धी मामलों के बारे में मुझे जो अनुभव हैं उसके आधार पर मुझे यह बात सूझती ही नहीं कि मैं योजना द्वारा द्वितीय पंचवर्षीय योजना में वर्णित उपायों के बारे में इस सभा का समाधान कैसे कर सकूंगा। भविष्य में कराधान का स्वरूप कैसा होगा। इस सम्बन्ध में मैं उन्हें ठीक-ठीक क्या बता सकता हूं? मैं यह कैसे बता सकता हूं कि पूंजी लाभ के बारे में क्या कार्यवाही करना चाहता हूं? सम्पदा शुल्क अधिनियम में मैं क्या संशोधन करना चाहता हूं। यह मैं कैसे कह सकता हूं? मेरा ख्याल है कि योजना पर जो चर्चा हुई थी, उसके दौरान से किसी ने यह शिकायत की थी कि योजना में अतिरिक्त लाभ पर उपहारों पर कर, व्यय पर कर और कराधान के अन्य सैकड़ों प्रकारों का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। मैं समझता हूं कि चूंकि हम एक योजना-बद्ध अर्थव्यवस्था की बात कर रहे हैं इसलिये उचित अवसर पर आते हैं जबकि अपने विचारों को स्पष्ट किया जाता है और ठोस उपाय काम में लाये जाते हैं और ठोस उपायों से मेरा तात्पर्य है वित्त विधेयक। क्या इस सभा के माननीय सदस्यों को उत्तर देते समय मैं 12 वित्त विधेयक उनके सामने रख दूं? यह संभव नहीं है। सभा को स्मरण होगा कि आय-व्ययक सम्बन्धी सामान्य चर्चा के दौरान मैंने यह कहा था कि कराधान के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीकों के बारे में सरकार क्या करने जा रही है, इस बात को बहुत पहले बता देना मेरे लिये संभव नहीं है। आज सुबह यह बात कही गयी थी। राज्य विधान मंडल अपने क्षेत्र में पूर्णतया स्वतंत्र है और केन्द्रीय विधान मंडल भी संविधान द्वारा उसे नियत किये गये क्षेत्र में सर्वोच्च है। इसलिये मंत्रियों के वेतन के सम्बन्ध में राज्य विधान मंडल द्वारा पारित किसी विधान की आलोचना करना मेरे लिये अनुचित होगा। मेरा यही उत्तर इस विधान मंडल के सम्बन्ध में भी है कि संवैधानिक दृष्टि से मैं इस विशिष्ट प्रश्न का विवेचन नहीं कर सकता।

मैं यह कह रहा था कि सभा, राज्यों के विधान मंडल और निर्वाचन मंडल अब करारोपण के सम्बन्ध में बहुत कड़ी कसौटी लागू करेंगें। मैं समझता हूं कि भविष्य में वित्त मंत्रियों का काम इस अर्थ में अधिकाधिक कठिन होता जाएगा कि यदि प्रत्यक्ष करारोपण द्वारा धन वसूल किया जा सकता हो तो वे एक पाई भी अप्रत्यक्ष कर नहीं लगायेंगे। इसलिए यह भविष्य में सोचने का प्रश्न है कि कोई किस तरह का व्यवहार करेगा तथा कोई किस तरह, इन वित्तीय मामलों को सुव्यवस्थित करेगा।

श्री अशोक मेहता का यह कहना भी सच है कि विकास के अधिकतर क्रियाकलाप से प्रारम्भ में आय की असमानता बढ़ती है। उनसे धनी अधिक धनी, और गरीब, अधिक गरीब होता है। इसलिये यदि योजना विभाग और देश जागरुक न रहे तो ये सभी परिणाम सामने आयेंगे। मुझे पता चला है कि स्वीडन जैसे समाजवादी देशों में भी ऐसा होता है। अतः मैं इस विषय में कि धन किस प्रकार एकत्र हो रहा है और समुदाय में अधिक अच्छे वितरण के लिये वह इस प्रकार काम में लाया जा सकता है, बहुत जागरुक रहने की आवश्यकता भली भांति समझता हूं।

इसलिये यदि माननीय सदस्य बातों से सहमत हों कि हमें अधिकतम उत्पादन करना चाहिये और प्रत्येक करारोपण विधेयक सामने रखने पर उन्हें यह पूछने का अधिकार होगा कि मुनाफे की पहली श्रेणी में रखे जाने वाले मुनाफों के संबंध में अर्थात लाभांश की मंजूरी या लगान के संबंध में हम क्या उपाय करने का विचार करते हैं, तब निश्चय ही सम्बन्धित वित्त मंत्री को बहुत संतोषजनक उत्तर देना होगा।

ये सब बातें आज क्यों नहीं रखी गयी हैं इसका कारण यह है कि (एक) हमें केवल कुछ धन की आवश्यकता है और (दो) हमें कुछ तरीकों का परीक्षण करना है। यह निश्चित है कि प्रोफेसर कालडर हमारी प्रार्थना पर ही इस देश में आये थे और कर जांच आयोग के प्रतिवेदन में उनके अपने विचार अलग प्रतिवेदन के रूप में दिये गये हैं जो मैं यह सत्र समाप्त होने के पूर्व इसे सभा के सामने रखना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि माननीय सदस्य उसमें कही गयी सभी बातों पर विचार कर सकें और योजना पर विचार के समय तैयार रहें। मुझे विश्वास है कि हम उसमें से कुछ ऐसी चीज निकाल सकेंगे जो करारोपण के विधेयक सामने लाने के समय सभा के सभी दलों के लिये संतोषप्रद होगी। सभा को यह चिन्ता है कि वित्त मंत्री ने अप्रत्यक्ष करारोपण से राजस्व प्राप्त करने का ही बीड़ा उठाया है मैंने यह कभी नहीं कहा। वास्तव में मैंने यह कहा था कि हमें सदा यह ध्यान में रखना होगा कि 45,000 रुपये से अधिक आय वाले लोग इस देश में 1 प्रतिशत या उससे कम होंगे और कर देने के बाद 60,000 रुपये से अधिक आय वाले लोग 450 से अधिक शायद ही हों। हम उनसे निपट लेंगें इसलिये इतना अधिक कर जो

हमें इकट्ठा करना है, उसे देखते हुए हमें जनसाधारण से यह कहना पड़ेगा कि वे कर के रूप में अथवा कर्ज या बचत के रूप में कुछ उपभोग छोड़ दें। मैंने यह कभी नहीं कहा था कि हम अप्रत्यक्ष करारोपण तक ही समिति रहेंगे और यह कि मैं समझता हूं कि प्रत्यक्ष करारोपण आज जितना है, उससे अधिक नहीं हो सकता। मैं पूरी तरह यह मानता हूं कि सधन और लाभयुक्त व्यक्तियों और कम्पनियों के पास अधिकाधिक अतिरिक्त धन रहेगा जिस पर समुदाय को कर लगाने का अधिकार है।

जहां तक अतिरिक्त धन जुटाने की प्रक्रिया का संबंध है हमें स्वयं को इस भावना के साथ धोखा देना ठीक नहीं है कि यदि कुछ लोगों से अधिक राशि का अतिरिक्त धन जुटाया जाता है अथवा अधिक लोगों से कम राशि का अतिरिक्त धन जुटाया जाता है तो दोनों प्रक्रियायें समान हैं। ये समान नहीं हैं। जहां तक अतिरिक्त धन का संबंध है, इसका पता लगाना तथा कुछ व्यक्तियों से इसे प्राप्त करना बहुत सरल है। इसलिए जो तरीका मैंने बताया है वह कठिन नहीं है दूसरी ओर, यदि यह अतिरिक्त धन अथवा अतिरिक्त आय सम्पूर्ण समुदाय में छोटी छोटी राशि के रूप में बांट दी जाती है तो यह निश्चित है कि यह राशि अतिरिक्त उपभोग में खर्च हो जायेगी।

यदि आय और सुविधाएं वितरित की जा रही हैं तो किसी भी व्यक्ति को अपना मन बना लेना चाहिए कि अतिरिक्त धन जुटाना तब तक असंभव होगा जब तक लघु बचत को प्रोत्साहन न दिया जाए अथवा धनी व्यक्ति स्वयं ही अपनी आय को बचत योजनाओं में न लगाएं। परन्तु जहां तक इस अतिरिक्त धन का संबंध है इसका पता लगाने अथवा समुदाय के लिए इसे काम में लाने के उचित उपाय करने में कोई बड़ी कठिनाई नहीं होगी यही इस विषय का सार है।

इसे ध्यान में रखते हुए मेरी कठिनाई है कि जिस रूप में संकल्प रखा गया है, मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता मुझे इस संबंध में अधिक स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं है और मैं आशा करता हूं कि सरकार आर्थिक असमानता को धीरे-धीरे दूर करने के संकल्प के उद्देश्य को सहर्ष स्वीकार करें। और दृढ़ता से इसका पालन करे। यदि सभा इस बात से संतुष्ट है कि हम कोई ऐसा प्रमाण दें कि हम संकल्प के उद्देश्य से सहमत हैं तो मैं श्री भागवत झा द्वारा सुझाये गये संशोधन को स्वीकार करने के लिए तैयार हूं। अब आधुनिक विचारकों और हमारे बीच मतभेद कम हो गये हैं।

सामान्य बातों का विवेचन करके इस विषय को आगे बढ़ाना संभव है कि नियोजित विकास का अर्थ क्या है। पूंजी निर्माण का अर्थ क्या है और मुनष्य में जन्म से असमानता कैसे हुई है इत्यादि। परन्तु मैं इन सामान्य बातों के लिए सभा का समय नहीं लूंगा और ना ही मैं इस दिशा में सरकार द्वारा की गई कार्यवाही का उल्लेख करूंगा जिनमें भूमि

सुधार, लगान निर्धारण, ऋण नियंत्रण, ग्रामीण ऋण का पुनर्गठन, कम्पनी विधि में संशोधन, इम्पीरियल बैंक और जीवन बीमा बैंक इत्यादि का राष्ट्रीयकरण भी शामिल है।

इन लाभों का उपभोग करने के लिए दूसरा एक मात्र प्रश्न यह है कि सरकारी क्षेत्र अथवा राज्य व्यापार इत्यादि का विस्तार किया जाये, फिर भी हम सभा को संतुष्ट नहीं कर सकते हैं। मैं चंचुप्रवेश में अत्यधिक विश्वास करता हूं, जिसमें छोटी शुरुआत करके अवसर मिलने पर विस्तार किया जा सकता है, कराधान जांच आयोग की रिपोर्ट का भी कुछ जिक्र किया गया है। मैं नहीं समझता हूं कि सदस्यों ने वास्तव में इसका अध्ययन किया है, अन्यथा उन्होंने "शीघ्र" शब्द का प्रयोग न किया होता। जब मैं अगले दो या तीन दिनों में प्रोफेसर कालडर की रिपोर्ट को सभा पटल में रखूंगा तो सदस्यों को इस बात का ही अध्ययन नहीं करना चाहिए कि वह कराधान के बारे में क्या कहते हैं बल्कि वह अधिकतम आय के बारे में क्या कहते हैं। इसे पढ़ने के लिए आज मेरे पास समय नहीं है। जब सदस्य इस रिपोर्ट को पढ़ेंगे तो वे मुझ से भी अधिक सहमत होंगे कि हमें इस समय श्री भागवत झा आजाद द्वारा प्रस्तावित संशोधन को स्वीकार करने की जरूरत है।*

---

*मूल संकल्प के बदले निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किया गया; "यह सदन सरकार से देश में समाज के विभिन्न वर्गों के बीच विद्यमान आय की असमानता को कम करने के लिए उचित उपाए करने की सिफारिश करता है।"

खाद्य स्थिति*

**मेरे माननीय सहयोगी ने अपनी बात कहने में जितना समय लगाया है उसमें वह अपने दर्शन को स्पष्ट नहीं कर पाए हैं और न ही वह तत्संबंधी आंकड़े दे पाए हैं जो मेरे विचार से वर्तमान समस्या के बारे में विचार करने हेतु सदन के सम्मुख प्रस्तुत करने आवश्यक हैं।

मैं सदन के समुख थोक बिक्री मूल्यों के कुछ एक आंकड़े रखना चाहता हूं जिनसे वर्तमान समस्या को समझने और उस पर विचार करने में सुविधा रहेगी। सभी वस्तुओं का थोक मूल्य सूचकांक जो सितम्बर, 1948 में 383.7 था वह प्रथम नवम्बर 1952 को समाप्त होने वाले सप्ताह में बढ़ कर 386.3 हो गया। अर्थात अब यह लगभग उसी स्तर पर आ गया है जिस पर आज से चार वर्ष पूर्व था। खाद्य वस्तुओं के लिए सूचकांक सितम्बर, 1948 में 395.5 था और अब 376.6 है, अर्थात कुछ कम है। खाद्य वस्तुओं की इस श्रेणी में पटना का चावल, गुड़, जवार, नमक, कॉफी तथा अरहर की दाल सम्मिलित हैं। चावल, जवार, अरहर की दाल, रूई, मूंगफली आदि का देशनांक इस प्रकार है—

मद	सितम्बर 1952	11.10.1952
चावल	965	894
जवार	187	—
अरहर दाल	692	—
रूई	455	—
मूंगफली	616	—

*लोक सभा वाद विवाद, 17 नवम्बर, 1952, कालम 764-774

**खाद्य और कृषि मंत्री (श्री किदवई) द्वारा खाद्य स्थिति के बारे में प्रस्तुत किए गए प्रस्ताव पर चर्चा के बीच में बोलते हुए।

मद	18.10.52	25.10.52
चावल	894	858
जवार	—	179
अरहर दाल	—	763
रूई	—	424
मूंगफली	—	619

यह सभी सूचकांक 1939 के आमूल देशनांक 100 पर आधारित हैं और 25 अक्तूबर, 1952 का सूचकांक अन्तिम देशनांक है जो मेरे पास मौजूद हैं।

इससे एक निष्कर्ष यह निकलता है कि खाद्यान्न के उत्पादक की दशा कुछ ऐसी बुरी नहीं है और डा० लंका सुन्दरम् के इस तर्क में कि खाद्यान्न का स्थान नकदी की फसलें ले रही हैं कुछ अधिक तत्व नहीं है। वास्तव में चावल के उत्पादक को अब भी पहले से अधिक मूल्य की प्राप्ति हो रही है और यदि यह सत्य भी हो कि समय-समय पर फसलों की अदला बदली होती रहती है तो मैं नहीं समझता कि इससे किसी राज्य विशेष को अथवा देश को किसी प्रकार की हानि होती है। हमें इनमें से अधिकांश वस्तुओं की आवश्यकता रहती है चाहे उद्योग के लिये कच्चे माल के रूप में और चाहे निर्यात के लिये।

उत्पादन परिव्यय का निर्धारण अति कठिन विषय है भारतीय केन्द्रीय रूई समिति और कृषि अनुसंधान परिषद् ने 1936 से 1939 तक, अर्थात तीन वर्ष तक के कालान्तर के लिये रूई के उत्पादन परिव्यय के सम्बन्ध में जांच की थी, जिसके परिणाम बहुत बेढब प्रकार के थे। कुछ प्रकरणों में तो लाभ पाया गया परन्तु कुछ में निरन्तर हानि देखी गई, जो कि असम्भव सी बात थी। अतः एक गणनारेखा निश्चित करनी पड़ती है। यहां यह

गणनारेखा 1939 के मूल्य स्तर पर आधारित की गई है। इस विषय में यह पूर्वधारणा की जाती है कि लगभग प्रत्येक फसल से किसी न किसी प्रकार का लाभ प्राप्त हो रहा था।

जहां तक श्रमिक वर्ग के निर्वाह-व्यय सूचकांकों का संबंध है मैं उनकी ओर केवल चेतावनी के रूप में निर्देश करूंगा। मद्रास के आंकड़े इस प्रकार थे:—

महीना	खाद्यान्न	सामान्य
जनवरी, 1947	303	251
सितम्बर, 1952	360	330

अप्रैल से खाद्यान्न का सूचकांक ऊंचा चला जा रहा है। विभिन्न महीनों के आंकड़े इस प्रकार हैं:—

महीना	सूचकांक
अप्रैल, 1952	347
मई, 1952	350
जून, 1952	354
जुलाई, 1952	358
सितम्बर, 1952	360

मैं समझता हूं कि अन्ततः जब हम इस प्रश्न पर विचार करना चाहें कि क्या मद्रास का प्रयोग सफल हुआ है अथवा नहीं—चाहे कुछ भी कारण हो, अर्थात् फसलों का रह जाना अथवा पद्धति की असफलता हमें इन आंकड़ों को ध्यान में रखना होगा, क्योंकि अन्तिम कसौटी यही है। इसी प्रकार से हमें मध्यम वर्ग अथवा कृषि श्रमिकों के संबंध में भी देशनांक जानने चाहियें, जिससे पता चल सके कि क्या प्रभाव रहा है।

जहां तक कीमतों का प्रश्न है, मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि एक वक्ता श्री खांडूभाई देसाई ने मूल्य स्तर सहित कतिपय मुख्य मापदण्डों पर जोर दिया है।

मूल्यों पर विचार करते समय और भी अधिक महत्व इस बात का होगा कि आयात के आंकड़ों का भी ध्यान रखना होगा। यदि यह कहा जाता है कि मूल्य ऊंचे थे तो वह

इस वर्ष नीचे हैं। इससे हमारी समस्या बहुत कुछ आसान हो जाती है। यदि हम यही निश्चय गत वर्ष ले रहे होते तो सम्भवतः हम बहुत संकटपूर्ण कार्य समझते, क्योंकि तब आयातित गेंहूं का भाव 24 रुपये प्रति मन था, जबकि इसं वर्ष 16 रुपये प्रति मन है, जो कि समाहार-मूल्य के समान है, और इससे बड़ा अन्तर पड़ जाता है।

तीसरा विषय जिस पर हमें विचार करना है वह है हमारी राजकीय सहायता के लिये धन की व्यवस्था कर सकने की क्षमता। इस विषय में आंकड़ों द्वारा यह जतला चुका हूं कि हम इसी प्रक्रिया के कारण बहुत कुछ आय खो चुके हुए हैं। निर्यात-कर के रूप में हम करोड़ों रुपये खो चुके हैं और मुझे सन्देह है कि यह क्रिया अभी समाप्त नहीं हुई है। इन सब विषयों को हमें ध्यान में रखना होगा।

मैंने संसाधनों तथा राजकीय सहायता इत्यादि की चर्चा की है। वास्तव में अच्छा होगा यदि हम इस प्रश्न को योजना की क्रियान्विति के प्रश्न के समकक्ष समझें। जिन लोगों को ज्ञात हो चुका होगा कि इसकी आधारशिला एक प्रकार गर्भित नियन्त्रण है। कारण यह है कि एक अविकसित देश होने के कारण हम अपना विनियोग अधिकाधिक बढ़ावा चाहते हैं, अर्थात् हम इस योजना के आकार विकार में यथासम्भव विस्तार करना चाहते हैं। हम यह समझते हैं कि किसी भी योजना का प्रभाव तत्काल प्रकट नहीं हुआ करता, अवश्य कुछ न कुछ कालान्तर रहता है, और यह कालान्तर जितना भी अधिक होगा उतना ही अधिक आशंका इस बात की रहेगी कि क्रय-शक्ति और आवश्यक उपभोग वस्तुओं के स्कंध में असमता उत्पन्न न हो जाय। अतः इसलिये हमें इस बात की सुव्यवस्था करनी होगी कि आवश्यक उपभोग वस्तुओं का वितरण न्याय आधार पर होता रहे और इसका हम केवल एकमात्र ही साधन निकाल सके हैं और वह है वास्तविक नियंत्रण। यदि कोई यह कहे कि परिस्थितियां अनुकूल हैं अतः हम ढिलाई से काम ले सकते हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि हम आयोजन के संबंध में अपना पूरा प्रयत्न नहीं कर रहे हैं, क्योंकि यदि पद्धति में ढीलापन है तो हमें और भी अधिक धन इस ओर लगा देना चाहिए और अधिक योजनाओं को उस सीमा तक ले जाना चाहिये जहां नियंत्रण आवश्यक हो जाता है। अतः यह कहना व्यर्थ है कि योजनाबद्ध देश के लिए ऐसी परिस्थितियां होती हैं जिनमें विनियंत्रण आनन्ददायक होगा। निस्संदेह ऐसा ही होगा परन्तु यह आनन्द की स्थिति बहुत देर तक नहीं चल सकेगी। मुझे प्रायः यह मांगें मिलती रहती हैं कि योजना का विस्तार किया जाये, 100 करोड़ रुपये तक, और कुछ ऐसे लोग भी हैं—यद्यपि थोड़े से ही हैं—जो यह कहते हैं कि हम विनियंत्रण का भूत हर समय हमारे सिर पर सवार रहते हुए भी योजना को चला सकते हैं। यह दोनों चीजें एक साथ नहीं चल सकतीं और सरकार इस बात को जान चुकी है और मुझे आशा है कि अधिकांश सदस्य भी जान जायेंगे। ऐसी परिस्थिति में हमें सोचना होगा कि विभिन्न कारक क्या हैं। कई एक प्रश्नों

के उत्तर दिये जाने आवश्यक हैं। क्या नियंत्रण का खाद्यान्न के उत्पादन पर कुप्रभाव पड़ता है? कुछ ठीक कहा नहीं जा सकता। कठिनाई तो इस बात की है कि हम अपने ही आंकड़ों के विषय में एक मत नहीं हैं। कुछ महीनें पहले तक मेरी यह धारणा थी कि आई०सी०ए०आर० के आंकड़े सर्वोत्तम हैं, परन्तु अब मुझे कहना पड़ता है कि एक सांख्यिक के मतानुसार वह सब आगणन यथार्थ से नीचे रहता है, बहुत अधिक नीचे रहता है। परन्तु आई०सी०ए०आर० के आंकड़ों को ही अपने तर्क का आधार मानता हूं :

सभी खाद्यान्न	दस लाख टन
1949-50	45.5
1950-51	44.2
1951-52	44.4
चावल	
1949-50	22.9
1950-51	22.0
1951-52	22.8
बाजरा	
1949-50	16.1
1950-51	15.5
1951-52	15.4

इन आंकड़ों से कुछ विशेष कार्य सिद्धि नहीं होती। यदि समाचारों से अनुमान लगाया जाये तो इस वर्ष गत वर्षों से बहुत अधिक अकाल की स्थिति है। अन्यथा मैं नहीं समझता कि इनसे यह बात सिद्ध होती है कि नियंत्रण का उत्पादन पर किसी प्रकार का भी प्रभाव पड़ता है।

अगला प्रश्न है : क्या उत्तरीय तथा दक्षिणीय क्षेत्रों में कोई अन्तर है? इस विषय में भी मैंने सामान्य आंकड़े लिये हैं और मेरा निष्कर्ष यह है कि कुछ ऐसा अन्तर नहीं है।

बिहार, मध्य प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत तथा उड़ीसा को उत्तर मानते हुए यह आंकड़े निम्न प्रकार है :

1949-50	2 करोड़ 32 लाख टन
1950-51	2 करोड़ 18 लाख टन
1951-52	2 करोड़ 20 लाख टन

दक्षिण में अपेक्षाकृत कुछ कमी है, अथात् बम्बई, मद्रास, मैसूर, हैदराबाद, त्रावणकोर-कोचीन।

1949-50	1 करोड़ 36 लाख टन
1950-51	1 करोड़ 32 लाख टन
1951-52	1 करोड़ 29 लाख टन

इस विषय में भी हमें याद रखना चाहिये कि दक्षिण में अभावग्रस्त क्षेत्र रह चुके हैं और कुछ और भी अब इस श्रेणी में आ रहे हैं। अतः मेरे विचार से तो यह बात भी सिद्ध नहीं हुई। मैंने उत्पादन के आंकड़े भी देखे हैं और मैं नहीं मानता कि समाहार पद्धति में ढिलाई अथवा सख्ती का उत्पादन पर कुछ अधिक प्रभाव पड़ता है। पंजाब की स्थिति इस विषय में अत्युत्तम है और वहां समाहार पद्धति चल रही है यद्यपि वह कुछ ऐसी दक्ष पद्धति नहीं है।

तीसरा प्रश्न है : क्या मूल्य-वृद्धि से उत्पादन बढ़ जाएगा? इस विषय में आर्थिक इतिहास के अध्ययन से हमें जान पड़ता है कि कृषि के सम्पूर्ण क्षेत्र में मूल्यों और उत्पादन में कोई स्थाई संबंध नहीं है। यह तो ठीक है कि किसी एक विशेष फसल को प्रोत्साहन देने से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है और जितनी ही छोटी फसल होगी उतनी ही विधि का प्रभाव अधिक होगा। गन्ने अथवा पटसन का ही उदाहरण लीजिये। विनियंत्रण के पश्चात् मूल्य 100 रुपये तक पहुंच गए और इसके फलस्वरूप क्षेत्र भी बढ़ गया। मैं नहीं समझता कि उस सभी वृद्धि को उत्पादन कहा जा सकता है परन्तु कुछ भी हो इसे ऐसा समझा गया और इस वर्ष मूल्य 25 रुपये है। इससे भी नीचे जा सकता है। इससे एक विषय और उत्पन्न होता है। जिस मूल्य को हम तेजी के समय समाहार मूल्य कहते हैं मन्दी के समय वह न्यूनतम मूल्य कहलाता है। श्री लाल सिंह द्वारा प्रस्तुत किये तर्क में कुछ बल प्रतीत होता है। उन्होंने कहा है कि या तो कृषक को उसके हाल पर छोड़ दिया

जाये और मूल्यों का निर्धारण मांग और प्रदाय के आधार पर होने दिया जाये और या न्यूनतम मूल्य का निर्धारण किया जाकर उसे स्थिर रखा जाये। मैं समझता हूं कि हमें दोनों प्रकार के मूल्यों का निर्धारण करना चाहिए, उच्चतम भी और न्यूनतम भी इससे स्थिति लाई जा सकती है। यदि कोई मोटा अनाज लेकर आता है तो हमें उसको खरीदने के लिये तैयार रहना चाहिए और उसे यह नहीं कहना चाहिए कि तुम्हारे चालान के पैसे मिलने में चार महीने लग जायेंगे। उसे तुरन्त भुगतान होना चाहिए।

राज्य-व्यापार में राजस्व का संरक्षण के बहाने हमें कृषक के लिए कठिनाई खड़ी नहीं करनी चाहिए। यह कहना भी कुछ ठीक नहीं है कि हमारे पास स्टोर करने का उचित प्रबंध नहीं है। कृषक को इससे क्या? भण्डार की व्यवस्था करना आपका काम है। यदि यह व्यवस्था ठीक नहीं है तो इसके परिणाम घातक सिद्ध हो सकते हैं।

मैं समझता हूं कि दो फसलों के बीच न्याययुक्त न्यूनतम मूल्यों का होना परमावश्यक है। एक माननीय सदस्य ने यह सुझाव दिया है कि प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को जो उत्पादन करना चाहता है मूल्य-वृद्धि प्रदान की जाये। यह एक संकटपूर्ण सिद्धान्त है। सम्भवतः इस बात पर विचार नहीं किया गया कि भारतीय अर्थव्यवस्था की क्या दशा होगी यदि हम ऐसा करने लगेंगे कोई एक वर्ष या छः महीने तक तो सभी प्रसन्न रहेंगे परन्तु उसके पश्चात् सभी दुखी हो जायेंगे। हम अपने आयात निर्यात को स्थिर नहीं रख सकेंगे और न जाने इस देश की क्या दशा होगी।

रूई के संबंध में गत चार पांच वर्ष से न्यूनतम मूल्य चला आ रहा है। गत फसल के समय मैंने यह आश्वासन दिया कि मैं प्रत्येक गांठ खरीदने को तैयार हूं परन्तु किसी ने इस घोषणा से फायदा न उठाया। हां, न्यूनतम मूल्य क्या होना चाहिए, यह झगड़ा अवश्य चला था, कि 450 हो, या 500 या 600। मैं नहीं समझता कि मूल्य वृद्धि का आवश्यक परिणाम कृषि-उत्पादन से सम्पूर्ण क्षेत्र में उत्पादन-वृद्धि के रूप में होगा। एक निश्चित न्यूनतम मूल्य उपभोक्ता और कृषक दोनों के दृष्टिकोण से अति वांछनीय चीज है।

अगला प्रश्न है : "क्या हमारी खाद्य संबंधी हीनता कम हो गई है?" मैंने आनुषंगिक रूप से इसका उल्लेख किया है। हमारे सांख्यिक के मतानुसार हमारा उत्पादन और हमारी खपत दोनों में वृद्धि हुई है, अर्थात् हमने आंकड़ों द्वारा अपने उस उद्देश्य की प्राप्ति कर ली है जो पांच वर्ष के आयोजन द्वारा न हो सकती थी।

यदि हम अपने आयात को कम करने के लिये प्रयत्न करना चाहते हैं तो हम अपने इस उद्देश्य में अधिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं यदि हमारी यह धारणा बनी रहे कि हम सम्भवतः कुछ अधिक अन्न उपजा रहे हैं कुछ अधिक खपा भी रहे हैं। अतः कुछ मितव्ययता से काम लिया जा सकता है। अतः योजना आयोग द्वारा निर्धारित नीति ही

ठीक नीति है अर्थात् यह भी आगामी $3^1/_2$ वर्षों में हमें यह आयात बन्द कर देना चाहिये। यदि यह अगले ही वर्ष हो सके तो मुझे विशेषतः प्रसन्नता होगी क्योंकि मुझे इसके विनियम की व्यवस्था करनी होती है।

मैं समझता हूं कि लगभग 625 लाख टन की मांग है। इस चीज़ को ध्यान में रखते हुए हमें सोचना होगा कि हम इस वर्ष क्या करेंगे। मैं समझता हूं कि नियंत्रण तथा समाहार की विशेष पद्धतियों इत्यादि के संबंध में हमारे विचारों में गतिरोध नहीं आना चाहिए। उन्हें एक ही रेखा पर चलाए जाना वांछनीय नहीं है। इस वर्ष की परिस्थितियों को देखते हुए हमें कोई नवीन पद्धति निकालनी चाहिए। इस समय सर्वत्र मन्दा हो रहा है। यह किसी हद तक हमारे मुद्रा अपस्फीति संबंधी उपायों का परिणाम है। हमने अपने बीस लाख टन गेहूं के स्टाक को बेचा तो उससे यह स्थिति उत्पन्न हुई। यह एक दुधारा शस्त्र है। हमें स्टाक भी मिल गया और धन की प्राप्ति हो गई। हमें इसे बेचने से अपने विकास कार्यों के लिये धन की प्राप्ति हो गई। यूं कहिये कि एक पंथ तीन काज। आज हम इस प्रकार के उपाय कर सकते हैं हमारे पास कुछ स्टाक हाथ में है जिनकी सहायता से हम इस परकार की चाल चल सकते हैं। कुछ यह भी है कि आसंचय करने वाले को भी समझ आ रही है और वह अपना स्कन्ध बाजार में ला रहा है। उधर हमारे तीन जहाज प्रतिदिन अनाज ला रहे हैं। कभी-कभी तो हमारे पास उसको रखने के लिये स्थान नहीं होता। उदाहरणतः मद्रास में हमारे पास चार लाख टन चावल मौजूद था जो 15 अथवा 12 दिन के लिये राशन वाले क्षेत्रों के लिये पर्याप्त था। केवल दो जिलों में हीनता का प्रकोप था, अर्थात् मालाबार और नीलगिरीज़। उन लोगों ने कहा कि वह काम चला लेंगे और तभी यह प्रयोग वहां चलाया गया। यह प्रयोग सफल होगा अथवा नहीं अभी कुछ नहीं कहा जा सकता जब इस मानसून में मद्रास के उत्पादन को न देख लिया जाये। उसकी सफलता का यह अर्थ होना जरुरी नहीं कि यही प्रयोग अन्य राज्यों में भी दुहराया जाये, क्योंकि ऐसा करने से केन्द्र पर अत्यधिक उत्तरदायित्व का भार पड़ता है। इस उत्तरदायित्व की पूर्ति केवल दो प्रकार से हो सकती है, अर्थात् समाहार और आयात। आयात के तो हम पक्ष में नहीं हैं। अतः समाहार ही हो सकता है। इसका उपाय यह है कि समाहार संबंधी आवश्यक यंत्र ही बना रहने दिया जाये और यदि हमारी स्थिति किसी समय बिगड़ती जान पड़े तो हम इसे काम में ला सकते हैं। किसी प्रकार की पद्धति तो अवश्य रहनी ही चाहिये अतः इसीलिए हमने राज्यों की रुकावटें अभी दूर नहीं की हैं, सिवाए चने आदि के। हमने चार पांच बार इस पर नियंत्रण किया है और हटाया है। बाजरे के संबंध में स्थिति कुछ और प्रकार की है क्योंकि यह हमारे कुल उत्पादन का एक तिहाई है, अतः उसके पर्याप्त अथवा अपर्याप्त होने का प्रश्न ही नहीं उठता। आत्मनिर्भरता की भावना का आधार इस बात पर होता है कि कोई विषयम परिस्थिति उत्पन्न नहीं होगी।

परन्तु ऐसा नहीं है। कभी-कभी ऐसी कमी आ जाती है जिसका ख्याल तक नहीं होता और जब खाद्यान्न एक स्थान से दूसरे स्थान को अबाध गति से जा सकता हो तो यह कमी अकाल का रूप धारण कर सकती है जैसा कि बंगाल में 1943 में हुआ। बंगाल में सांख्यिकों ने अनुमान लगाया है कि प्रारम्भ में चावल की कमी केवल छः प्रतिशत थी, परन्तु जैसे ही पता चला कि अभाव की स्थिति उत्पन्न हो रही है लोगों ने कहना शुरू कर दिया कि यह बढ़ेगी और यह अभाव यहां तक बढ़ा कि जीवन-निर्वाह कठिन हो गया। इस प्रकार की घटना कहीं भी हो सकती है। अतः एक आत्म-निर्भर क्षेत्र सदैव विश्वास के साथ नियंत्रण की नीति को नहीं अपना सकता। यही हाल एक देश का होता है। इसलिये मैं समझता हूं कि किसी प्रकार के युक्तिमूलक नियंत्रण का होना आवश्यक है। इसके साथ ही उचित मूल्य पर खाद्यान्न प्राप्य होना चाहिये जिस से स्कन्ध रखा जा सके जो सहारे का काम दे सके। हम इस प्रकार की पद्धति चाहते हैं और इसी का सुझाव एफ०ए०ओ० तथा अन्य अन्तर्राष्ट्रीय निकायों द्वारा दिया गया है। उनकी प्रस्थापना इस प्रकार की है कि एक अन्तर्राष्ट्रीय स्कन्ध होना चाहिए। यह विषय है जिसका मैं स्पष्टीकरण करना चाहता था।

6

सम्पदा शुल्क विधेयक, 1953*

महोदय, मैं प्रस्ताव करता हूं:

"कि लेवी लगाने तथा सम्पदा शुल्क की वसूली के लिए लोक सभा द्वारा यथापारित विधेयक पर विचार किया जाए।"

अधिकांश विकासशील देशों की कराधान योजना में सम्पदा शुल्क एक महत्वपूर्ण तत्व है। मेरा विश्वास है कि यह एक सामान्य जानकारी की बात है। वास्तव में, जहां तक हमारी जानकारी की बात है ऐसे शुल्क लगभग अन्य 43 देशों में लगाए जाते हैं। भारत में कराधान जांच समिति ने वर्ष 1924-25 में ही ऐसे शुल्क लगाने की सिफारिश की थी और इस संबंध में सरकार की रुचि वर्ष 1936-37 में तब पैदा हुई जब एक विशेष अधिकारी, स्वर्गीय सर ऐलन लॉयड की नियुक्ति की गई और जिन्होंने सम्पूर्ण मामले का अध्ययन करके कुछ सिफारिशें की थी। महोदय, जहां तक मेरी व्यक्तिगत रुचि का प्रश्न है, मैं यह कह सकता हूं कि यह मामला तब भी उठाया गया था जब मुझे उस समय की सरकारों में से एक सरकार में कार्य करने का अधिकार मिला था और इस प्रश्न के संबंध में सर ऐलन लॉयड द्वारा दिये गये सुझावों पर उनके साथ विचार करने का अवसर मिला था। वास्तव में, ऐसा शुल्क लगाने संबंधी विधेयक वर्ष 1946 में तत्कालीन विधान सभा में प्रस्तुत किया गया था। उक्त विधान सभा के भंग होने पर इस विधेयक को अपने पूर्व रूप में वर्ष 1948 में अंतरिम संसद में एक बार फिर प्रस्तुत किया गया था और इसे प्रवर समिति को भेज दिया गया था। प्रवर समिति ने अपनी प्रारम्भिक रिपोर्ट में यह महसूस किया कि विधेयक पर पुनर्विचार करने में दो दुस्तर कठिनाइयां सामने आती हैं। पहली कठिनाई यह थी कि सम्पदा शुल्क अधिनियम को तब तक लागू करना एकदम असम्भव था जब तक कि कानून द्वारा कर-निर्धारण प्रयोजन के लिए मिताक्षर प्रणाली के अन्तर्गत संयुक्त परिवार को एक यूनिट के रूप में मान्यता मिलती रहेगी। दूसरी कठिनाई यह थी कि उन्होंने सोचा कि जब तक भारत के तत्कालीन राज्य विधान के कार्यक्षेत्र से बाहर रहते

*राज्य सभा वाद-विवाद, 17 सितम्बर, 1953, पृष्ठ 2640-2646

है, और ब्रिटिश भारत में यदि कोई शुल्क लगाया गया होता तो ऐसे राज्यों को पूंजी प्राप्त होने की पूरी सम्भावना थी। परन्तु प्रवर समिति ने जब मार्च 1949 में अपनी अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत की उस समय भारत के राज्यों के विलय की सम्भावना दिखाई दे रही थी जिससे इस विधायी प्रस्ताव को कार्यान्वित करने में दूसरी कठिनाई कदापित बाधा नहीं बन पाएगी। पहली कठिनाई के संबंध में उन्होंने इस विवाद को सह-समांशिता के हिस्से पर सम्पदा शुल्क लगाकर स्पष्ट करने की कोशिश की जो अविभाजित हिन्दू परिवार के एक सदस्य की मृत्यु होने पर नहीं लगाया जाता था। इस विधेयक में बाद में कुछ परिवर्तन करके वे अंतरिम संसद को आवश्यक सिफारिशें कर सके थे।

इस विधेयक पर, प्रवर समिति द्वारा वर्ष 1948 में प्रस्तुत की गई रिपोर्ट के अनुरूप, अंतरिम संसद में विचार नहीं किया जा सका क्योंकि इसका भविष्य कुछ हद तक हिन्दू कोड बिल के साथ जुड़ गया तथा यह बिल भी वर्ष 1952 में उक्त संसद के भंग होने के साथ ही समाप्त हो गया था जिस विधेयक पर अब इस सदन में चर्चा हो रही है उसे वर्ष 1952 में लोक सभा में एक बार फिर प्रस्तुत किया गया था और वह सभा द्वारा संशोधित विधेयक ही है।

महोदय, इस विधेयक में मृत्यु होने पर हस्तांतरित होने वाली सम्पत्ति और सह-समांशिता, जिसका मैंने कुछ देर पहले उल्लेख किया था, में हिस्सेदारी जैसे मामले में मृत्यु होने पर हस्तांतरित समझी जाने वाली सम्पत्ति पर शुल्क लगाने का प्रावधान है, एक बार अंतरिम संसद में एक सुझाव दिया गया था कि सम्पदा शुल्क के स्थान पर उत्तराधिकार शुल्क लगाना बेहतर होगा। प्रवर समिति ने वर्ष 1948 में इस सुझाव पर व्यापक विचार किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुंची कि उत्तराधिकार शुल्क लगाने में होने वाली प्रशासनिक कठिनाइयों तथा इससे कम राजस्व प्राप्त होने की संभावना को देखते हुए सम्पदा शुल्क लगाया जाना चाहिए और महोदय, इस मामले में विचार करने वाले सभी अधिकारियों ने इस सिद्धांत की सराहना की है।

यह विधेयक लगभग सात वर्षों से संसद और जनता के समक्ष विचाराधीन रहा है। इसलिए, मैं इस समय विस्तृत प्रावधानों पर विचार करने के लिए सदन का समय नहीं लेना चाहूंगा—हम इस पर बाद में विचार करेंगे—परन्तु वर्ष 1948 के विधेयक से वर्तमान विधेयक में किये गये मुख्य संशोधनों तक ही अपनी टिप्पणियां सीमित रखना चाहूंगा जैसाकि प्रवर समिति ने बताया है।

महोदय, जैसाकि इस सदन को जानकारी है कि यह विधेयक यूनाइटेड किंगडम फाइनेन्स एक्ट में सम्मिलित सम्पदा शुल्क विधान पर मुख्यतया आधारित है। वर्तमान विधेयक में यूनाइटेड किंगडम फाइनेन्स एक्ट में किये गये कुछ महत्वपूर्ण संशोधनों को

शामिल किया गया है क्योंकि हमारे विधेयक का प्रारूप मूलतः वर्ष 1946 में तैयार किया गया था। ये संशोधन केवल प्रभारी खण्डों में ही किये गये हैं तथा मुख्य संशोधन खण्ड 11, 12 और 27 में मिलेंगे, इसीलिए, ब्रिटेन में इस अधिनियम के कार्यान्वयन के अनुभव से हुए लाभ द्वारा हमने इस विधेयक में संशोधन किया है तथा हम आशा करते हैं कि हम कर-अपवंचन की उन खामियों को दूर करने में सक्षम रहे हैं जिन खामियों की जानकारी ब्रिटेन के प्राधिकारियों को है।

दूसरा महत्वपूर्ण संशोधन प्रभारी विधेयक में ही शुल्क-दर सम्मिलित करने से संबंधित है। सदन को याद होगा कि मूल विचार यह था कि शुल्क दर संसद के एक पृथक अधिनियम के तहत लगाई जानी चाहिए। तथापि यह महसूस किया गया कि विधेयक में शुल्क दर शामिल करने से कानून सुसम्बद्ध बन जाएगा और जनता के मन की उन आशंकाओं को दूर करेगा कि सरकार प्रति वर्ष इन दरों में सम्भावित संशोधन करना चाहती है। यद्यपि सच यह है यदि विधेयक में दरें अंतर्निहित होती हैं तो भी विधेयक में अपने आप में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है कि यदि सरकार पहल करे तो संसद को समय-समय पर शुल्क दरें संशोधित करने से रोका जा सके।

यही एक विशेषता है जब तक एक संकल्प के जरिए इसमें कोई परिवर्तन न किया जाए। यद्यपि स्थिति यही है, तथापि मैं कह सकता हूं कि यह मेरा व्यक्तिगत विचार है कि उस बात की संभावना नहीं मालूम पड़ती है कि सरकार आगामी कुछ वर्षों में किन्हीं संशोधनों का सुझाव देगी जब तक कि सभी क्षेत्रों में इसके कार्यान्वयन का पर्याप्त अनुभव प्राप्त नहीं कर लिया जाता है और जब तक कि सरकार इसके वित्तीय परिणामों तथा देश की अर्थव्यवस्था पर इसके प्रभाव के बारे में अपना मत निश्चित नहीं कर लेती है।

सदन इस बात पर ध्यान देगा कि शुल्क दरें "स्लेव पद्धति" के आधार पर न कि "स्टेप" पद्धति के आधार पर जैसा कि अधिकांश देशों में निर्धारित नहीं की जाती हैं। महोदय, मैं कुछ समय बाद ही इन दोनों पद्धतियों के लाभ और हानियों के बारे में विस्तार से कहूंगा। परन्तु मैं यहां इस बात का उल्लेख करूंगा कि हम इस पद्धति—स्लेव पद्धति से सुपरिचित हैं क्योंकि यह पद्धति आयकर के प्रयोजन में भी लागू की जाती है।

सदन को यह भी ज्ञान होगा और मैं यह आशा करता हूं कि सदन मुझसे सहमत होगा कि प्रस्तावित शुल्क दरें बहुत ही संतुलित हैं। छूट की अधिक सीमा, वास्तव में प्रभावी दर—और जो एक महत्वपूर्ण मुद्दा है—के कारण सम्पत्ति के कुल मूल्य पर जो औसत दर बनती है वह छोटी सम्पत्ति के मामले में ब्रिटेन में लगने वाली औसत दर से बहुत कम है जबकि ऊंची स्लेव वाली पद्धति में दरें इतनी अधिक निर्धारित नहीं की गई हैं

जिससे अपवंचन को प्रोत्साहन मिले अथवा बचत को बढ़ावा देने में प्रोत्साहन न मिल सके।

दूसरा महत्वपूर्ण संशोधन यह है कि जो छूटें प्रदान की गई हैं वे सामान्य रियायत सीमाओं से अलग दी गई हैं। मौजूदा खण्ड 33 के पुराने संगत खण्ड में सरकार को दरों में छूट देने अथवा कम करने के अधिकार ही दिये जाते हैं और इस संबंध में कोई ब्यौरा नहीं दिया गया था। सरकार को इतनी अधिक शक्तियां देने पर आपत्ति उठाई गई थी और मैं इसे सही समझता हूं। इसलिए, मौजूदा विधेयक में इस अधिकार को केवल कुछ शर्तों के आधार पर ही रखा गया है और इसके अतिरिक्त हमने कुछ रियायतें भी निर्धारित की हैं। उदाहरणार्थ, बेची न जाने वाली पुस्तकें, पहनने के कपड़े, मृत्यु से कुछ समय पहले दिये गये छोटे उपहार इत्यादि। 50,000 रुपये तक की सम्पदा शुल्क की अदायगी के लिए जमा की गई राशि अथवा बीमा के संबंध में एक महत्वपूर्ण छूट दी गई है। इसलिए हम आशा करते हैं कि इससे सम्पदा शुल्क की वसूली काफी आसान हो जाएगी।

महोदय, इस विधेयक के उपबंधों को अन्य मामलों में भी उदार बनाया गया है। उदाहरणार्थ, तीन महीने के अन्दर दूसरे उत्तराधिकारी की मृत्यु हो जाने के मामले में शुल्क में शत प्रतिशत तत्काल उत्तराधिकार राहत दी जाएगी। विधेयक के पुराने खण्ड के विपरीत, अपने पति की मृत्यु के सात वर्षों के अन्दर मरने वाली हिन्दू विधवा के हिस्से में दी गई छूट मिताक्षर कानून द्वारा अधिशासित हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं है बल्कि सभी हिन्दुओं को इसका लाभ प्रदान किया गया है। मूल विधेयक के विपरीत इसमें मृतक की सम्पदा में हिस्सा मांगने के लिए भुगतान की गई कोर्ट की फीस अदा करने योग्य सम्पदा शुल्क में कटौती करने के लिए प्रावधान किया गया है और उसकी कोई सीमा नहीं निर्धारित की गई है। एक विशेष प्रावधान यह भी किया गया कि अचल सम्पत्ति के संबंध में देय शुल्क के मामले में उत्तरदायी व्यक्ति अधिकार के रूप में आठ किस्तों का दावा कर सकता है। इसमें कुछ छोटे प्रावधान भी हैं जिनका मैं इस समय उल्लेख नहीं करना चाहता हूं।

जिस दूसरे महत्वपूर्ण संशोधन का मैं उल्लेख करना चाहूंगा वह विदेशियों को देय शुल्क से संबंधित है। वर्ष 1948 में गठित प्रवर समिति ने एक प्रावधान का सुझाव दिया था जिसके अनुसार आयकर अधिनियम के अर्थ के अन्तर्गत जो व्यक्ति निवासी थे उन्हें सम्पदा शुल्क के निर्धारण के लिए भारत का निवासी समझा जाएगा। परन्तु मौजूदा विधेयक के अनुसार किसी व्यक्ति के "अधिवास" का निर्धारण भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम, 1925 के अनुसार किया जाएगा और यह अधिकांश देशों के संगत

अधिनियमों के अनुरूप ही लगता है। फिर भी, एक प्रावधान किया गया है कि उन कम्पनियों के शेयरधारकों—यह एक महत्वपूर्ण प्रावधान है—के संबंध में जो भारत में अपने लाभ का 50 प्रतिशत से अधिक राशि अर्जित करते हैं, ऐसे शेयरों की सम्पत्ति को, मृत्यु होने पर, हस्तांतरित करने पर समान दर से शुल्क लिया जाएगा। इस शुल्क के भुगतान के लिए कम्पनियों पर देयता इसलिए लगाई जाती है ताकि शुल्क की वसूली सुनिश्चित की जा सके। ऐसा ही प्रावधान आस्ट्रेलिया महाद्वीप के राज्यों में से एक राज्य—संभवतः न्यूजीलैंड के अधिनियमों में भी किया गया है।

जिन अन्य संशोधनों का उल्लेख करने की आवश्यकता है वे इस अधिनियम के प्रशासन और कार्यान्वयन से संबंधित हैं। पुराने विधेयक में कोई विस्तृत प्रावधान नहीं किया गया है और इसे निर्धारण करने का प्राधिकार केन्द्रीय राजस्व बोर्ड को था। उसमें केवल एक ही प्रावधान था कि केन्द्रीय सरकार किसी भी विशेष मामले में बोर्ड के कार्यों को निभाने के लिए किसी अधिकारी अथवा प्राधिकारी को अधिकार दे सकती थी। उस अधिकारी अथवा प्राधिकारी के मत, विश्वास अथवा मनोस्थिति को बोर्ड का मत, विश्वास और मनोस्थिति ही समझा जाता था। अब यह स्थिति असंतोषजनक लगती है। हमारे जैसे विशाल देश में बोर्ड के लिए सम्पदा शुल्क निर्धारित करना तथा इसकी वसूली करना वास्तव में संभव नहीं है तथा इस तरह का प्रावधान उन व्यक्तियों के लिए बहुत ही असुविधाजनक होता जो सम्पदा शुल्क के भुगतान के लिए उत्तरदायी हैं। सरकार के लिए सारे देश से उन अधिकारियों का चयन करना इतना ही कठिन होता जिनका मत, विश्वास और मनोस्थिति बोर्ड जैसी ही होती। इसलिए, मौजूदा विधेयक में सम्पदा शुल्क लगाने के लिए नियंत्रकों को अधिकार दिया गया है परन्तु निर्धारण के मामले में बोर्ड की अंतिम जिम्मेदारी पर एक ऐसे प्रावधान के जरिए बल दिया गया है कि नियंत्रकों के आदेशों पर की गई अपीलें बोर्ड को स्वीकार्य होंगी। जहां तक कोर्ट को की गई अपीलों का संबंध है, कानून के मामलों में एक जैसा ही प्रावधान है। केन्द्रीय राजस्व बोर्ड के जरिए कोई भी कानून का प्रश्न उच्च न्यायालय अथवा उच्चतम न्यायालय को पहले की तरह ही भेजा जा सकता है। परन्तु मूल्यांकन के मामले में प्रावधान थोड़ा भिन्न है। पुराने विधेयक के अन्तर्गत उच्च न्यायालय को एक निर्देश दिया जाता था जो मामले की जांच करेगा तथा इसके निष्कर्ष को रिकार्ड करेगा। अब यह प्रावधान किया गया है कि मूल्यांकन के मामले में इस प्रश्न को उच्च न्यायालय को भेजने की आवश्यकता नहीं है परन्तु उन कुछ सुयोग्य मूल्यांककों को भेजा जाना चाहिए जिनके पैनल का नामांकन सरकार करेगी। यह प्रावधान किया गया है कि निर्धारिती और बोर्ड द्वारा एक-एक मूल्यांकक की नियुक्ति करेंगे और इसमें मतभेद होने की स्थिति में किसी अन्य मूल्यांकक द्वारा मध्यस्थता किये जाने का प्रावधान किया गया है। अब हमें लगता है कि इस प्रकार के मामलों के लिए यह योजना

संतोषजनक है और इस पर विशेषज्ञों के मत के आधार पर ही निर्णय लिया जाना चाहिए। इस समय, शपथ लेते समय साक्ष्य लेने, उत्तरदायी व्यक्तियों के प्रतिनिधियों के पेश होने और जानकारी सप्लाई करने, नोटिस देने इत्यादि के लिए राज्यों के साथ व्यवस्था करने से संबंधित अन्य प्रावधान भी उपलब्ध हैं।

अपनी बात समाप्त करने से पहले मैं सदन से दो उद्देश्यों की दृष्टि से इस विधेयक पर विचार करने के लिए कहूंगा। पहला यह है कि सम्पदा के बंटवारे में होने वाली मौजूदा असमानताओं को कम करने की दिशा में यह सही कदम है। हमारा दूसरा उद्देश्य राज्यों को आवंटित करने के लिए राजस्व में कुछ वृद्धि करना है तथा इस प्रकार उनकी विकास योजनाओं के वित्त पोषण में सहायता देना है। मैं यह दावा नहीं कर सकता हूं कि यह विधेयक किसी भी महत्वपूर्ण सीमा तक इन दोनों उद्देश्यों को पूरा करेगा परन्तु मुझे संतोष है कि पहले कदम के रूप में यह उपाय उचित और पर्याप्त भी है। महोदय, इन शब्दों के साथ ही मैं प्रस्ताव करता हूं कि "लेवी लगाने और सम्पदा शुल्क की वसूली के लिए लोक सभा द्वारा यथा पारित विधेयक पर विचार किया जाए।"

प्रथम पंचवर्षीय योजना-संबंधी प्रस्ताव*

इस वाद-विवाद** में उठाई गई कुछ बातों के संबंध में मैं कुछ कहने के लिए खड़ा हुआ हूं। मैं किसी दर्शन या विचारधारा पर नहीं बोलूंगा। पहली बात सामान्य है कि यह प्रारूप योजना बहुत अधिक दबाव के अधीन तैयार की गई है और केवल रूप रेखा है, इसलिये जो सदस्य इसके अन्दर प्रत्येक वस्तु को पूर्ण रूप से देखना चाहते थे, उन्हें असंतुष्ट होना अनिवार्य है।

हम यह भी मानते हैं कि यह उस अर्थ में एक पूर्णतया संयोजित योजना नहीं है, जिस अर्थ में ऐसी योजनाएं उन अन्य देशों में समझी जाती हैं जिन के पास अच्छे तथा यथार्थ आंकड़े होते हैं। किसी संयोजित योजना के लिए विभिन्न प्रकार के आंकड़ों की अति आवश्यकता होती है—राष्ट्रीय वित्त, इसका वितरण तथा तत्संबंधी आंकड़े—और कुछ अभाव जिन के कारण हमें कठिनाई का सामना करना पड़ा है उन को राष्ट्रीय आय समिति के प्रथम प्रतिवेदन के अनुच्छेद 38 और 39 से ज्ञात किया जा सकता है, जिसका मैं केवल निर्देश करूंगा और उन को पढ़ कर नहीं सुनाऊंगा।

योजना की सामान्य आर्थिक पृष्ठ भूमि के संबंध में मैं उन माननीय सदस्यों से सहमत हूं जो चोर बाजारी को हमारे वर्तमान समाज पर कलंक समझते हैं। माननीय सदस्यों को अधीर नहीं होना चाहिये। कम से कम उन्हें इस बात का निपटारा करने के लिये हमारी योजनाओं को सुनना चाहिये। पहली बात यह है कि यह बुराई अल्प समय में ही दूर नहीं की जा सकती है जो आदतें पिछले दस वर्षों में घर कर चुकी हैं उन्हें निकालने के लिये यह दीर्घकालीन उपाय है। धीरे-धीरे हम बहुत से उन मार्गों को बन्द करते जा रहे हैं, जिन के द्वारा धन चोर बाजारी में जाता है। हम ने समवाय विधि का संशोधन कर दिया है। हम समवाय विधि संशोधन संबंधी विशेषज्ञ समिति के प्रतिवेदन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

---

*अन्तरिम संसद वाद-विवाद, 16 अक्तूबर, 1951, कां० 5150-5158

**15 अक्तूबर, 1951 को श्री जवाहर लाल नेहरू द्वारा पेश किए गए प्रस्ताव "कि योजना आयोग द्वारा तैयार किए गए प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारूप पर विचार किया जाए" संबंधी वाद-विवाद में भाग लेते हुए।

तब उद्योगों के विकास और विनियमन संबंधी अधिनियम को अनियंत्रित मूल्यों के द्वारा धन की चोर बाजारी में जाने से रोकने के लिए हमारी सहायता करनी चाहिए। माननीय सदस्यों ने समिति के प्रतिवेदनों को देखा है, जो शेयर बाजार के विनियमन संबंधी संशोधन पर सलाह देने के लिए नियुक्त की गई थी। वायदे के सौदों के बाजारों का विनियमन करने के लिए हमारे पास एक अधिनियम था। इसलिये, कई प्रकार से हम पुर्जे को कस रहे हैं और इसी बीच मेरे माननीय साथी कर देने के विषय में सत्य की भावना को उत्साहित करने के लिए यथासंभव प्रयत्न कर रहे हैं। मुझे आशा है कि इन उपायों को काम में लाने के बाद हम योजना आयोग की सलाह से और अधिक कड़े-उपायों के द्वारा इस समस्या पर कुछ काबू पा सकेंगे।

अब मैं मूल्य स्तर के प्रश्न को लूंगा। इस पर श्री कृष्णनन्द राय ने बहुत कठोरता से कहा है और पंडित कुंजरू ने अपनी साधारण प्रतिभा के साथ अपने भाव व्यक्त किए हैं। साधारण आरोपों के अतिरिक्त, मैं नहीं समझता कि श्री कृष्णनन्द राय ने मूल्य नियंत्रण के विषय में कोई नई बात कही है या कोई तथ्य बतलाया है। यह ठीक है हम मूल्य स्तर को यथोचित रूप से संभाल नहीं सके हैं परन्तु मैं यह दर्शाने के लिए आंकड़े उपस्थित कर सकता हूं कि सब बातों को ध्यान में रखते हुए हमने इन्हीं परिस्थितियों में पड़े हुए दूसरे देशों की अपेक्षा अधिक उत्तम काम किया है और इस का निस्संदेह यह निश्चित सबूत था कि मूल्य स्तर गिर रहा था, जिस की मैं जून में आशा करता था।

शुद्ध वित्तीय पक्ष के विषय पर श्री बी० दास ने पौण्ड पावना के संबंध में कुछ प्रश्न उठाये हैं। यह विषय अत्यधिक महत्वपूर्ण है और इसके संबंध में बहुत कुछ भ्रांति हो सकती है। मैं आशा करता हूं कि यदि मैं इसे कुछ समय के लिये छोड़ दूं और कुछ आंकड़े प्रस्तुत करूं, मुझे क्षमा किया जाएगा। 15 अगस्त, 1947 को हमारा पौण्ड पावना एक अरब 16 करोड़ पौण्ड था और 30 जून, 1949 को यह गिर कर 61 करोड़ 50 लाख पौण्ड रह गया। दो वर्ष से कम समय में 54 करोड़ 50 लाख की इतनी बड़ी कमी, इस कारण हुई कि हमें कुछ विशेष देनदारियों का भुगतान करना पड़ा था, जैसे हमने अपनी निवृत्ति वेतन संबंधी देनदारियों को संचित करने के लिये भुगतान किया, पाकिस्तान के हिस्से में आई हुई राशियों के स्थानान्तरण में हमने धन दिया और सैनिक भण्डारों के लिये इंग्लैंड सरकार को कुछ धन दिया। इन तदर्थ देनदारियों की राशि 36 करोड़ 10 लाख पौण्ड थी। 54 करोड़ 50 लाख पौण्ड में से यह राशि निकाल कर जो 18 करोड़ 40 लाख पौण्ड शेष बचे, वह 15 अगस्त, 1947 से 30 जून, 1949 के बीच हमारे भुगतान संतुलन में चालू कमी को पूरा करने के लिये काम में लाये गये। सन् 1949 के प्रारम्भिक काल में अधिक आयात और कम निर्यात होने के कारण हमारा व्यापार बहुत अधिक विपरीत रहा था और परिणामस्वरूप हमारा पौण्ड पावना गिरना प्रारम्भ हो गया

था। इस परिणाम को राज्य द्वारा किये गये खाद्यान्न के क्रय ने भी प्रभावित किया और जो पौण्ड पावना 30 जून, 1949 को 61 करोड़ 50 लाख पौण्ड था, वह गिर कर 2 सितम्बर, 1949 को 58 करोड़ 20 लाख पौण्ड रह गया। रिकार्ड में ये न्यूनतम आंकड़े हैं। तब से, अवमूल्यन का धन्यवाद है, और आयात पर लगाई गई रोक के कारण, हमारा विदेशी संतुलन बढ़ने लगा और 30 जून, 1950 को यह पावना 62 करोड़ 20 लाख पौण्ड हो गया इस राशि में से, वर्तमान करारों के अनुसार हम 30 जून, 1951 तक 50 करोड़ 40 लाख शेष छोड़कर 11 करोड़ 80 लाख निकाल सकते थे, परन्तु जून 1950 के प्रारम्भ से खाद्य क्रय में वृद्धि होने तथा अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति निमित्त किये गये अधिक आयात के परिणामस्वरूप रकम कम होने लगी। इसलिये 30 जून, 1950 को जो स्थिति थी उसके आधार पर पौण्ड पावना करार को विस्तृत करने के प्रस्ताव 30 जून, 1951 के पश्चात् तैयार किये गये थे। ऐसा समझा गया था कि 30 जून, 1951 को, बची हुई 50 करोड़ 40 लाख की अनुमानित राशि में से लगभग 30 करोड़ पौण्ड की मुद्रा और विदेशी विनियम रक्षित निधि तथा कतिपय दूसरी मांगों की पूर्ति के लिये प्राप्त रहेगी। कोलम्बो योजना के लिए, जो इस समय तक तैयार की जा चुकी थी, छः वर्ष की अवधि में 21 करोड़ रुपये की आवश्यकता थी। ब्रिटेन के चांसलर आफ दी एक्सचैकर और मेरे बीच, सितम्बर 1950 में जो चर्चाएं हुई, उनके अनुसार 1 जुलाई, 1951 से प्रारम्भ हो कर छः वर्ष की अवधि तक प्रति वर्ष 3 करोड़ 50 लाख पौण्ड देने का उपबंध किया गया। आप जोड़ सकते हैं और देख सकते हैं कि मुद्रा रक्षित निधि के लिये छोड़ कर, पौण्ड पावना या पौण्ड पावना समस्या में से कुछ भी नहीं बचता था। मन् 1950-51 के पहले तीन महीनों में, जैसा कि मैंने बताया. पौण्ड पावना कम हो रहा था। सितम्बर, 1950 की समाप्ति पर कोरियाई युद्ध के परिणामस्वरूप वैदेशिक तत्व काम करने लगे और उन्होंने उस तिथि के पश्चात् हमारे व्यापार अन्तर को प्रभावित करना शुरु कर दिया। हमारी निर्यात की वस्तुओं के लिये, विशेष कर कपास और पटसन के बने वस्त्रों की बहुत मांग थी। आयात के संबंध में, यद्यपि अनुज्ञप्ति लेने के प्रतिबंध ढीले कर दिये गये थे, माल, अधिकतर कच्चा माल प्राप्त करने की कठिनाइयों ने हमारा आयात कम कर दिया, इसलिये फिर से पौण्ड पावना बढ़ना शुरु हो गया और 4 मई, 1951 को सब से अधिक 66 करोड़ 10 लाख तक पहुंच गया। उस तिथि के पश्चात् पाकिस्तान से, जो तब पौण्ड पावना क्षेत्र में था, कच्चे पटसन का क्रय करना हमारे लिये हमारे करार के अधीन एक महत्वपूर्ण बात थी और जिसके परिणामस्वरूप पौण्ड पावना में कमी हो गई। 30 जून, 1951 के आंकड़े 64 करोड़ 30 लाख थे। इसमें लगभग 9 करोड़ पौण्ड का उक्त अतिशेष भी सम्मिलित था। ब्रिटेन की सरकार के साथ किये गये समझौते के अनुसार हम अगले छः वर्षों में 30 करोड़ पौण्ड तक निकाल सकते हैं, और यह एक

महत्वपूर्ण बात है। आगामी छः वर्षों में हम 30 करोड़ पौण्ड निकलवा सकते हैं, अर्थात् लगभग 40 करोड़, लगभग 34 करोड़ 30 लाख पौण्ड का अतिशेष छोड़ कर, जो हम न्यूनाधिक मुद्रा रक्षित निधि के रूप में रखना चाहते हैं, पौण्ड हम निकाल सकते हैं।

सदन को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि और अधिक चर्चाओं के परिणामस्वरूप अब यह मान लिया गया है कि इस राशि मे से 31 करोड़ की राशि हमारी संख्या 1 लेखा में बदल दी जायेगी और मुद्रा रक्षित निधि के रूप में रखी जाएगी, जिसे केवल आकस्मिकता के समय निकाला जा सकेगा। इसलिये अब सार यह है कि हमारे रुके हुए पौण्ड पावन का बहुत बड़ा भाग खुल गया है और जो अवरुद्ध लेखा में बचता है वह न्यूनाधिक उस राशि के बराबर है, जिसे हम छः वर्षों में निकाल सकते हैं। यह स्पष्ट हो जाएगा कि संभवतः छः वर्ष की समाप्ति पर हमारे अवरुद्ध लेखा में कोई धन शेष नहीं रहेगा, और जैसा कि मैंने बताया उस में पौण्ड पावना समस्या का कुछ शेष नहीं रहेगा, यदि अवस्थायें ऐसी ही रहीं जैसी वे अब हैं।

अब मैं दूसरे वित्तीय प्रश्न को लूंगा जिसे श्री विश्वनाथ दास ने उठाया था, और वह राज्यों के अंशदान के संबंध में था। मैं ठीक तरह से नहीं जानता कि उन्हें क्या कठिनाई थी। उनका विचार या, उनका दर्शन यह प्रतीत होता था कि केन्द्र को केन्द्र तथा राज्यों के लिये योजना बनानी चाहिये और अपने तथा राज्यों दोनों के लिये वह धन का प्रबंध करे या कम से कम कुछ निर्धन राज्यों की सहायता अवश्य करे। वास्तव में जहां तक राज्यों की योजनाओं का संबंध है, यह स्पष्ट है कि योजनाओं के लिये धन का प्रबंध करने का भार मुख्यतया राज्यों पर पड़ना चाहिये। यह सच है कि योजना आयोग ने सहायता करने का विचार किया है, ताकि कोई योजना बनाई और चलाई जा सके। ये धारणाएं सर्वोत्तम उपलब्ध जानकारी और निश्चय पर आधारित हैं, परन्तु यह वित्त मंत्रालय को उत्तरदायी नहीं बना सकती हैं, क्योंकि अनुदान के रूप में या ऋण के रूप में यह सहायता देने की केन्द्र की शक्ति बहुत सी बातों पर निर्भर है—उसके अपने राजस्व में फालतू धन होना, उसके अपने अनिवार्य खर्च की प्रगति, धन बाजार की प्रक्रिया इत्यादि। यह स्थिति राज्यों को स्पष्ट कर दी गई है। जहां तक उड़ीसा का संबंध है मैं समझता हूं कि श्री विश्वनाथ दास उस दयालुता को देख कर आश्चर्यचकित हो जाएंगे जो योजना आयोग के प्रस्तावों में दिखाई गई हैं। पंचवर्षीय योजना की प्रारूप रूपरेखा में उड़ीसा के लिये विकास खर्च के आंकड़े 15 करोड़ अनुमानित किए गए हैं और इस में से केन्द्र से प्राप्त होने वाले दस करोड़ रुपये की सहायता का अनुमान लगाया गया है। यदि उड़ीसा इस योजना को चलायेगा तो उसे एक करोड़ के स्थान पर जो वह चर्चाओं में मान चुका है, पांच करोड़ रुपये का अतिरिक्त प्रबंध करना होगा। ये चर्चाएं जारी हैं और मैंने सूचित कर दिया है कि प्रारम्भिक वार्ता यह दर्शाती है कि यह लक्ष्य प्राप्त होने योग्य सिद्ध नहीं होता।

अब वित्त मंत्रालय की ओर से किसी स्वीकृति के बिना, ,परन्तु सर्वोत्तम समझदारी पर आधारित, 15 करोड़ की उड़ीसा योजना की दूसरे छोटे राज्यों से इस प्रकार तुलना की जा सकती है:

असम 12.5 करोड़ रुपये
पंजाब 15.5 करोड़ रुपये
राजस्थान 15.2 करोड़ रुपये
मध्य भारत 22.0 करोड़ रुपये

यह स्मरण रखना चाहिए कि उड़ीसा और पंजाब को इसके अतिरिक्त क्रमशः हीराकुण्ड और भाखड़ा-नांगल परियोजनाओं से भी लाभ प्राप्त होता है और इन योजनाओं पर जो राशि व्यय हुई है, वह बहुत ध्यान देने योग्य है। हम यह नहीं जानते कि संशोधित अनुमान क्या है, परन्तु एक मामले में हम जानते हैं कि यह 130 करोड़ रुपये है और दूसरे के जो नवीनतम अनुमान हमें बताये गये हैं वह 65 करोड़ रुपये है।

इन आंकड़ों को देने से मेरा मतलब यह था कि योजना बनाने वालों ने राज्यों के साथ बिल्कुल भी दयालुता रहित व्यवहार नहीं किया है, और यह अब कुछ राज्यों के साथ बराबर परामर्श करने के पश्चात् योजना में सम्मिलित किया है। मैं माननीय सदस्य, श्री विश्वनाथ दास को धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने राज्य को कुछ अधिक देने की संभावना की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है।

यदि मेरे पास समय होता तो मैं प्रत्येक राज्य संबंधी समस्या पर विस्तारपूर्वक चर्चा कर सकता था परन्तु मैं पुनः कहता हूं कि राज्यों के साथ बराबर परामर्श करने के पश्चात् ली गई योजनाओं के अतिरिक्त कोई कार्यक्रम इस योजना में सम्मिलित नहीं किया गया है। वित्तीय आधार के सामान्य प्रश्न के संबंध में मुझे केवल इतना ही कहना था परन्तु मुझे पण्डित कुंजरू की बात का उत्तर अवश्य देना चाहिए। उन्होंने कहा कि उन्हें अतिरिक्त धन इकट्ठा करने की हमारे सामर्थ्य पर सन्देह है। इस वर्ष के संबंध में मैं कोई भविष्य-वाणी करना नहीं चाहता हूं, परन्तु जो आंकड़े मुझे मिले हैं उनके आधार पर मैं समझता हूं कि हमारा राजस्व हमारी अपेक्षा से कम नहीं होगा। राज्यों के विषय में मेरे पास जानकारी नहीं है परन्तु किसी वर्ष विशेष के आंकड़ों के आधार पर पंचवर्षीय योजना की सुदृढ़ता को जांचना ठीक नहीं है। इन उतार चढ़ावों को अवश्य मानना चाहिए। ऐसा हो सकता है—कम से कम हमें आशा रखनी चाहिए कि ज्यों-ज्यों योजना पूरे जोरों पर आती जाती है और अधिक सक्रिय प्रयत्न किए जाते हैं तथा दूसरी बाहरी परिस्थितियां प्रभाव डालती हैं, जिनके प्रभाव से राजस्व बढ़ जाता है या खर्च घट जाता है। हमें आशा है कि अगला वर्ष राजस्व और खर्च की दृष्टि से

उत्तम रहेगा। जब अनावश्यक खर्च कम कर दिया जाता है तब कोई भी व्यक्ति यह आशा कर सकता है कि इस लक्ष्य को प्राप्त कर लिया जाएगा।

यही बात लोक ऋण संबंधी हमारे अनुमानों के संबंध में भी ठीक है। ये ऋण पांच वर्षों के लिए केवल 114 करोड़ हैं जो प्रतिवर्ष 23 करोड़ रुपये से कम हैं। मैं इसे बहुत ऊंचा लक्ष्य नहीं समझता हूं। अल्प बचत और अप्राप्त ऋण सम्बन्धी लक्ष्य, जो 250 करोड़ रुपये है, अर्थात् 50 करोड़ रुपये प्रतिवर्ष, इस वर्ष नयूनाधिक प्राप्त किया जा चुका है। ज्यों-ज्यों योजना प्रगति करेगी और अधिक आय होगी, तो मुझे कोई सन्देह नहीं है कि हम इस अनुमान विशेष को पूर्ण रूप में प्राप्त कर सकेंगे। इसी प्रकार रेलों के विषय में हम 120 करोड़ रुपये की आशा रखते थे। इसलिये इस प्रश्न पर बहुत गम्भीर रूप से विचार करने के पश्चात् मुझे कोई सन्देह नहीं रहा है कि योजना के प्रथम भाग को चलाने के लिये हम आवश्यक राजस्व प्राप्त कर सकेंगे। यदि किसी सीमा तक कुछ कमी भी रही, तो भी मुझे पूर्ण संतोष है कि इसका हमारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

दूसरे भाग के विषय में हमने निर्णय किया है कि वह पूर्णतया विदेशी सहायता के मिलने पर निर्भर है। जब यह कहा गया है कि विदेशी सहायता लेने के लिये हम अपनी कोई भी स्वतंत्रता या सिद्धान्त का त्याग नहीं कर रहे हैं तो फिर मैं नहीं समझ सकता कि कतिपय सदस्यों को विदेशी सहायता प्राप्त करने के संबंध में क्यों आपत्ति होती है। यदि हम इसे प्राप्त करेंगे तो हम इसे पूरी जागरूकता के साथ लेंगे कि हमने इस संसार में प्रजातंत्र के संरक्षण के लिए अपना बहुत कुछ खर्च किया है और यह कि मित्रों के लिये जो कुछ किया है उसकी अपेक्षा भतपूर्व शत्रुओं के लिए बहुत कुछ किया गया है।

मैं इसके विश्लेषणात्मक पक्ष का नहीं अपितु ऐतिहासिक दृष्टि से इसका निर्देश कर रहा हूं। फालतू रुपया रखने वाले किसी भी व्यक्ति के लिये इस प्रकार से धन के ब्याज का विनियोजन करना उत्तम होगा जिससे कि संसार के इस भाग के आर्थिक विकास के निमित्त उसे लगाया जा सके, और इसलिये हमें इस प्रकार की किसी मैत्रीपूर्ण सहायता लेने में शर्माने का कोई कारण नहीं है। इसके अतिरिक्त पुनर्निर्माण तथा विकास के निमित्त स्थापित किए गए अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से, जिसके हम स्वयं सदस्य हैं, इस प्रकार की सहायता मिलने की संभावना है।

बस, समस्या के वित्तीय पक्ष पर मुझे इतना ही कहने की आवश्यकता है। नदी घाटियों पर हुए खर्च के संबंध में मैं श्रीमती दुर्गाबाई से पूर्णतया सहमत हूं कि जब तक हम सतर्क नहीं रहते हैं, हो सकता है कि हम अपना बहुत सा धन इन नदी घाटियों पर खर्च कर दें और प्रारम्भ में ली गई बड़ी योजनाओं पर होने वाली फिजूल खर्च को रोकने से और उचित ढंग से कम खर्च की नीति को अपनाने से शेष योजना की क्रियान्विति में बहुत सहायता मिल सकती है। इन आंकड़ों को देखिये 130 योग 70 अर्थात् 200, योग

70 अर्थात् 270 या 275 करोड़ तथा उसमें से पांच प्रतिशत बचत भी हमारे लिये स्कूलों, हस्पतालों और उन दूसरी चीजों की व्यवस्था कर सकेगी जो श्रीमती दुर्गाबाई का चित्त प्रसन्न करेंगीं। इसलिए मैं इस समस्या से भलीभांति परिचित हूं। मैं इनमें कुछ मामलों के संबंध में बुरा और सख्त रवैया अपनाता रहा हूं, और खर्च की जांच करने के लिये समितियां नियुक्त किए जाने पर जोर देता रहा हूं, और मैं आशा करता हूं कि इन अति महत्वपूर्ण नदी घाटी परियोजनाओं को क्रियान्वित करने में कोई भी फिजूल तथा व्यर्थ खर्च नहीं होगा।

यथासंभव निष्पक्षता से—और मैं बहुत सीमा तक निष्पक्ष भी रह सकता हूं, क्योंकि आखिरकार धन जुटाने का उत्तरदायित्व मेरे ऊपर है; मैं दोहरी हैसियत में हूं, एक तो मैं योजना आयोग का सदस्य हूं किन्तु मैं अभागा व्यक्ति हूं जिसे विधेयक के लिए धन जुटाना है, और इसलिये मैं योजना को कुछ आलोचनात्मक दृष्टि से देख सकता हूं—मुझे निश्चय होता है कि यह योजना बहुत सी कठिन अवस्थाओं में मध्यम मार्ग निकालने के काम में सफल रही है, और यह अपनाये जाने योग्य है; यह पिछली समस्याओं का अन्त करती है और भविष्य की प्रगति के लिए लक्ष्य निर्धारित करती है। मैं बार-बार कही जाने वाली इस बात को समझने में असमर्थ हूं कि इस योजना में कुछ नहीं है जो लोगों को उत्साहित कर सके अथवा प्रोत्साहन दे सके। मैं कहता हूं कि योजना एक बहुत सुन्दर उपक्रम का क्षेत्र प्रस्तुत करती है, जिसमें हम जितनी सफलता प्राप्त करते हैं, वह स्वयं अधिक सफलता की ओर ले जाएगी। मैं आज इसके चिह्न देहातों में देख सकता हूं। मैं देख सकता हूं कि लोग कुछ निःशुल्क मजदूरी करने के विचार को धीरे-धीरे अपना रहे हैं। आज यह विचार विश्वविद्यालयों के पुरुष तथा स्त्री स्नातकों में फैल गया है। मैंने उनको शिविरों में काम करते हुए, कुदाली लिये हुए, भूमि की घास उखाड़ते हुए और ग्रामीण को उत्साहित करते हुए देखा है और मैंने इसके प्रति गांव वालों की सामान्य प्रतिक्रिया भी देखी है। मुझे विश्वास है कि यदि कोई व्यक्ति आज ऐन्द्रजालिक ढंग से देश की जनगणना करे, तो यह अनुमान लगा सकता है कि देश में क्या कुछ किया जा सकता है जो किसी व्यक्ति को उत्साहित करने के लिये बहुत कुछ आधार मिल सकेगा। मुझे निश्चय है कि यह सब काम द्रुत गति से होगा क्योंकि यह आकांक्षा देहातों में हमारे किसानों के दिलों में स्पष्ट झलकी है। मैं समझता हूं कि सदन को यह आश्वासन दे सकता हूं कि इस सुन्दर योजना को वित्त की कमी के कारण समाप्त नहीं होने दिया जाएगा।

7ख

प्रथम पंचवर्षीय योजना सम्बन्धी प्रस्ताव*

महोदय, एक ऐसे वाद-विवाद** को समाप्त करना बहुत कठिन है जिसमें पचास वक्ताओं ने भाग लिया हो। विपक्ष के सदस्यों द्वारा इस योजना पर की गई हल्की या कठोर टिप्पणी को देखते हुए मैं एक आत्म-अंतनिरीक्षण के दौर में आसक्त हुआ जा रहा हूं, और मैंने इस बात पर विचार करने की पूरी कोशिश की है कि हम इस योजना के माध्यम से प्राप्त उपलब्धियों का दावा करने के सिवाय कुछ और कर पाते। पहला आरोप इस योजना को प्रस्तुत करने के लिए, लिए गये समय के बारे में है। थोड़ा बहुत शोध करने के पश्चात् मैंने पाया कि सोवियत संघ की योजना उसको शुरू करने के लगभग 20 महीने बाद ही प्रस्तुत की गई थी, और हमने भी प्रथम पंचवर्षीय योजना के अंतिम रूपांतरण को प्रस्तुत करने में इतना ही समय लिया है। महोदय, मैं सदन को यह भी याद दिलाना चाहूंगा कि हमने योजना आयोग की नियुक्ति के चार महीनों के भीतर ही 'कोलम्बो कान्फरेन्स' के लिये एक मसौदा तैयार कर लिया और उसके एक वर्ष के भीतर ही हमने प्रथम पंचवर्षीय योजना के मसौदे की रूपरेखा तैयार की। इसलिये, मैं नहीं समझता कि हमने बहुत अधिक समय लिया है।

महोदय, मैंने इस बात पर भी विचार किया है कि हम इसे योजना से अधिक कुछ और भी बना पाते कि नहीं। हम इस आरोप को स्वीकार करते हैं कि सम्भवतः अर्थशास्त्री जिस रूप में योजना को लेते हैं यह योजना उस मानदण्ड पर खरी नहीं उतरती, मेरे कहने का मतलब यह है कि यह ऐसी योजना नहीं है जिसका ब्यौरा सारणीबद्ध तरीके से आड़े तिरछे कालमों में दर्शाया जा सकता है जिसमें कि आय के साधनों को एक तरफ और व्यय की जाने वाली धनराशि को दूसरी तरफ क्रमबद्ध किया गया हो आदि। हां, यह सच नहीं है कि यह एक विस्तृत योजना है, लेकिन किसी ने योजना से सम्बंधित कठिनाइयों की ओर थोड़ा सा ध्यान दिया हो, तो वह इस बात को जान सकता है कि इस प्रथम

---

*राज्य सभा वाद विवाद, 18 दिसम्बर, 1952, कॉ॰ 2419-2437

**प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रथम पंचवर्षीय योजना के बारे में प्रस्तुत प्रस्ताव पर 16 दिसम्बर, 1952 को बोलते हुए।

प्रयोग में सहायक आंकड़े उपलब्ध न होने के कारण इस तरह की योजना बनाना पूर्ण रूप से नामुमकिन था और यदि हमने ऐसी योजना प्रस्तुत की होती तो मैं समझता हूं कि विपक्ष के सदस्यों का इसे एक बकवास योजना की संज्ञा देना उचित होता।

महोदय, इसे एक वार्षिक बजटों की श्रृंखला बताया गया है कल लोक सभा में अपने भाषण के दौरान मैंने बताया था कि यह सही मायने में एक वित्तीय योजना नहीं है, कहने का मतलब यह है कि योजना की परिधि केवल वित्तीय नहीं है और मैं समय की कमी को देखते हुए लोक सभा में कही गई बातों को दोहराना नहीं चाहता हूं। लेकिन चूंकि हमने योजना में और मुद्दे शामिल करने का प्रावधान किया है, इसलिये, इसे किसी भी तरह बजटों की श्रृंखला नहीं कहा जा सकता।

दूसरा आरोप यह लगाया गया है कि इस योजना में संसाधनों का मूल्यांकन नहीं किया गया है। यह भी सत्य है कि हमने संसाधनों की सारिणी नहीं दी है लेकिन योजना बनाते समय हमने इस विषय पर विशेष ध्यान दिया है और बहुत से अध्यायों—जैसे अध्याय संख्या 3, 9, 21, 23, 26 और 27—में कुछ संसाधनों और एक पूर्ण ब्यौरा देने की हमारी सीमित क्षमता है। अब रही बात हमारे मानव संसाधनों की, तो इस संबंध में हमारे पास उपलब्ध जानकारी पर्याप्त नहीं है। 1951 की जनगणना के आंकड़ों से शायद संसाधनों का और अधिक विश्लेषण संभव हो सकेगा। हमने बेरोजगारी की समस्या से निपटने की भी कुछ कोशिश की है और इस सम्बन्ध में भी मैंने कल लोक सभा में कहा था कि समस्या के आयाम की जानकारी होने से पहले इस समस्या का और गहन अध्ययन करने की जरूरत है। योजना में राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण और राष्ट्रीय विकास की विशेष समस्याओं से संबंधित अनुसंधान और शोध करने के लिये 50 लाख रुपये का प्रावधान है। इसलिये, महोदय, इस मामले में हमारा यह कहना है कि इस समय हमारे पास उपलब्ध सूचना के अनुसार योजना में देश में संसाधनों का सर्वश्रेष्ठ मूल्यांकन किया गया है। मैं इस बात पर भी बल देना चाहूंगा कि संसाधनों का अध्ययन एक निरंतर प्रक्रिया है और योजना में बहुत जगहों पर हमने उन क्षेत्रों की ओर इंगित किया है जिनमें और अधिक अध्ययन की संभावना है।

महोदय, इस तीन दिन के वाद-विवाद के दौरान दिये गये विभिन्न सुझावों से मैंने लाभ उठाने का प्रयत्न किया है और मैं योजना पुनः तैयार करने की कोशिश भी करूंगा। मेरा विचार भारी उद्योगों, रसायनिक उद्योगों, इंजीनियरी उद्योगों, रेलवे विकास, शिक्षा, स्वास्थ्य,

जहाज़रानी, राजामुंदरी नहर, अविकसित क्षेत्रों, लिग्नाइट आदि को भी शामिल करने का है। और मेरे विचार में यह योजना लगभग तीन हज़ार करोड़ रुपये की होगी। महोदय, मैंने राजस्थान के सदस्यों सहित कुछ अन्य सदस्यों, जिन्होंने यह कहा कि केवल इस संदर्भ में ही 10 करोड़ रुपये का घाटा होने की सम्भावना है, के विचारों को देखते हुए संसाधनों का पुनः मूल्यांकन किया है। हमारे पास संसाधन एक हजार करोड़ रुपये के हैं और योजना तीन हजार करोड़ रुपये की है।

मैंने उस माननीय सदस्य की शिकायत को नोट कर लिया है जिसने मुझसे पहले वक्तव्य देकर यह कहा है कि योजना में राष्ट्रीय आकांक्षाओं की अनदेखी की गई है। हमारा तो यही विचार था कि राष्ट्र की आकांक्षाएं संविधान में सुरक्षित हैं और उन्हीं आकांक्षाओं के संदर्भ में योजनाकारों को योजना बनाने का काम सौंपा गया था। और वास्तव में योजना का मुख्य उद्देश्य उन आकांक्षाओं की व्याख्या करना नहीं है, बल्कि यदि सम्भव है तो उन आकांक्षाओं को पूरा करने के तरीके बताना है।

महोदय, उन्होंने यह शिकायत भी की है कि पिछले तीन-चार दिनों में पहली बार विपक्ष के सदस्यों से विचार-विमर्श किया गया है। योजना आयोग का एक राष्ट्रीय सलाहकार बोर्ड है जिसमें लगभग सभी दलों के सदस्यों का प्रतिनिधित्व है। मुझे ध्यान है कि इस दल के एक बहुत ही प्रतिष्ठित सदस्य—मेरे सामने बैठे माननीय सदस्य—राष्ट्रीय सलाहकार बोर्ड के सदस्य हैं और मेरी जानकारी के अनुसार वह बोर्ड की बैठकों में भी भाग लेते रहे हैं। अतः मैं नहीं समझता कि उनकी यह शिकायत उचित है कि उन्हें पहले विश्वास में नहीं लिया गया है।

अक्तूबर, 1952 में पंचवर्षीय योजना के प्रारूप पर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों से अलग से विचार-विमर्श किया गया था, वे एकमत नहीं थे, क्योंकि उनका विलय हाल ही में हुआ था और उन्होंने नियंत्रण जैसे महत्वपूर्ण विषय पर कोई सुझाव नहीं दिया। तत्पश्चात् निर्दलीय संसद सदस्यों के एक गुट के साथ और फिर कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों के साथ इस पर विचार विमर्श किया गया और फिर नवम्बर, 1952 में विशिष्ट महिला कार्यकर्त्ताओं के साथ भी विचार-विमर्श किया गया। कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों का मुख्य मुद्दा था, मुआवजा दिए बिना पूरी भूमि का अधिग्रहण कर लिया जाए।

वे भूमि का आवंटन तथा भारत में विदेशी धन की जब्ती के पक्ष में थे और मेरा विचार है कि मुआवजे के बिना वे यह काम करना चाहते थे; मैं गलत भी हो सकता हूं। हमारे विचार में ये सुझाव मानना उचित नहीं था और मैं समझता हूं कि इस बात को कम्युनिस्ट पार्टी के प्रतिनिधियों ने भी स्वीकार किया।

दूसरे ग्रुपों के साथ विचार-विमर्श में जो बातें उठाई गई वे सिद्धांतों का अंतर न हो कर मुख्य बातों के महत्व पर आधारित थीं और यह योजना के निम्न मुख्य पहलुओं से सम्बंधित है; कि योजना को अधिक नौकरशाही के बिना इसका पूर्णरूपेण कार्यान्वयन सुनिश्चित करने की आवश्यकता—हम इस बात से सहमत हैं, महोदय, कि बहुत ज्यादा नियम बंधन क्षतिकारी सिद्ध होगा, हालांकि यदि हम इसे बिल्कुल ही पृथक कर दें तो देश का बुरा हाल होगा—राजनैतिक दलों का हस्तक्षेप समाप्त कर राष्ट्रीय आधार पर न कि दलगत आधार पर सहयोग होना चाहिये, लघु और कुटीर उद्योगों को ज्यादा महत्व देने की आवश्यकता है, मानवशक्ति संसाधनों का पूर्ण उपयोग हो, योजना में बेरोज़गारी की समस्या से संबंधित विचार विमर्श हो, ग्रामीण विद्युतीकरण की ज़रूरत पर बल दिया जाये, इस बात को सुनिश्चित किया जाये कि योजना निजी हितों को सुदृढ़ करने का कारण न बने और योजना की वित्तीय संसाधनों की आम समस्या पर विचार किया जाये। महोदय, हमने इनमें से बहुत से मुद्दों पर मसौदे की विस्तृत रूप से समीक्षा की ताकि योजना आयोग को इन दलों से, विशेषकर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से, मिले सुझावों को शामिल किया जा सके।

अब रही संसाधनों की बात, तो मैंने इस विषय में लोक सभा में इससे संबंधित विभिन्न प्रश्नों के उत्तर दिये हैं। कुछ लोगों को शंका है कि क्या राज्य आवश्यक संसाधन जुटा पायेंगे। शायद उनके लिये यह एक कठिन कार्य हो। कर राजस्व में कमी आर्थिक मामलों के किसी विशेष पहलू को शायद इंगित करती हो और मैंने कल कहा है कि यदि ऐसी प्रवृत्तियां बनी रहीं तो शायद वित्तीय घाटा इतना बढ़ जाए, जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। दूसरे शब्दों में इस मामले में योजना नग्य बन जायेगी और मैं इसके बारे में बहुत ज्यादा आशावान हूं। इसलिये, तात्कालिक व्यावहारिकता की सीमाओं में रहकर सभी सम्भावित प्रयोजनों को संतुलित करने के पश्चात् हम समझते हैं कि योजना की धनराशि को नहीं बढ़ाया जा सकता है। इसलिये, महोदय, हमारे पास प्राथमिकताओं का प्रश्न रह जाता है, जिसका डा० मुखर्जी ने उल्लेख किया है। दूसरी ओर से दिये गये एक वक्तव्य, जो कि मैं समझता हूं कि मेरे सामने बैठे माननीय सदस्य ने दिया है, में यह शिकायत की गई है कि प्राथमिकताएं भी संतोषजनक नहीं थीं। मेरा विचार है कि उनके पास अपने प्रसंग को विस्तार से पेश करने का समय नहीं था, लेकिन जहां तक हम समझते हैं, हमने कृषि उत्पादन को महत्व दिया है और हम समझते हैं कि ऐसा करना आगामी पांच वर्षों के लिये एक उचित योजना बनाने की दिशा में एकमात्र सुदृढ़ आधार प्रदान करेगा। इसके आधार पर हम दूसरी पंचवर्षीय योजना का निर्माण कर सकते हैं, जिसमें विभिन्न उद्योगों को और अधिक प्राथमिकता दी जायेगी, और यदि फिर भी आप यह समझते हैं कि योजना में केवल सरकारी क्षेत्र को ही महत्व दिया गया है, तो शायद

आपको यह भी पता होना चाहिए कि निजी क्षेत्र की पूर्णरूप से उपेक्षा भी नहीं की गई है। कुल उपलब्ध संसाधनों का लगभग 40 से 45 प्रतिशत निजी क्षेत्र के लिये उपयोग में लाया जायेगा और शेष धनराशि सरकारी क्षेत्र में लगाई जायेगी।

राष्ट्रीय आय में वृद्धि का कुछ उल्लेख किया गया था। हमने स्पष्ट किया है कि प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय को दुगुना करने में सिद्धान्ततः 27 वर्ष लगेंगे, फिर भी, यदि हम अपनी सम्पूर्ण प्रसुप्त उत्पादन क्षमता या अनुपयुक्त मानव शक्ति जुटाएं और यहां पर सभी दलों का सहयोग अनिवार्य है—तो हम उस अवधि को घटाकर 20 वर्ष तक ला सकते हैं, जो की 27 वर्ष की लम्बी अवधि से कहीं बेहतर है और जैसाकि कुछ माननीय सदस्यों ने कहा है कि 50 या 100 वर्ष तो निश्चय ही यह 20 वर्ष की अवधि उतनी अधिक बुरी या बुरी नहीं है।

महोदय, अब, योजना के लक्ष्य में दोष निकाला गया है। जहां तक खाद्य उत्पादन तथा खाद्य उपभोग के लक्ष्यों का सम्बन्ध है, मैं यह स्वीकार करता हूं कि इस मामले में हमारी स्थिति सुदृढ़ नहीं है, क्योंकि कृषि उत्पादन अधिक नहीं है और वास्तव में इतना कम भी नहीं है। माननीय सदस्यों ने 'नेशनल रैंडम सैम्पल कम्पेटी' की रिपोर्ट नहीं देखी है, जो इस समय मेरे पास है, तथा जिसे कुछ दिनों में जारी कर दिया जाएगा। इसमें बताया गया है कि उत्पादन तथा खपत दोनों की जरूरत से 25 प्रतिशत अधिक हैं।

कपड़े के सम्बन्ध में, मैं समझता हूं कि अभिरुचि और विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओं, दोनों में फर्क है। वर्ष 1955-56 में 1000 मिलियन गज़ कपड़े का एक ऐसे समय में निर्यात करना पड़ रहा है जबकि हमारी प्रति व्यक्ति उपलब्धता युद्ध पूर्व स्थिति से भी कम है, लेकिन विपक्ष के माननीय सदस्यों ने इसे मिल मालिकों और अधिक लाभ दिलाने की कूटनीति बताया। महोदय, मैं कहना चाहता हूं कि यह एक बहुत ही विकृत दृष्टिकोण है। 1000 मिलियन गज़ कपड़े का निर्यात निर्धारित किया गया था, क्योंकि भारतीय वस्त्रों के लिये विदेशी बाज़ार पहले से ही तैयार है और हम सम्भावित भुगतान संतुलन का घाटा प्रतिदिन प्रतिपादित करना चाहते थे। अब, मैं उनसे यह कहना चाहूंगा कि वह इस बात पर विचार करें कि यदि हम कपड़े का निर्यात न करते तो क्या होता। यदि हम कपड़े का निर्यात नहीं करते तो 100 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा का घाटा होता जिसके कारण वित्तीय घाटे या विदेशी सहायता पर हमारी निर्भरता बढ़ जाती है और यह हमें केवल विदेश से प्राप्त हो सकती है। मेरा ख्याल है कि हम सब कम से कम विदेशी सहायता राशि का उपयोग करने के लिये सहमत हैं, कहने का मतलब यह है, कि हम जितना सम्भव हो सके अपने ही संसाधनों से अपनी योजना को क्रियान्वित करने के पक्ष में हैं। हम इसमें किस सीमा तक सफल हो पायेंगे यह इस बात पर निर्भर

करता है कि हमारा देश कितना आत्मनियंत्रण कर सकता है और यह एक ऐसा मामला है जिसमें कि प्रत्येक दल का सहयोग अपेक्षित है।

महोदय, अब शायद सदन यह जानने का इच्छुक होगा कि सभी तरह की योजनाओं के लक्ष्यों का क्या होता है? मेरे पास अमरीका तथा सोवियत संघ की पंचवर्षीय योजनाओं के बारे में कुछ जानकारी है। यह उनकी तथाकथित 'एक नई आर्थिक नीति' से 4 या 5 वर्ष पहले की अवधि है जो कि आयोजन और सुदृढ़ीकरण का काल था और उस काल के समापन पर सोवियत संघ की आर्थिक स्थिति लगभग वर्ष 1913 जैसी ही थी। इसी प्रकार यह पांच वर्ष की अवधि तैयारी और आर्थिक क्षतिपूर्ति की अवधि है—वह क्षति जो कि युद्ध और विभाजन—दोनों कारणों से हुई।

मैं रूस की प्रथम पंचवर्षीय योजना की तुलना अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना से कर रहा हूं। उनकी अंतिम पंचवर्षीय योजना का अपनी प्रथम पंचवर्षीय योजना से तुलना करने का कोई लाभ नहीं है। ऐसा करना शायद ही न्यायोचित हो। रूस की पांच वर्ष की योजना अवधि में राष्ट्रीय आय में 50 प्रतिशत की वृद्धि करने की परिकल्पना की गई। उपलब्ध प्राक्कलनों की भिन्नता के कारण यह कहना आसान नहीं होगा कि राष्ट्रीय आय में वास्तव में कितनी वृद्धि हुई है। हमारे पास प्रोफेसर बाब जैसे अर्थशास्त्रियों के प्रमाण हैं कि जहां तक उपभोग का संबंध है, योजना के अनुमानों के अनुसार काम नहीं हुआ। इसके कुछ प्रतिकूल कारण निम्नलिखित थे:—

(क) सामूहिक अभियान के विरुद्ध किसान की प्रतिक्रिया के रूप में भारी पैमाने पर पशु वध;

(ख) व्यापार के मामले में प्रतिकूल आंदोलन जिनके कारण सोवियत संघ की आयात क्षमता में तीव्र गिरावट आ गई;

(ग) योजना में कल्पित रक्षा खर्चों पर कमी के बदले बढ़ोतरी।

इन सभी कारणों से योजना में कल्पित श्रम उत्पादन को दुगुना करने के बदले 41 प्रतिशत की वास्तविक वृद्धि हुई। प्रश्न यह है कि कृषि उत्पादनों में 35 प्रतिशत की वृद्धि का अनुमान लगाया गया था। वास्तव में वर्ष 1929—32 तक का औसत उत्पादन वर्ष 1925—28 तक के औसत से थोड़ा सा कम था। यह 1931 और 1932 की दो खराब फसलों के कारण हुआ।

जब अनाज नहीं है तो इसे बांटा नहीं जा सकता और इसीलिए बहुत से लोग मर जाते हैं।

वस्तुतः इस योजना की सबसे उल्लेखनीय सफलता भारी उद्योगों के बारे में है—जिसे

सभी स्वीकार करते हैं कि इसने निर्धारित कार्यक्रम से अधिक लक्ष्य प्राप्त किया था। इस कमी के कारण इसके उपभोग पर जो प्रभाव पड़ा, वह यह था। योजना अवधि के दौरान उपभोक्ता सामग्रियों के मूल्य तेजी से बढ़े। मेरे विचार से सदन की इसमें गहरी रुचि होगी। 1928 और 1936 के बीच डबल रोटी की कीमत 10 गुना से अधिक, आटे की लगभग 12 गुना, मशीन का कुटा हुआ अनाज 13 गुना, गाय का मांस 10 गुना, दूध की 6 गुना और मोटे कपड़े की कीमत लगभग 8 गुना बढ़ी।

कृषि की योजना बनाने में विशेष कठिनाइयां आती हैं। अपनी गहन केन्द्रीकृत योजना के बावजूद सोवियत संघ का भी यही अनुभव रहा है। 1950 में रूस का उत्पादन 1940 के उत्पादन की तुलना में केवल 7 प्रतिशत अधिक था। 1950 के वास्तविक उत्पादन का आंकड़ा, यद्यपि मेरे पास है, पर मैं बताऊंगा नहीं।

इसी कारण वहां 1951 में सामूहिक कृषि के सम्मिश्रण की नयी कृषि नीति अपनानी पड़ी।

इसलिए यही लक्ष्य के उपयुक्त सिद्ध हुआ। इसलिए मेरा विचार है कि यदि कोई निष्पक्ष भाव से विचार करे तो पता चलेगा कि यह योजना पर्याप्त समुचित अवधि में प्रस्तुत की गयी थी, सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इसका आकार भी पर्याप्त था, और योजना के अन्य उद्देश्यों पर पुनः विचार करने पर पता चलता है कि प्राथमिकताओं के साथ कोई गड़बड़ी नहीं हुई है।

माननीय सांसदों ने कुछ समाधान सुझाये हैं परन्तु मेरे विचार से इस समस्या से न तो साम्यवादी ही सन्तुष्ट होंगे और न ही समाजवादी।

जहां तक साम्यवादी तरीके के हल का सम्बन्ध है, इस प्रक्रिया में हमारे उन आधारभूत मूल्यों के नष्ट हो जाने का भय है जिन्हें हम काफी महत्व देते हैं। हमारे लिए यह भी संभव नहीं है कि हम उनके द्वारा सुझाए गए समाजवादी सिद्धान्तों को अपना लें। हमारा उनके साथ बहुत अधिक मतभेद नहीं है। देश की उन्नति समाजीकरण की दिशा में ही होनी चाहिए और मेरे विचार से योजना में कहीं न कहीं इस पर ध्यान अवश्य दिया गया है। विचारणीय प्रश्न यह है कि प्रशासनिक अनुभव के परिप्रेक्ष्य में व्यावहारिक क्या होगा। इस बारे में हम वैचारिक अस्त व्यस्तता के बावजूद विपक्ष में बैठे सदस्यों की तुलना में अधिक फायदे का दावा करते हैं। हमने कार्यों का संचालन किया है। हमें यह भी पता है कि महत्वपूर्ण सेवाओं में उचित व्यक्तियों की नियुक्ति करना कितना कठिन है चाहे वह प्रशासनिक क्षेत्र हो या औद्योगिक अथवा बढ़ते हुए उद्योग हों, जब तक हम विश्वसनीय और प्रशिक्षित कर्मियों को तैयार नहीं कर लेते मेरे विचार से समाजीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा देने की चेष्टा में हम इस उद्देश्य की पूर्ति में बाधक ही सिद्ध होंगे। इसलिए हमें

सिद्धान्तों और व्यावहारिकता के बीच कुशलता से रास्ता निकालना होगा और उसके परिप्रेक्ष्य में ही निर्णय लेने होंगे। मेरे विचार से समाजवादी दल और कांग्रेस दल में यही एक अन्तर है।

इस समय हम उद्योगपतियों, कामगारों या अन्य जो कोई भी हमारे साथ सहयोग करने को तैयार हो सबके साथ न्याय करने और समान व्यवहार करने के लिए तैयार हैं।

उस माध्यम के द्वारा भूमि के आवंटन और आम सुधार की अनेक समस्याओं का हवाला दिया गया है। एक तरफ तो उत्पादन में कमी आयेगी दूसरी तरफ मुआवजा अधिक देना होगा। हमने इस समस्या पर काफी विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्थिति चाहे सामाजिक न्याय से संबंधित हो या उत्पादन से और चाहे इन विरोधी लक्ष्यों के मेल से संबंधित हो, ऐसी स्थिति में भी थोड़ी सी जोत भूमि रखने अथवा यांत्रिक रूप से समरूप आवंटन करने या भूमि पर मालिकाना अधिकार समाप्त करने का लक्ष्य निर्धारित करना आवश्यक नहीं था। मेरा तात्पर्य जमींदारों से नहीं बल्कि भूमि के मालिकों से है। जैसाकि कोई भी कृषि कार्य से जुड़ा व्यक्ति जानता है कि कृषि में उत्पादन वृद्धि की असीम संभावना है। मैं स्वयं कृषि मामलों से काफी कुछ जुड़ा रहा हूं और इन पांच वर्षों के दौरान सदन के किसी भी सदस्य की अपेक्षा मैंने अधिक गांव—लगभग 3000 देखे हैं। मैंने उनका निरीक्षण किया है और मैं इस बात से पूरी तरह आश्वस्त हूं कि योजना आयोग ने जो नीति अपनायी है वह कम से कम आगामी कुछ वर्षों के लिए तब तक के लिये उपयुक्त है, जब तक कि हम यह नहीं देख लेते कि इसका कार्य कैसा रहता है।

माननीय सदस्यों ने कुछ अन्य छुटपुट मामलों का भी उल्लेख किया है। श्री गुरुस्वामी ने रेलों के विद्युतीकरण के बारे में कुछ कहा है। वास्तव में रेल मंत्री के पास कई योजनायें हैं जिनकी कुल लागत लगभग 70 से 80 करोड़ हो सकती है जो कि सभी रेलों के विद्युतीकरण के लिए नहीं बल्कि कुछ योजनाओं के लिए है। सारी योजनायें पूरी करने में 80 करोड़ की लागत आयेगी। पहली समस्या आवश्यक धन की प्राप्ति है। दूसरे, मेरा तात्पर्य किसी अन्य प्रकार के पूंजीगत व्यय के संबंध में कुछ धन बचाने का तर्क उतना ही सत्य है। पूंजी प्राप्त करना कठिन काम है। जब तक भारी विद्युत उद्योग का विकास नहीं हो जाता विद्युतीकरण की योजना पर कार्य करने से विदेशी मुद्रा के रूप में व्यय बहुत अधिक हो जायेगा। तीसरे, इस उद्देश्य के लिए अभी भी अपेक्षित ऊर्जा उपलब्ध नहीं है। चौथे, विद्युतकर्षण के क्षेत्र में नये-नये विकास हो रहे हैं और एक या दो साल में नये तरह का विद्युतकर्षण आ सकता है। मैं रेल मंत्रालय की ओर से कह रहा हूं कि इन सब पर विचार करते हुए थोड़ा इन्तजार करने का निश्चय किया है। प्रश्न यह था कि रेल

कार्यशालाओं का पूरा उपयोग नहीं किया जा रहा है और वैगनों के उत्पादन की स्थिति असंतोषजनक है। मैंने रेल मंत्रालय से पूछताछ की थी। मेरे विचार से वर्तमान रेल कार्यशालायें पूरी क्षमता से कार्य कर रही हैं और रेलवे गैर सरकारी कार्यशालाओं का उपयोग भी हर संभव सीमा तक कर रहा है। नियत अवधि में विदेशी मुद्रा की बचत के लिए देश में ही रेल के डिब्बों के निर्माण के लिए रेल मंत्रालय ने नयी कर्मों पर परीक्षण आदेश जैसे कुछ आदेश जारी किए हैं। जहां तक वैगन निर्माण का संबंध है, हाल के वर्षों में इसमें काफी सुधार हुआ है और यही कारण है कि रेलवे पहले जितने रेल के डिब्बों के साथ ही विभिन्न खंडों में 15 से 17 प्रतिशत अधिक यात्रियों को अपनी सेवायें प्रदान कर रहा है।

एक अन्य माननीय सदस्य ने ग्रामीण ऋण का प्रश्न उठाया है। इसके उत्तर में मैं केवल यही कह सकता हूं कि एक ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण कराया गया है जिसके निष्कर्ष भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा बताये जायेंगे। यह सर्वेक्षण ग्रामीण ऋण और वर्तमान में उपलब्ध सुविधाओं के बारे में काफी प्रकाश डालेगा। ऐसा ठीक ही माना जाता है कि आवश्यकतायें बहुत अधिक हैं किन्तु यह 800 करोड़ रुपये की नहीं है, जैसाकि माननीय सदस्य ने ताया था। परन्तु असली समस्या भारतीय रिजर्व बैंक से प्राप्त ऋण को कृषकों तक में बांटने के लिए एक उचित तंत्र तैयार करने की है, जिस किसी ने ऋण समस्या का सामना किया है वह यह जानता है कि यह कोई यान्त्रिक कार्य नहीं है। यह कोई कागज कलम की समस्या नहीं है कि आप करके सन्तुष्ट हो जायें कि चूंकि 800 करोड़ रुपये की आवश्यकता है, इसलिए भारतीय रिजर्व बैंक को चाहिए कि वह 800 करोड़ रुपये के बराबर नोट छाप दे। इसीलिए आयोग ने इसे प्रयोगात्मक बना दिया है। उन्होंने यह बात शाब्दिक रूप में नहीं अपितु प्रयोगात्मक उपाय के रूप में कही है। इससे मेरा तात्पर्य यह है कि जैसे ही हमें लगेगा कि वास्तविक तन्त्र कार्य करने लगा है रिजर्व बैंक के लिए इन आंकड़ों में संशोधन करना सरल हो जायेगा। हमें यह देखना होगा कि रिजर्व बैंक द्वारा चलाई गयी ग्रामीण ऋण योजना का क्या प्रतिफल होता है और यदि हमारा अनुभव उत्साहवर्धक हुआ तो रिजर्व बैंक के लिए इन आंकड़ों में संशोधन करना संभव हो सकेगा।

प्रो० रंगा ने करों की वसूली के संबंध में कुछ सुधार करने के बारे में कहा था। वह यह नहीं है और मैं यह निर्णय नहीं कर पा रहा हूं कि मुझे इसका उल्लेख करना चाहिए या नहीं। परन्तु बात यह है कि योजना आयोग ने सम्बद्ध अध्यायों में करों की वसूली अथवा करों के आकलन के संबंध में अनेक तरीके बताये हैं और यह बात सच नहीं है कि केवल एक ही तरीका सुझाया गया है और केवल इसी से नये और पुराने विक्रय मूल्यों में हुए अन्तर का पता चलता है। इसके तीन तरीके हैं — एकमुश्त में वसूल की

जा सकने वाली कुल धनराशि। इसमें वसूली की राशि के आकलन का प्रश्न नहीं होता है। दूसरा तरीका वार्षिक उत्पाद का एक अंश नकद रूप में वसूल करना। संभवतः यह तरीका कृषकों की दृष्टि से सबसे उपयुक्त हो सकता है। तीसरा तरीका, बड़े भू-स्वामियों के मामले में, भूमि का एक अंश परियोजना से पूर्व की दरों पर सरकार को दिया जा सकता है। मुझे ऐसा लगता है कि प्रो० रंगा इसी तीसरे विकल्प से डर गए जो केवल बड़े भूस्वामियों के लिए है।

अन्त में अविकसित क्षेत्रों का प्रश्न आता है। सबसे पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि इस देश का अधिकांश भाग इसलिए अविकसित है क्योंकि स्वयं देश ही अविकसित है।

राज्यों और इन क्षेत्रों की परेशानियों के लिए बरते जा रहे उपेक्षा के भाव से मुझे कष्ट होता है। मुझे पूरा विश्वास है कि एक समय चम्बल परियोजना के आरम्भ होने पर राजस्थान के लोग अत्याधिक प्रसन्न हुए होंगे, लेकिन आज वे मुझे या योजना आयोग को चम्बल परियोजना आरम्भ करने के लिए केवल धन्यवाद देते हैं और शिकायत करते हैं कि क्षेत्र के विकास के लिए पर्याप्त प्रावधान नहीं किये गए।

कुछ समय पहले मैंने अपने भाषण में उड़ीसा के बारे में बताया था कि उड़ीसा एक अत्यन्त महत्वपूर्ण परियोजना को पूरा करने के लिए अपने वर्ष भर के सकल राजस्व के बराबर धन सहायता के रूप में प्राप्त कर रहा है। मेरा विचार है कि अपने सामर्थ्य के बारे में या किये जा रहे कार्य के बारे में अथवा मुआवजा देने के तरीके के बारे में अनेक प्रकार के संदेह करने के बजाय उड़ीसा को अपना ध्यान परियोजना पर ही केन्द्रित करना चाहिए। मुझे पूरा विश्वास है कि कारखानों को चालू करने इत्यादि के बारे में कोई अन्य बाधा खड़ी करने के बजाय यदि उड़ीसा हीराकुड परियोजना को ही पूरा करने में लगा रहा तो क्षेत्र की भावी आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान दिया जा सकेगा।

क्षेत्रों के विकास के लिए कोई बड़ी सहायता देने का वादा करना केन्द्र सरकार के लिए कठिन था। इसका सीधा सा कारण यह है कि वित्त आयोग का "एवार्ड" अभी भी हमारे हाथ में नहीं है। अपितु हमें तो यह संदेह होता है कि इसका अर्थ होगा केन्द्र से राज्य को संसाधनों का सीधा स्थानान्तरण। मैं यह नहीं कह सकता यह कितना होगा। मुझे केवल इस वर्ष के लिए ही नहीं बल्कि आगामी वर्ष के लिए धन प्राप्त करना होगा। कहने का तात्पर्य यह है कि एवार्ड इस वित्तीय वर्ष के प्रारम्भ से ही पूर्व प्रभावी होगा। एवार्ड के परिणामों की जांच कर लेने के बाद केन्द्र के लिये इस बात की जांच कराना संभव हो सकेगा जिसके बारे में एक माननीय सांसद ने उल्लेख किया था और जिसे उन्होंने एक वित्तीय समन्वित समझौते से पढ़ा था। हम किसी जांच को टालना नहीं

चाहते। एक जांच करायी जायेगी और मुझे पूरा विश्वास है कि इसके परिणामस्वरूप पूरी तस्वीर सामने आ जायेगी।

यदि इसे राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजना नहीं समझा जाता तो मुझे वास्तव में काफी दुःख होगा क्योंकि कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यों से यह राष्ट्रीय योजना नहीं रह पायेगी और चूंकि $1^1/_2$ वर्ष बीत चुके हैं, अतः यह पंचवर्षीय योजना नहीं रह गई है। समाजवादी और प्रजा समाजवादी दलों के सदस्य इस बात को पहले ही कह चुके हैं कि यह कोई योजना नहीं है। यह ग्रैंड ट्रंक एक्सप्रेस की तरह है जो न तो ग्रैंड है, न ट्रंक और न ही एक्सप्रेस है।

भारतीय स्टेट बैंक विधेयक*

अन्तिम वक्ता** ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिलाया है कि बैंकिंग के दोनों*** विंग समान रूप से महत्वपूर्ण हैं। मेरा विचार यह है कि बैंकिंग सुविधाओं का ग्रामीण क्षेत्रों के लिये विस्तार अब अधिक महत्वपूर्ण है। यदि ऐसा न होता तो संभवतया इम्पीरियल बैंक के राष्ट्रीयकरण का अवसर न आता। एक विशेषज्ञ जांच से हमें पता चला कि विशेषज्ञ जांच समिति की सिफारिशों के अनुसार बनाये गये विद्यमान अभिकरण के अन्तर्गत बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार ग्रामीण क्षेत्रों तक नहीं हो पाया है। जिन माननीय सदस्य ने यह कहा है कि यह संशोधन रिजर्व बैंक से संबंधित है, मेरे विचार से उन्हें "डिप्टी" शब्द से भ्रान्ति हुई है। वास्तव में एक गवर्नर के पास दो डिप्टी गवर्नर होते हैं, एक डिप्टी गवर्नर कृषि सम्बन्धी ऋणों का और दूसरा बैंकिंग का कार्यप्रभारी होता है। इन दोनों प्रकार के कार्यों को सामान्यतया मिलाया नहीं जा सकता। अक्सर ऐसा होता है कि एक मुद्रा सम्बन्धी कार्यों को देखता है और दूसरा कृषि ऋण सम्बन्धी कार्यों को। यहां व्यवस्था यह की गई है कि एक चेयरमैन, एक वाईस चेयरमैन तथा दो प्रबन्ध निदेशक होंगे। अब जो उप प्रबन्ध निदेशक इस नये विभाग के संगठन का दायित्व संभालने वाले हैं उनमें यदि कोई छोटेपन की भावना है तो माननीय सदस्य द्वारा प्रस्तावित व्यवस्था तो बहुत ही अनुपयुक्त होगी। प्रबन्ध निदेशक का कार्यक्षेत्र वाणिज्यिक कारोबार है। यह इस प्रकार के कार्यों को देखते हैं। हम आशा करते हैं कि जो इन कार्यों को निरन्तर रूप से देखता रहे ऐसा एक प्रबन्ध निदेशक हमें प्राप्त होगा। इस कार्य की कोई अधिक कठिनाई नहीं होगी क्योंकि इस पर निरन्तर ध्यान दिया जाता है। परन्तु यह दूसरा कार्य अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि हम अब असफल हो गये तो सदैव असफल रह जायेंगे। इसलिये दूसरा अधिकारी पर्याप्त शक्तिशाली होना चाहिये। यह तभी सुनिश्चित किया जा सकता है जब

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 30 अप्रैल, 1955, कालम 7091-7096, 7129-7130, 7151-7152, 7202-7211 "भारतीय स्टेट बैंक का गठन करने और इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया उसे अन्तरित करने तथा अन्य सम्बन्धित और प्रासंगिक मामलों का प्रावधान करने वाले विधेयक को पुरः स्थापित करने के लिए अनुमति प्रस्ताव पर बोलते हुए"।

**श्री माथेन

***शहरी और ग्रामीण बैंक

वह प्रबन्ध निदेशक हो और उसे प्रबन्ध निदेशक का स्तर और उस जैसी ही विस्तृत शक्तियां प्राप्त हों।

अब मैं अगले मुद्दे पर आता हूं जो विशेषज्ञों के बारे में है।

जहां तक दो विशेषज्ञों का सम्बन्ध है, जैसाकि एक माननीय सदस्य ने कहा है, यह संख्या न्यूनतम है। कम से कम दो। सहकारिता और ग्रामीण अर्थव्यवस्था तथा वाणिज्यिक उद्योग केवल ये ही दो हित नहीं हैं। एक तीसरा हित भी है और जो मेरे विचार से बहुत महत्वपूर्ण है और वह है क्षेत्रीय वितरण। हो सकता है कि वे क्षेत्र जिनके अधिकतम शेयर होने की संभावना है, हमें ऐसे सभी लोग भेज सकेंगे जिनकी हम अपेक्षा करते हैं, चाहे वे सहकारिता के क्षेत्र के हों, चाहे वे वाणिज्यिक अथवा बैंकिंग आदि क्षेत्रों के। फिर भी हम पाते हैं कि हमें कुछ क्षेत्रों के प्रतिनिधि नहीं मिले हैं। मेरे विचार से बोर्ड में उन क्षेत्रों को भी प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना बहुत महत्वपूर्ण है। आखिरकार हमें याद रखना चाहिये कि उन क्षेत्रों को ऋण की व्यवस्था करने में बहुत कठिनाई होगी जिन्हें दूसरे तरीकों से अपने डायरेक्टर भेजने की सुविधा नहीं है। इसलिए, मेरे विचार में यह लचीला स्वरूप ही उत्तम है। यह सुनिश्चित कराने के लिये सदन सरकार का विश्वास कर सकता है कि यदि इनमें से किसी तरीके से भी सहकारिता का उपयुक्त प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता है तो बोर्ड में दो से अधिक प्रतिनिधि शामिल किये जायेंगे। विभिन्न हितों के प्रतिनिधित्व के मामले में मेरा विचार है कि आप सरकार का विश्वास करेंगे क्योंकि कानून सही दिशा अपनाने के मार्ग में बाधक नहीं है और सही दिशा अपनाया जाना अनिवार्य है।

अब मैं श्री अचूथन द्वारा उठाये गये इस छोटे मुद्दे पर आता हूं कि योजना आयोग से भी एक निदेशक लिया जाना चाहिये। जैसाकि उन्होंने स्वयं बताया है योजना आयोग सरकार का ही तंत्र है और यह सरकार का परामर्शदात्री तंत्र है। वर्तमान पांच सदस्यों में से तीन सरकारी सदस्य हैं। चेयरमैन प्रधानमंत्री जी हैं। दूसरे सदस्य वित्त मंत्री हैं। योजना मंत्री भी इसके सदस्य हैं। योजना आयोग से एक ऐसी चीज के बारे में कार्यवाही करने के सुझाव से पता नहीं आप क्या प्राप्त करना चाहते हैं जिससे उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। आर्थिक विकास के क्षेत्र में जो कुछ होता है वह उन्हीं के प्रयासों का परिणाम है। उनका सम्बन्ध मुख्यतया आर्थिक विकास के लिये योजना तैयार करने से है। ये मामले उनके लिए गौण हैं। चाहे प्रशासनिक तंत्र के पुनर्गठन का मामला हो, चाहे ऋण की व्यवस्था करने का प्रश्न हो, चाहे सरकारी व्यवस्था की बात हो, वे हमें व्यावहारिक कार्यान्वयन के लिये निर्देश देते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जो एजेन्सी कार्य करेगी उसके लिए किसी व्यक्ति को मनोनीत करने में भी उनकी कोई भागीदारी हो। मेरे विचार से योजना आयोग को ऐसा कोई कार्य सौंपने से कोई लाभ नहीं है। मैं केवल

इतना ही कह सकता हूं कि योजना आयोग में उनका विश्वास बड़ा ही संवेदनशील है। लेकिन मुझे विश्वास है कि यद्यपि उन्होंने बड़ी नेक नीयत से यह सुझाव दिया है। फिर भी उस पर सोचा विचारा नहीं है।

अब केवल एक महत्वपूर्ण बात कर्मचारियों के प्रतिनिधित्व तथा सभी अनुषंगी संशोधनों की रह जाती है। कुछ माननीय सदस्यों को विशेषतया विपक्ष के, प्रत्येक अवसर पर अपने विशेष सिद्धान्त प्रतिपादित करने की आदत है। ऐसे भी अवसर आते है जब उन पर ठीक से चर्चा की जानी चाहिये। निःसंदेह ये बहुत महत्वपूर्ण मामले हैं और मेरा विचार इस समय इस विवाद में जाने का नहीं है कि सामान्यतया उद्योगों के और विशेष रूप से सरकारी एककों के बोर्डों में कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व हो या नहीं और यदि हां तो किस रूप में। यह बहुत बड़ा मसला है और उपयुक्त अवसर आने पर इस सदन में चर्चा होनी चाहिये। इस मामले के बहुत से पहलू होंगे और केवल एकमात्र संशोधन से ऐसे क्रान्तिकारी सिद्धान्त को स्वीकृत नहीं कराया जा सकता । मेरे विचार में यह एक ऐसा मामला है जिस पर विचार करने के लिये पर्याप्त समय मिलना चाहिये और इस पर गहन विचार किया जाना चाहिये। यदि सभा इसे एक बार स्वीकार कर लेती है तो ये संशोधन रद्द हो जायेंगे। मैं यह बात भी कहना चाहता हूं कि निजी उद्योग में भी यह स्वीकृत सिद्धान्त नहीं है कि निदेशक मंडल में कर्मचारियों का प्रतिनिधित्व होना चाहिये क्योंकि बहुत से ऐसे मामले हैं कि जोखिम कौन उठायेगा, यदि घाटा होता है तो घाटा कौन उठायेगा आदि। लेकिन, जैसा मैंने कहा है मुझे इस विवाद में जाने की जरूरत नहीं है। मामले को सरल बनाने की दृष्टि किसी एक राष्ट्रीयकृत संस्थान का मामला है। वहां भी चुनाव शेयरधारियों तथा कर्मचारियों के बीच नहीं है, पूंजी तथा कर्मचारियों के बीच नहीं है। बड़े व्यापारियों तथा कर्मचारियों के बीच नहीं है। प्रश्न है समुदाय तथा कर्मचारियों का। क्या ऐसा कोई विशेष कारण है जिसके अन्तर्गत समुदाय के सरकार द्वारा मनोनीत प्रतिनिधियों के स्थान पर कर्मचारियों द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों को रखा जाए? अतएव यह इस सामान्य से प्रश्न का थोड़ा जटिल पहलू है, जिस पर जैंसाकि मैंने कहा, चर्चा की जानी चाहिए तथा इस पर अच्छी तरह विचार-विमर्श करके निर्णय लिया जाना चाहिए। मेरे विचार से, इस समय, हम जिस अवस्था में हैं, इस प्रकार का संशोधन स्वीकार करना उपयुक्त नहीं होगा।

मैंने एक साधारण सा मामला लिया है जिसमें मैंने यह अनुमान लगाया है कि कोई शेयरधारी नहीं है। पहले मैंने निजी उद्योग के मामले का निपटान किया, तत्पश्चात् मैंने बताया कि कौन हानि वहन करेगा, इत्यादि। तब मैंने इसके विपरीत पूर्णतया राष्ट्रीयकृत संस्था का मामला लिया, जहां मैंने बताया कि कोई शेयरधारी नहीं था, परन्तु विरोध एक समुदाय और एक छोटे से वर्ग के बीच था। इसलिए मैंने कहा कि यह मामले का दूसरा

पहलू है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस मामले का हल कितना कठिन है इसलिए इस पर शीघ्रता से निर्णय नहीं लिया जा सकता। जब तक हम किसी संतोषप्रद समाधान पर नहीं पहुंच जाते हमें यथास्थिति बनाए रखनी चाहिए। इस मामले में मेरा कोई पूर्वाग्रह नहीं है। आप मुझे अभी भी आश्वस्त करा सकते हैं, यदि माननीय सदस्य, इस दौरान अपने तर्क प्रस्तुत करना चाहें तो उन पर विचार किया जाएगा।

यह भी आश्वासन मांगा गया था कि निदेशक बड़े व्यवसाय का प्रतिनिधित्व नहीं करेंगे। बड़ा व्यवसाय माननीय सदस्यों के लिए परेशानी बन गया है। हमने मनुष्य जाति को बड़े व्यवसाय आदि में नहीं बांटा हुआ है, हम केवल बड़े व्यवसाय के बारे में ही नहीं सोच रहे हैं। हम एक दूसरा संशोधन भी ला रहे हैं जिससे बैंक में जमा राशि पर एक सीमा निर्धारित की जा सके। मुझे नहीं मालूम कि माननीय सदस्यों ने इस पर ध्यान दिया है अथवा नहीं। परन्तु एक ऐसा संशोधन है जिसके द्वारा हम शेयरधारियों पर 200 शेयर की सीमा निर्धारित कर रहे हैं।

इससे मेरे इस तर्क की पुष्टि हो जाती है कि बड़ा या छोटा व्यवसाय जैसा कुछ नहीं है। हम इस विधेयक के द्वारा उस मंशा को पूरा करना चाहते हैं, जिस कारण यह विधेयक लाया गया है तथा जनता के हित में हम इस विधेयक को लाना चाहते हैं। यदि किसी व्यक्ति का बड़ा व्यवसाय है तो वह उसकी अपनी योग्यता के कारण है न कि उसे बड़ा व्यवसाय धरोहर में मिला है। दूसरी ओर, यदि कोई ऐसा व्यक्ति है जो सहकारिता के क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है या जिसे ग्रामीण अर्थव्यवस्था के बारे में विशेष जानकारी है — तो वह प्रोफेसर हो सकता है या वह प्रशासक हो सकता है — तो वह इसी प्रकार के पदों पर ही होगा। मेरे विचार से व्यवसाय को बड़े व्यवसाय और छोटे व्यवसाय के रूप में सोचना सही नहीं है तथा ऐसा सोच कर प्रस्ताव बनाना भी सही है। यही कारण है कि मैंने इस संबंध में प्रस्तुत संशोधनों का विरोध किया।

मैं पारिश्रमिक देने के संबंध में कोई सुनिश्चित प्रस्ताव रखने की स्थिति में नहीं हूं क्योंकि इस समय इस संबंध में मेरे पास कोई अन्तिम निर्णय नहीं लिया गया है कि विभिन्न कार्यों के लिए किन व्यक्तियों को नियुक्त किया जायेगा। जहां तक प्रबंध निदेशकों का संबंध है इस संबंध में स्टेट बैंक को बाद में निर्णय लेना होगा। हम यह सुनिश्चित करेंगे कि पारिश्रमिक, जिसका माननीय सदस्य ने उल्लेख किया है, बहुत अधिक न हो। जहां तक चेयरमैन की बात है, जो नाम मेरे मस्तिष्क में है उसे अभी से बताना ठीक नहीं होगा

मान लो, मैं व्यक्ति का नाम बता दूं, और आप दिये जाने वाले पारिश्रमिक का अनुमान लगा लें और मान लो उस व्यक्ति ने देशभक्ति की कमी के बारे में खेदजनक

टिप्पणियां हों, तब मैं समझता हूं कि हम नए संस्थान के लिए किसी योग्य व्यक्ति को प्रधान बनने का अवसर खो देंगे। इस तरह के मामले में, माननीय सदस्यों को कुछ सीमा तक सरकार पर विश्वास रखना होगा। मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि इस समय जो पारिश्रमिक दिया जाता है, हमारी राय में वह बहुत अधिक है। इसका कारण यह है कि कुछ अन्य मामलों में पेंशन और अन्य मामलों में हमने सुझाव दिया है कि किसी एक निश्चित तिथि के बाद उसे कम ज्यादा करने का हमें अधिकार होगा। लेकिन जब हम एक मापदंड निश्चित करते हैं तो हमें दो बातों पर विचार करना होगा। पहली, हम किसी व्यक्ति को लेना चाहते हैं। हो सकता है कि यह किसी सुपात्र को उचित न लगे। किसी व्यक्ति विशेष के अन्य निजी आय के साधन हो सकते हैं, जबकि अन्य के, हो सकता है नहीं हो। इस प्रकार हमारे हाथ बांधना और यह कहना उचित नहीं होगा कि किसी व्यक्ति के निजी आय के साधन हैं इसलिए आप उन्हें 1500 रु० दीजिए। मेरी राय में इस प्रकार की किफायत गलत होगी।

मैं समझता हूं कि सरकार को थोड़ी स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। हमारे निर्णय के औचित्य की समीक्षा होगी। हम इसकी घोषणा विधिवत करेंगे। यह गुप्त वेतन नहीं होगा। हमारे निर्णय का औचित्य आंका जाएगा। आप विश्वास रखकर या अन्य जैसा चाहें परख कर देख सकते हैं। मुझे विश्वास है कि आप हमारे अंतिम चयन से संतुष्ट होंगे।

रिजर्व बैंक के गवर्नर के रूप में बैंक की पहली असफलता मुझे बंगाल में मिली जहां पर हमारे पास बहुत सी भूमि कम्पनियां थी। मुख्यतया इन कम्पनियों ने चाय बागानों और विभिन्न अन्य भूमि से संबंधित सम्पत्तियों पर धन दिया। उन्होंने ऐसा किया क्योंकि उनका कारोबार प्रायः यहीं तक सीमित था जिससे उन्हें नुकसान उठाना पड़ा। मुझे मालूम नहीं है कि उन्हें कुल कितना नुकसान हुआ लेकिन मेरे विचार से बंगाल में भूमि की प्रतिभूति पर अत्यधिक ऋण देने के परिणामस्वरूप जमाकर्ताओं की संभवतया लगभग 50 करोड़ रुपये की राशि संकट में पड़ गई थी। अब मैं यह नहीं कहता कि भूमि की प्रतिभूति पर ऋण नहीं दिया जाये। वस्तुतः यह सहकारी भूमि बंधक कारोबार का प्रयोजन है और अन्य संयुक्त स्टाक कारोबार हो सकता है। यदि वे दीर्घकालिक राशि एकत्र करते हैं तो उनका इस प्रकार की प्रतिभूति पर ऋण देना स्वागत योग्य है। प्रतिभूति के रूप में भूमि में कोई विशेष आकर्षण नहीं है। इसका भी मूल्य में ह्रास हो सकता है। 1930-31 के दौरान जो सहकारी आन्दोलन से सम्बद्ध थे उन्हें प्रतिभूति के रूप में भूमि के मामले में क्या हो सकता है इसका अत्यन्त कटु अनुभव हुआ। मैं मध्य प्रदेश में बेरार में एक सेन्ट्रल बैंक को जानता हूं जो असफल हुआ। किसी समय इसने प्रतिभूति के रूप में लगभग 90,000 एकड़ भूमि ली थी। अब माननीय सदस्य ने कहा कि भूमि अत्यन्त अच्छी प्रतिभूति है और फिर भी वे 90,000 एकड़ भूमि में से एक एकड़ भूमि पर भी खेती नहीं कर सके।

भूमि सभी जगह छोटे हिस्सों में फैली हुई थी। यह एक विशेष जिले में थी। जब उन्होंने इसकी खेती करने का प्रयास किया अथवा इसे पट्टे पर देने का प्रयास किया तो इसके आसपास के ऋणदाताओं ने अत्यन्त सावधानी बरती कि सहकारी बैंक इस भूमि की खेती न कर सकें। मेरे विचार से हमें गैर सरकारी धनराशि जो इस प्रकार के कार्य में शेयर के रूप में स्टेट बैंक में होगी, के अलावा सरकारी धनराशि को बर्बाद करने का कोई अधिकार नहीं है। और इस कारण से श्री गाडगिल के नेतृत्व में सुविख्यात व्यक्तियों ने विशेषज्ञ समिति में काम किया—श्री गाडगिल हमारे एक अग्रणी अर्थशास्त्री हैं जो कृषि वित्त के बारे में कुछ जानते हैं मेरे विचार से निश्चित रूप से वह अन्य सदस्यों, सभी के प्रति सम्मान करते हुए, की तुलना में कृषि वित्त के बारे में अधिक जानते हैं। वह विशेषज्ञ समिति के एक प्रवर सदस्य थे। प्रशासनिक अनुभव वाले अन्य अधिकारी भी थे और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इम्पीरियल बैंक के इस विस्तार में स्वयं को कुछ मामलों तक ही सीमित रखें जिनका मेरे सहयोगी ने उल्लेख किया था। तथापि उन्होंने जो कुछ कहा उसमें थोड़ी सी त्रुटि थी। मेरे माननीय सहयोगी ने कहा कि रिजर्व बैंक केवल दीर्घकालीन कारोबार करता है। ऐसा नहीं है। सहकारी संस्थाओं को ऋण दी जाने वाली धनराशि में अल्पकालीन कार्यों—उत्पादन कार्यों के लिए भी उन्होंने वित्त पोषण किया है और इस बारे में सदन को प्रायः आंकड़े दिए गए हैं। मैंने इस विशेष पद्धति को शुरू किया जिसके द्वारा मेरे विचार से हमने पहले वर्ष में 50 लाख रुपये के ऋण दिए और इस समय यह ऋण 15 करोड़ रुपए के हैं। ऐसा कोई कारण नहीं है कि इस राशि में क्यों न वृद्धि की जाए।

इसके अलावा अतिरिक्त जिला बैंक अथवा शीर्ष बैंक के हस्ताक्षर होते हैं। इस दोहरी प्रतिभूति पर ही रिजर्व बैंक 1.5 प्रतिशत पर धनराशि देते हैं। जैसा कि माननीय सदस्य जानते हैं हम सुनिश्चित करते हैं कि यह धनराशि अत्यन्त कम ब्याज दर पर कृषक को मिले। इस मामले में कुछ कठिनाइयां हैं लेकिन हम उनका सामना करने का प्रयास कर रहे हैं। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि कृषि उत्पादन के मुख्य कार्य की रिजर्व बैंक द्वारा सहायता नहीं की गई है। लेकिन इसकी एक अलग तरीके से सहायता की गई है। यदि ऐसा है, जब हम इस विशेष प्रकार के कारोबार पर कोई प्रतिबंध नहीं लगा रहे हैं तो मेरे विचार से जहां तक इस वाणिज्यिक बैंक का संबंध है हमें कोई ऐसा प्रावधान नहीं करना चाहिए। यह एक संयुक्त संस्था है, आंशिक रूप से वाणिज्यिक और आंशिक रूप से कृषि संबंधित है। ऐसा नहीं है कि कृषि ऋण के लिए ही एक पृथक संस्था शुरु की गई हो और ऐसी स्थिति में हमें यह सुनिश्चित करने के लिए सावधानी बरतनी पड़ेगी कि जिस धनराशि से वे कार्य करते हैं उसे अलग तरीके से प्राप्त किया जाए। लेकिन अभी तक ये अल्पकालीन जमा राशियां हैं और इसलिए हमें सावधानी बरतनी है कि वे

कारोबार की बात को जो सामान्यतः वाणिज्यिक बैंकों द्वारा किया जाता है। यही कारण है जिससे हमने लोक हित के अध्यधीन कारोबार के सिद्धांतों के बारे में उस खण्ड को पहले ही पारित कर दिया है। लोक हित के मामले में इस सिद्धांत की कुछ छूट संबद्ध हो सकती है। लेकिन मुख्य सिद्धांत वही रहेगा। अतः मैं माननीय सदस्यों को सुझाव देता हूं कि उन्हें इन दोनों मामलों को मिलाना नहीं चाहिए और इस विशेष बैंक को शुरु करने में हमारी मंशा का अधिक प्राक्कलन नहीं करना चाहिए। मुझे विश्वास है कि यदि हम ग्रामीण क्षेत्रों में इन शाखाओं का विस्तार करें तो हमें विपणन जैसे विभिन्न लाभ होंगे और गोदामों के होने पर हम बंधक रखे गए ऋणों के विरुद्ध फसलें भी ले सकेंगे। और यह रिजर्व बैंक* द्वारा चलाई जा रही अन्य योजना के लिए एक अच्छा अनुपूरक रहेगा।

---

*विधेयक, संशोधित रूप में पारित किया गया।

भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) विधेयक*

मैं प्रस्ताव करता हूं कि** भारतीय रिजर्व बैंक आधनियम 1934 में पुनः संशोधन करने वाला विधेयक, दिसम्बर 1950 तक सूचना देने के निर्देश के साथ एक प्रवर समिति को सौंप दिया जाये जिसमें माननीय डा० बी० आर० अम्बेडकर, श्री एम० अनन्तशयनम् अयंगर, श्री टी० टी० कृणमाचारी, पंडित हृदयनाथ कुंजरू, श्री बी० एल० सोढ़ी, श्री टी० ए० रामलिंगम चेट्टियार, श्री प्रभुदयाल हिमलसिंग्का, श्रीमती जी० दुर्गाबाई, श्री अरुण चन्द्र गुहा, श्री बी० दास***, श्री श्यामनन्दन सहाय, श्री रामनाथ गोयनका, श्री गोकुल लाल असवा, श्री बी० एस० सर्वते, श्री उपेन्द्रनाथ बर्मन; श्री बलिराम भगत, श्रीयुत् रोहिणी कुमार चौधरी, चौ० रणबीर सिंह, श्री महावीर त्यागी, डा० एम० बी० गंगाधर सिवा, प्रो० एन० जी० रंगा और प्रस्तावक शामिल हों।

भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम 1934, 15 से भी अधिक वर्षों तक प्रभावी रहा है। इस अवधि के दौरान विशेष आकस्मिक उद्देश्यों, विशेष रूप से बैंकिंग अधिनियम और बैंकों के राष्ट्रीयकरण जैसे कई अवसरों पर इसे संशोधित किया गया। इस बीच संचालन के अनुभव से इसमें समय-समय पर संशोधन की आवश्यकता महसूस हुई। रिजर्व बैंक की यह नीति रही है कि एक-एक कर संशोधनों को बढ़ावा देना अपेक्षित समझा जा रहा है। साथ ही संविधान में परिवर्तन हो गए हैं उनके अनुसार भी रिजर्व बैंक अधिनियम में कुछ विशेष स्थानों पर संशोधन करना आवश्यक हो गया है। इसलिए वर्तमान उपाय के रूप में संशोधन अपेक्षित है जो दो वर्गों में हैं।

मैं पहले संवैधानिक परिवर्तनों के कारण संशोधन की आवश्यकता की बात करूंगा।

---

*लो०स० वाद वि० 21 नवम्बर, 1950, का० 350-358;
22 नवम्बर, 1950, का० 432-446।

**प्रवर समिति को सौंपने के लिए प्रस्ताव।

***बाद में श्री बी० दास का नामांकन वापस ले लिया गया था।

भाग ख के राज्यों की वित्तीय स्थिति को केन्द्र के साथ सम्मिलित कर देने से अब उनमें संशोधन करना अपेक्षित हो गया है और इसमें कोई संदेह नहीं रह गया है कि भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के प्रावधान उन पर भी लागू किये जाने चाहिये जिससे कि कालान्तर में उनके लिए रिजर्व बैंक की स्थिति भाग क के राज्यों जैसी हो जायेगी। तदनुसार इस विधेयक का उद्देश्य जम्मू और कश्मीर राज्य को छोड़कर सभी राज्यों पर भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के प्रावधानों को लागू करना है। इन राज्यों का ऐसा ढांचा नहीं है, न ही उनका ऐसा स्तर है। अतः यह आवश्यक है कि परिस्थितियों के अनुसार भारतीय रिजर्व बैंक के उपबन्धों का उदारता से उपयोग करने की अनुमति देने के लिए कुछ उपबन्ध होने चाहिये। यह धारा 21 की व्याख्या करके सुनिश्चित किया गया है और यह विधेयक के खंड 9 में निहित होगा, अर्थात् अधिनियम की धारा 20 और 21 के अनिवार्य उपबन्धों को भाग 'ख' राज्यों में तत्काल प्रभाव से लागू होने से रोके रखना। इसके साथ ही, केन्द्रीय सरकार के लिए जब कभी भी भारत के राजपत्र में अधिसूचना द्वारा संभव हो, कुछ अथवा सभी राज्यों में अपने प्राधिकार का उपयोग करने की शक्ति ली गयी है।

जब से यह विधेयक तैयार किया गया था, रिजर्व बैंक ने महसूस किया कि इस धारा में उल्लिखित सभी कृत्यों को भाग 'ख' के किसी भी राज्य में आरम्भ करना उनके लिए संभव नहीं होगा। अतः हमारा विचार है कि रिजर्व बैंक को किसी राज्य में केवल ऐसे कार्यों को आरम्भ करने की अनुमति देने का उपबन्ध होना चाहिये, जिन्हें वे कुछ समय के लिए आरम्भ करने का विचार रखते हों अथवा वांछनीय समझते हों अतः मैं इस उद्देश्य के लिए प्रचार समिति स्तर पर उपयुक्त संशोधन करने का प्रस्ताव करता हूं। इस योजना का लाभ यह है कि भाग 'ख' राज्यों में राजकोष व्यवस्था के संबंध में ग्रामीण बैंकिंग जांच समिति को कुछ सिफारिशों को प्रभावी बनाने की गुंजाइश है। इस समय ये सिफारिशें विचाराधीन हैं।

अब मैं इसके और अन्य महत्वपूर्ण संशोधनों के बारे में बताता हूं। इन्हें रिजर्व बैंक ने, इनके प्रवर्तन से प्राप्त अनुभव द्वारा आवश्यक रूप में दर्शाया है। इस अधिनियम की धारा 17 (2) (ख) में समय सीमा बढ़ाने संबंधी सुविधा इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। मैं विधेयक के खंड 6 के उपखंड (2) का उल्लेख करता हूं। इसमें इस बात की जोरदार मांग की गयी है कि इस अवधि को बढ़ाया जाये क्योंकि कृषि कार्यों के लिए

उत्पादक वित्त हेतु इस उपखंड 2(ख) में निर्धारित अवधि पर्याप्त नहीं है। यह सहकारी योजना समिति का निष्कर्ष है और रिजर्व बैंक जिसे इस अवधि को बढ़ाये जाने की आशा है, भी स्वतन्त्रता पूर्वक इसी निष्कर्ष पर पहुंचा है। इससे सहकारी आन्दोलन को रिजर्व बैंक द्वारा उपलब्ध करायी जाने वाली वित्तीय संसाधनों का पूरा लाभ प्राप्त करने में सफलता मिलेगी।

अगला महत्वपूर्ण संशोधन खंड 6 के उप खंड (4) में उल्लिखित है। इसका वास्तव में स्पष्टीकरण करना है। मैं मानता हूं कि रिजर्व बैंक अधिनियम की किसी भी धारा में इतनी गलतफहमी नहीं है, जितनी इस धारा विशेष में। यद्यपि कानूनी रूप से व्याख्या करने में कोई इसका अनुमान केवल इस प्रकार लगा सकता है, अर्थात् 'माल पर हक' माल के स्वामित्व संबंधी दस्तावेजों को स्वयं अंतरित करने, सौंपने अथवा गिरवी रखने की आवश्यकता है। इस धारा के मुख्य शब्द "माल के स्वामित्व संबंधी दस्तावेज" हैं। यदि इनका अंतरण नहीं हुआ है, तब यह अनुसूचित बैंक, जो रिजर्व बैंक से दस्तावेजों के सृजन की सुविधा प्राप्त करता है, के लिए सम्भव नहीं क्योंकि यह बैंक भारतीय माल की बिक्री अधिनियम की धारा एक में परिभाषित ग्राहक का वाणिज्यिक बैंक नहीं है। इसका अर्थ यह है कि यदि यह इस दस्तावेज की सुविधा हेतु रिजर्व बैंक को अग्रसारित करता है, तो अनुसूचित बैंक को अपने ग्राहक को माल के स्वामित्व संबंधी दस्तावेजों पर ऋण देना चाहिये न कि खुद माल पर "माल के स्वामित्व संबंधी दस्तावेज" शब्द भारतीय माल की बिक्री अधिनियम की धारा 2 में परिभाषित है और इनमें वहन-पत्र, डाक-वारंट, भांडागारिक प्रमाण पत्र, घाटवाल प्रमाण पत्र, रेलवे प्राप्तियां, माल के वितरण के लिए वारंट अथवा क्रयादेश और स्वामित्व का प्रमाण अथवा माल पर नियन्त्रण अथवा पृष्ठांकन द्वारा अथवा अन्तरण हेतु दस्तावेज धारक को वितरण करके अधिकृत रूप में अथवा अधिकृत करने के अभिप्राय के रूप में अथवा इस तरह माल की प्राप्ति के रूप में कारोबार के सामान्य कार्यों में उपयोग किये गये दस्तावेज शामिल हैं। इसका सार यह है कि इस उपधारा के अन्तर्गत केवल ऐसे दस्तावेज, जो पूर्ण रूप से प्रक्राम्य लिखत हैं, साम्पार्श्विकता के पात्र हैं। ऐसा है कि देश में अनेक भांडागार लाइसेंस प्राप्त नहीं हैं और इसीलिए इस खंड को लागू करने की गुंजाइश नहीं है। यह एक अलग समस्या है। जिस पर ध्यान देना होगा और जिस पर रिजर्व बैंक ने लाइसेंस प्राप्त भाण्डागारी की स्थापना के लिए कानून बनाने की आवश्यकता के बारे में राज्यों को सूचित करके ध्यान देने का प्रयास किया है। चाहे जो कुछ भी हो, इस धारा विशेष का क्षेत्र कितना ही प्रतिबन्धित किया जाये, वर्तमान संशोधन का प्रयोजन केवल इसका अर्थ स्पष्ट करना है।

इसमें इस प्रकार शब्द आये हैं,* "अंतरित माल के स्वामित्व संबंधी दस्तावेज सहित" शब्द 'जो' का अर्थ 'स्वामित्व के कौन से दस्तावेज' हो सकता है, यदि आप अनुमान लगाते हैं कि 'कौन सा माल', तब यह धारा अप्रयोज्य हो जाती है। बेशक जिस रूप में यह है, यह किसी भी कानूनी व्याख्याता के लिए स्पष्ट है, किन्तु अपने कार्य-कलापों में इस धारा से संबंध रखने वाले लोगों की ओर से गलतफहमी को दूर करने के लिए इसमें संशोधन करके इसे स्पष्ट करना वांछनीय समझा गया है।

अब मैं इस धारा की एक अन्य उपधारा के बारे में बताता हूं तथा इसका उद्देश्य उन सभी विप्रेषणों को शामिल करना है, जिनका लेन-देन रिजर्व बैंक करता है। यह अधिनियम जिस रूप में है, उसमें रिजर्व बैंक को डिमान्ड ड्राफ्ट जारी करने अथवा तार-अन्तरणों की खरीद के अलावा विप्रेषण जारी करने का प्रावधान नहीं है। व्यवहार में, रिजर्व बैंक से सभी किस्म के तार द्वारा अन्तरणों की खरीद में विप्रेषण जारी करने को कहा गया है और कानून को वर्तमान स्थिति के अनुरूप बनाने का प्रस्ताव है। यह इस विधेयक के खंड 6 के उपखंड (6) में है।

व्यवहार में पाया गया है कि सरकारी प्रतिभूतियां, जो कानूनी रूप से बैंक द्वारा ली जा सकती हैं, उसकी सीमा तथा परिपक्वता के संबंध में अनुबन्ध है, और जिसका इस अधिनियम की धारा 17 (8) में सांविधिक रूप से उल्लेख किया गया है, अनुचित रूप से प्रतिबन्धात्मक है, एक बार यह सम्भव हुआ था कि उपबन्धों का कुछ औचित्य है। किन्तु यह स्पष्ट है कि उन्हें बनाये रखने का कोई कारण नहीं है, विशेष रूप से, जब से बैंकों को सार्वजनिक स्वामित्व के लिए अन्तरित करने की दृष्टि से उपायों को अधिनियमित किया गया है। इन अनुबन्धों से बाजार के क्रिया-कलापों में प्रवेश हेतु सेन्ट्रल बैंक के स्वविवेक पर प्रतिबन्ध लगता है और उनकी वास्तव में अन्य राष्ट्रमंडल के सेन्ट्रल बैंकों से संबंधित विधान में कोई समानता नहीं है, और यही रिजर्व बैंक की सलाह है कि ये प्रतिबन्धात्मक उपबन्ध समाप्त पर दिए जाने चाहियें।

इस खंड में अगला संशोधन उन प्रबन्धों से संबंधित है, जो रिजर्व बैंक अन्य देशों की सरकारों की ओर से कर सकता है। बैंक से इन सरकारों का लेखा रखने के लिए कहा गया है, तथा इस समय ये अधिनियम के अंतर्गत नहीं लाए गए हैं अतः कार्यचालन व्यवस्था के लिए अधिनियम में संशोधन का अवसर ले रहे हैं। यह इस विधेयक के खंड 6 के उपखंड 7 (ख) में है।

अन्त में, मैं अन्य उपखण्डों के उपबन्ध का उल्लेख करना चाहता हूं, जिससे रिजर्व

---

*धारा 17(1) (घ) में।

बैंक को अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से शेयर खरीदने की अनुमति मिलती है। इसे कुछ समय पूर्व एक संशोधन द्वारा शामिल किया गया था। अब हम पाते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय बैंक द्वारा जारी प्रतिभूतियों को रिजर्व बैंक द्वारा खरीदने का प्रावधान नहीं है और इस त्रुटि को दूर करने का प्रस्ताव है। यह खंड 6 के उपखंड (8) में है, जहां पर हम कहते हैं कि शेयरों में शब्दों के स्थान पर "शेयरों और प्रतिभूतियों" शब्द शामिल किए जाएंगे।

इस विधेयक का अगला महत्वपूर्ण खंड 10 है। अब भारतीय रिजर्व बैंक की धारा 26 के वर्तमान उपबन्धों के अन्तर्गत बैंक के सभी कार्यालयों और एजेंसियों में विधिसम्मत मुद्रा को समाप्त घोषित किये जाने के बाद भुगतान के लिए करेंसी नोट स्वीकार किया जाता है और ये असीमित अवधि के लिए स्वीकार किये जाते हैं। अब प्रशासनिक दृष्टिकोण से यह आवश्यक है कि एजेंसियों में नोट स्वीकार करने की आवश्यकता और बैंक के कार्यालयों में एक विशेष अवधि के बाद इन्हें स्वीकार करने का प्रबन्ध किये जाने तक इस अवधि पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाये। इसलिए एक ऐसी तारीख अधिसूचित करने, जब तक करेंसी नोटों, जिनकी वैधता समाप्त की जानी हो, का बैंक की एजेंसियों में भुगतान करने के लिए केन्द्रीय सरकार को शक्ति प्रदान करने हेतु इस अधिनियम में संशोधन करने का प्रस्ताव है। इनका भुगतान इम्पीरियल बैंक के कार्यालयों में किया जायेगा। जब कभी किसी विशेष श्रेणी के नोटों की वैधता समाप्त की जाती है, तभी ऐसी अधिसूचना जारी की जाती है।

अगला महत्वपूर्ण संशोधन खंड 13 में निहित है और यह अधिनियम की धारा 42 (2) के अन्तर्गत अनुसूचित बैंकों द्वारा रिजर्व बैंक को भेजी गई विवरणी से सम्बन्धित है। अनुसूचित बैंकों की मांग पर और अल्प सूचना पर अपने निवेशों और चालू खाते तथा धन में अन्य बैंकों के साथ अपने सन्तुलनों को प्रदर्शित करने के लिए वर्तमान आकार की विवरणी की आवश्यकता नहीं है और इस समय उनके द्वारा खरीदे गये मांग पत्रों की विवरणी प्रस्तुत करने की भी आवश्यकता नहीं है, यद्यपि ऐसे पत्र पर बट्टे की धनराशि प्रदर्शित करने की आवश्यकता होगी। हां वाणिज्यिक बैंकों के नियन्त्रण के संबंध में काफी अनुभव होने के बाद। अतः प्रस्ताव यह है कि अधिनियम में संशोधन किया जाए और बैंकों से अपनी साप्ताहिक विवरणियों में उपरोक्त उल्लेखित जानकारी देने के बारे में कहा जाए। अतः अधिनियम की धारा 42 में मूल धारा के स्थान पर ही यह धारा आ जाएगी।

अधिनियम एक अन्य भाग, जिसकी ओर मैं सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं, वह उपधारा (7) है, जिसे धारा 42 में जोड़ने का प्रस्ताव है, अर्थात खण्ड 13 के अन्त में हाल के महीनों में भारतीय रिजर्व बैंक और सरकार को यह जानकारी दी गई कि

पाकिस्तान से भारत में स्थानांतरित हुए कुछ अनुसूचित बैंक न्यूनतम जमा, रिटर्नों का दिया जाना आदि से संबंधित सावधिक आवश्यकताओं का सख्ती से पालन नहीं कर रहे हैं। ये सभी कठिनाइयां वास्तविक हैं और वास्तव में भारतीय रिजर्व बैंक और सरकार उन्हें निर्देशित करती रहती हैं, लेकिन अभी तक विशेष विधान में संशोधन किए बिना इन बैंकों को इन कार्यकारी धाराओं से छूट दिया जाना सम्भव नहीं है। उपरोक्त स्थिति से निपटने के लिए अब यह प्रस्ताव है कि रिजर्व बैंक को उपयुक्त मामलों में जब कभी आवश्यक हो, इन उपबंधों में ये छूटें दिए जाने के लिए प्राधिकृत किया गया है। यह और बैंकिंग कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत बैंक द्वारा अधिक महत्वपूर्ण शक्तियों और अन्य के संगत होगा।

इसी कारण से, हमने यह उपयुक्त पाया है कि अनुसूचित बैंकों को निर्देशित किया जाए कि अपनी निर्धारित रिटर्नों को रिजर्व बैंक में प्रस्तुत करें, क्योंकि अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार उन्हें केन्द्रीय सरकार को अलग से रिटर्न प्रस्तुत करनी होती है। अब इन प्रावधानों को समाप्त किया जा रहा है।

मैंने विधेयक में शामिल किए गए अधिक महत्वपूर्ण संशोधनों का उल्लेख किया है और मैंने प्रवर समिति स्तर पर लाए जाने वाले प्रस्तावित एक संशोधन का भी उल्लेख किया है। एक दो अन्य संशोधनों को भी शामिल किए जाने का प्रस्ताव है। गवर्नर की अनुपस्थिति में उप-गवर्नर द्वारा शक्तियों के प्रयोग के बारे में, एक संशोधन है। बैंक के राष्ट्रीयकरण से पूर्व, सामान्य विनियमन द्वारा इस ओर ध्यान दिया जाता था और एक प्रावधान के अन्तर्गत, गवर्नर की अनुपस्थिति में उनके द्वारा विधिवत नामित उप-गवर्नर केन्द्रीय बोर्ड की समिति द्वारा किए जाने वाले वे सभी कार्य, जो बैंक द्वारा किए जाते हैं, कार्य सम्पन्न करेगा। वर्तमान अधिनियम में, इस समय ये शक्तियां नहीं थीं, जबकि गवर्नर द्वारा काफी समय के लिए सरकारी कार्य पर भारत से बाहर रहने के समय उप-गवर्नर द्वारा इन शक्तियों का प्रयोग किए जाने की आवश्यकता थी। अतः हमने आवश्यक समझा कि, अधिनियम में इस प्रकार का प्रावधान किया जाए कि गवर्नर अपनी शक्तियों को उप-गवर्नर को प्रत्यायोजित कर सकें। मैं समझता हूं कि बैंकों के राष्ट्रीयकरण के उपायों पर विचार करते समय हमारे से यह भूल रह गई थी।

एक अन्य संशोधन, जो हम करना चाहते हैं, वह धारा 42(2) के अन्तर्गत है, जिसे प्रवर समिति को सौंपने का प्रस्ताव है। विधेयक का प्रारूप बनाए जाने के समय से ही अभ्यावेदन प्राप्त होते रहे हैं कि रिटर्न दाखिल कराने के लिए बैंकों द्वारा अपनी शाखाओं से तार द्वारा आंकड़े एकत्र करने की निर्धारित दो दिन की अवधि में अनावश्यक खर्च होता है। अतः यह प्रस्ताव है कि यह अवधि पांच दिन की रखी जाए। जिन बैंकों की

शाखाएं, भोगौलिक स्थिति के कारण इस अवधि में जानकारी एकत्र नहीं कर सकती, वहां विशेष मामलों में यह अवधि दस दिन की रखी जाए।

श्रीमान, इससे अधिकांश संशोधनों का उत्तर दे दिया गया है। मुझे खेद है कि सभा में व्यक्त की गई भावनाओं से पूर्व ही यह विधेयक मुद्रित हो गया था, अतः मैंने सावधानी पूर्वक कुछ उपखण्डों को विस्तार से स्पष्ट कर दिया है। भविष्य में ऐसे सभी विधेयकों में उपखंडों के सामान्य नोट्स को भी शामिल किया जाएगा।

*चर्चा के दौरान रिजर्व बैंक की आलोचना और मेरी प्रशंसा की गई है और मेरी राय में ये दोनों बातें अनुचित और अवांछित हैं। जहां तक रिजर्व बैंक के प्रशासन का सम्बन्ध है, मैं सभा का ध्यान उस वक्तव्य की ओर दिलाना चाहता हूं जो मैंने पूना में गोखले स्मारक संस्थान के समक्ष दिया था। यह वक्तव्य उस संस्थान से प्राप्त किया जा सकता है। इसमें रिजर्व बैंक द्वारा गत 13 वर्षों की अवधि के दौरान देश के लिए किए गए कार्य का विस्तृत विवरण है। मैं दावा करता हूं कि बैंक ने देश के लिए अच्छा कार्य किया है और यह एक ऐसी संस्था है जिस पर गर्व किया जाना चाहिए, यद्यपि यह संस्था सदैव सहायक रही है, फिर भी रिजर्व बैंक जिस प्रकार अपने कार्य का निष्पादन कर रहा है, इस संबंध में उसे प्रलक्षित आलोचना का शिकार होना पड़ता है।

मेरा विचार है कि मैं जो योजना अपनाना चाहता हूं वह विधेयक के उन खंडों विशेष-कर विचार करने के लिए है जिनके बारे में टिप्पणियां की गई थीं। मैं खंड 17(2)(ख) में प्रस्तावित संशोधन अर्थात् 9 महीने की अवधि को बढ़ा कर 12 महीने करने के प्रश्न पर आता हूं। मैं समझता हूं, यदि हम उक्त खंड को पढ़ें तो, यह उपयोगी रहेगा।

बैंक को विभिन्न प्रकार के जिन कार्यों के निष्पादन का कार्य सौंपा गया है वे इस प्रकार हैं:

> "विनिमय पत्रों और वचन पत्रों का क्रय-विक्रय और उनका पुनः मिती काटा लेकर भुगतान करना; उन्हें जारी करना (और भारत में देय) और उन पर दो अथवा या इससे अधिक मान्यताप्राप्त हस्ताक्षर हों, उनमें से एक हस्ताक्षर किसी अनुसूचित बैंक (अथवा किसी राजकीय सहकारी बैंक) का होगा और वह मौसमी कृषि कार्यों अथवा फसलों का विपणन किए जाने हेतु वित्तीय सहायता के प्रयोजन से जारी किया जाएगा और इस क्रय अथवा पुनः मिती काटा लेकर

---

*20 नवम्बर, 1950 को भाषण जारी रखते हुए।

भुगतान करने की तारीख से अनुग्रह दिवस को छोड़कर, नौ महीने की अवधि के भीतर परिपक्व होगा।"

अतः, नौ महीने की यह अवधि, अब जिसे बढ़ाकर बारह महीने करने का विचार है, वह अवधि है जो रिजर्व बैंक द्वारा बिल के क्रय विक्रय अथवा पुनः उसका मिती काटा लेकर भुगतान किए जाने के बाद बीत जाती है। यह उस अवधि को अनिवार्यतः सीमित नहीं करता है जिसके लिए मूल बैंक अर्थात् वाणिज्यिक बैंक ने सुविधा दी थी। प्रो० रंगा ने उस संशोधन का हवाला देते हुए बिल्कुल ठीक कहा है, जिसका श्री टी०एन० रामकृष्ण रेड्डी द्वारा वर्ष 1934 में प्रस्ताव किया गया था और उस समय श्री रेड्डी द्वारा उठाया गया मुद्दा गन्ने जैसी फसल के लिए था कि नौ महीने की अपेक्षा बारह महीने की अवधि अधिक उपयुक्त है। इसके बाद, उन्होंने कहा कि इस फसल की खेती में दस महीने लगते हैं और इसके बाद उसकी पिराई और शक्कर बनाने में दो महीने का समय और लगता है और इसीलिए उसका विचार है कि गन्ने की फसल के लिए विशेषरूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि गन्ना उद्योग को संरक्षण दिया जा रहा है, बारह महीने की अवधि के लिए वित्तीय सहायता दिए जाने की आवश्यकता है। क्योंकि उस समय पर सर जार्ज श्युस्टर ने यह उत्तर दिया था कि वाणिज्यिक बैंक जिस अवधि के लिए अग्रिम सहायता देते हैं वह नौ अथवा बारह महीने होना अनिवार्य नहीं है और वह उत्तर अभी तक महत्व रखता है। हो सकता है कि ऋणदाता बैंक तीन अथवा चार महीने के बाद इसकी स्वयं प्रतिभूति करने की आवश्यकता महसूस करे। ऐसे मामले में, इस समय जो बारह महीने की अवधि है वह 16 महीने हो जाएगी। जहां तक गन्ने की फसल का संबंध है, मेरा विश्वास है कि मुख्य उत्पादक क्षेत्र में वित्तीय सहायता के अत्यन्त व्यापक प्रबन्ध हैं अर्थात् उत्तर प्रदेश में और दक्षिण में अधिकांश चीनी मिलों के पास गन्ने के अपने निजी खेत होते हैं और इसलिए वित्तीय सहायता की समस्या एक जैसी नहीं है। अतः हम यह कह सकते हैं कि गन्ने के संबंध में परिस्थितियां भी बदल गई हैं; और किसी भी मामले में, जैसा कि मैंने ध्यान दिलाया है, यह आवश्यक प्रतीत नहीं होता कि यह अवधि बारह महीने से बढ़ाकर आगे और अधिक लम्बी की जाए। निस्संदेह इसका यह मतलब नहीं है कि श्री रामलिंगम चेट्टियार प्रवर समिति के समक्ष जो कोई संशोधन रखेंगे उस पर विचार नहीं किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त, महोदय* आप खंड 17(8) के दूसरे परन्तुक के संबंध में कुछ आश्वासन चाहते थे जिसे अब हटाने का विचार किया गया है। हो सकता है कि सरकार को रिजर्व बैंक द्वारा अतिरिक्त वित्तीय सहायता दिए जाने पर किसी प्रकार का कोई अंकुश

---

*प्रो० एन० जी० रंगा

रखने के लिए आरंभ में कुछ प्रतिबन्ध लगाने का विचार किया गया हो, किन्तु उस समय बिल्कुल भिन्न स्थिति थी। पहली बात तो यह है कि सरकार हमारी अपनी राष्ट्रीय सरकार नहीं थी और दूसरी बात यह है कि बैंक एक अलग स्वायत्त निकाय था। अब वह स्थिति बदल गई हैं और दोनों अर्थात् सरकार और बैंक को इस शक्ति का आवश्यकता से अधिक प्रयोग किए जाने से उत्पन्न उन आर्थिक परिणामों की भलीभांति जानकारी है जो आप सोच रहे हैं। जहां तक व्यवस्था का संबंध है, इसमें भी परिवर्तन आया है, अर्थात् एक ओर पौण्ड संतुलन को बनाए रखना है और दूसरी ओर सरकार की नकद राशि की मात्रा को बढ़ाना है। यद्यपि ये कारण विद्यमान है, फिर भी यदि सरकार विद्यमान धारा 17(8) का अतिक्रमण किए बिना ऐसा करने के लिए तैयार होती है और बैंक मुद्रास्फीति की वित्तीय व्यवस्था लागू करने के लिए सहमत होता, तो यह संभव हो सकता था। इसका कारण यह है कि जब भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम पारित किया गया था तो उस समय कुल परिसंपत्तियों की तुलना में स्टर्लिंग प्रतिभूतियों के जितने अनुपात की सम्भावना का अनुमान लगाया गया था, उससे बहुत अधिक अनुपात में यह इस समय विद्यमान है। मैं समझता हूं कि इस प्रकार की सीमा धारा-33 में उल्लिखित अन्य प्रकार की सीमा के साथ प्रभावी होगी। कहने का अभिप्राय यह है कि निगम विभाग की परिसंपत्तियों का चालीस प्रतिशत स्वर्ण अथवा स्टर्लिंग प्रतिभूतियों में रखा जाना चाहिए। इसलिए, विद्यमान परिस्थितियों में इस उपबंध के बिना विचार किए ही छोड़ देना पड़ेगा और यदि इस मुद्रास्फीति वाली वित्तीय व्यवस्था के खतरे को, सरकार अथवा रिजर्व बैंक नहीं पहचानेगा, तो किसी अन्य सुधारात्मक उपाय का पता अवश्य लगाया जाना चाहिए। मैं समझता हूं कि यह सदन मुद्रास्फीति वाली वित्तीय व्यवस्था के खतरों को भलीभांति जानता है। दूसरी ओर, यदि इस सदन का कोई अन्य दृष्टिकोण होता, तो मुझे कोई सन्देह नहीं है कि उन्हें सरकार और बैंक दोनों पर अपनी इच्छा मनवाने के तरीके मिल जाएंगे, चाहे आर्थिक दृष्टि से इसके कुछ भी परिणाम निकलें। इसलिए इस समय यह उपबंध एक प्रकार से एक फालतू उपबंध है और यह बैंक के लिए व्यावहारिक कठिनाइयां पैदा करता है जबकि मुद्रा-बाजार के प्रबंध में अर्थात् बैंक के खुला बाजार संचालन में इसका अत्यधिक महत्व हो गया है। बैंक मुद्रा-बाजार को विनियमित करने की दृष्टि से प्रतिभूतियों की निरंतर खरीद-बिक्री तथा अपने विनियोजन की मदों में परिवर्तन कर रहा है और बैंक के पास सदैव यह विकल्प नहीं होता है कि वह उसे प्रस्तावित प्रतिभूतियों का चयन कर सके। इसके पास प्रस्ताव आते हैं। तथा कभी-कभी सामान्य आधार पर बैंक यह निष्कर्ष निकालता है इसे बेचना अथवा खरीदना वांछनीय है। इस उपबंध के लिए जाने से इस प्रकार के कार्य में थोड़ी बाधा होगी। यह सच है कि जब उसके सामने कठिनाई उत्पन्न होती है, तो वे बैंकिंग विभाग और निर्गम विभाग के बीच अथवा बैंकिंग विभाग और

सरकारी नकदी निवेश लेखे, जो प्रतिभूतियों का एक अलग संविधान है, के बीच प्रतिभूतियों का आदान-प्रदान कर लेते हैं। अतः इस दूसरे परन्तुक के स्वरूप को कायम रखना संभव हो गया है। किन्तु जैसाकि मैंने कहा, यह एक मामूली असुविधा है। रिजर्व बैंक का विचार है, और मैं इससे सहमत हूं कि खुला-बाजार संचालन के प्रबंध में होने वाली इस छोटी-सी असुविधा को दूर करने का उपाय कर सकते हैं। इस संपूर्ण सीमा का यही महत्व है।

इसका दूसरा पहलू नकदी बाहुल्य से संबंधित है। सदन को यह पता है कि इससे रिजर्व बैंक को सम्पूर्ण बैंकिंग प्रणाली के संबंध में बहुत व्यापक शक्तियां प्रदान की हैं तथा यह अनावश्यक प्रतीत होता है कि नियंत्रक पर ही रुकावटें डाल दी जायें। यदि रिजर्व बैंक का कोई महत्व है, तो उससे आशा की जा सकती है कि वे इस पहलू पर भी ध्यान देंगे, अर्थात् यह कि इसके निवेश विभाग में समुचित रूप से नकदी बाहुल्य रहेगा। मैं नहीं समझता कि यह आवश्यक है कि इस सदन को इस बारे में बहुत अधिक चिन्ता करनी चाहिए तथा प्रतिभूति प्रावधानों को बनाए रखने पर जोर देना चाहिए।

वाद-विवाद के दौरान जिस अन्य धारा का उल्लेख किया गया और जिसे इस विधेयक में शामिल किया गया है कृषि-ऋण पर मैं बाद में विचार करूंगा। वह यह खंड है जिसमें धारा 4छ में संशोधन करने की मांग की गई है। श्री टी०टी० कृष्णमाचारी ने सोचा कि इस अधिनियम और बैंकिंग अधिनियम के बीच कुछ अतिव्याप्ति है और उन्होंने पूछा कि क्या हम कोई ऐसा व्यापक उपाय नहीं कर सकते जिससे इन सबको सम्मिलित किया जा सके। वह एक अति दीर्घकालिक योजना है। बाद में हो सकता है कि ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न हो जायें जिससे इस प्रकार की कार्यवाही आवश्यक हो। किन्तु, इस समय इस संशोधन को कार्यान्वित करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की जानी चाहिए। जहां तक तथ्यात्मक पहलू का सम्बंध है, मैं समझता हूं कि बैंकिंग अधिनियम में बैंकों से जानकारी मांगने की व्यवस्था की गई है जबकि इस धारा विशेष में एक बहुत महत्वपूर्ण विवरणी की व्यवस्था की गई है जिसका अनुसूचित बैंकों पर रिजर्व बैंक के नियंत्रण के साथ घनिष्ठ संबंध है। अतः मैं आशा करता हूं कि प्रवर समिति विधेयक के इस उपबंध विशेष से सहमत होगी।

मैं समझता हूं कि संभवतः केवल कार्मिकों से संबंधित मामले को छोड़कर मैंने इस विधेयक से सीधे उत्पन्न होने वाले अधिकांश मामलों पर उत्तर दे दिये हैं। सिद्धांतों में निहित है कि इस प्रकार की नियुक्ति में किसी प्रकार का राजनैतिक दबाव नहीं होना चाहिए। इस बारे में कोई दो राय नहीं हो सकती है। जहां तक वर्तमान प्रबंधकों का संबंध है, की गई आलोचनात्मक टिप्पणियों के बाद भी मैं जोर देकर कहूंगा कि मुझे

विश्वास है कि देश की मुद्रा-संबंधी साख एवं रिजर्व बैंक को सौंपे गये कार्य उनके हाथों में सुरक्षित हैं।

मैं अब उन आम विषयों पर बोलना चाहूंगा जिनका वाद-विवाद के दौरान उल्लेख किया गया था। सर्वप्रथम, मैं इस आरोप का उत्तर दूंगा जिसमें यह कहा गया है कि भारतीय रिजर्व बैंक ने अनुसूचित बैंकों की पर्याप्त सहायता नहीं की है। इस प्रश्न पर विचार करते समय कुछ ऐतिहासिक परिप्रेक्षों पर विचार करना आवश्यक है। भारतीय रिजर्व बैंक 1934 में स्थापित किया गया था और इस प्रकार से कहा जा सकता है कि इसे एक ऐसी बैंकिंग प्रणाली विरासत में प्राप्त हुई थी जिसका ढांचा इस बैंक की स्थापना से पहले ही तैयार कर लिया गया था। उस समय भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम से इस बैंक को अनुसूचित बैंकों पर नियंत्रण रखने के सम्बंध में सीमित शक्तियां ही प्राप्त थीं। जैसाकि मैंने पहले कहा है, वास्तव में धारा 44 के अंतर्गत निर्धारित विवरणी तक का प्रपत्र भी बहुत छोटा था। भारतीय रिजर्व बैंक ने यह महसूस किया कि यदि उसे अनुसूचित बैंकों पर नियंत्रण करने के सम्बंध में अपना दायित्व निभाना है तो उसे व्यापक शक्तियों की जरूरत है। तदनुसार, युद्ध छिड़ने के बाद ही एक विधेयक तैयार किया गया था। तत्पश्चात्, युद्ध के उतार-चढ़ाव और अपनी व्यस्तता के कारण उस समय की सरकार के लिए इस तरह का उपाय करना असम्भव सिद्ध हुआ और केवल हाल ही में, काफी संशोधनों के बाद आवश्यक विधान को पारित किया गया। तथ्य यह है कि रिजर्व बैंक द्वारा नियंत्रण करने हेतु व्यापक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए उपलब्ध कराया गया उपाय यह सिद्ध करता है कि सदन ने माना है कि पहले प्रदान की गई शक्तियां अपर्याप्त थीं। यह श्री रोहिणी कुमार चौधरी द्वारा उठाये गये मुद्दे का वास्तविक उत्तर है कि जबकि रिजर्व बैंक को इन तथ्यों की जानकारी थी वह स्थिति को बिगड़ने से रोकने में असफल रहा। उसे प्राप्त सीमित शक्तियों के अंतर्गत रिजर्व बैंक ने वह सब कुछ किया जो वह कर सकता था अर्थात् अनुसूचित बैंकों के प्रबंधन पर नियंत्रण करना तथा इन्हें कानून के अंतर्गत उपलब्ध करायी जा सकने वाली अथवा करायी गई सहायता प्रदान करना। परन्तु प्रत्येक बार बैंक ने इस तथ्य पर बल दिया कि वह केवल उन बैंकों की सहायता कर पायेगा जिनका प्रबंधन अपेक्षाकृत अच्छा है। इसका कारण स्पष्ट है। यदि किसी बैंक का प्रबंधन असंतोषजनक है और वह कठिनाई में है तो रिजर्व बैंक द्वारा उसे सहायता दे कर लोक धन को बर्बाद करना अनुचित है। इसका अर्थ यह है कि कुछ खाताधारियों के साथ पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाया जाता है और वे कठिनाई से बाहर हो जाते हैं जबकि अन्य खाताधारियों को बैंक की परिसम्पति के मूल्य में ह्रास के सम्पूर्ण भार का वहन करना पड़ता है। यह स्वीकार किया गया है कि हाल के वर्षों में बैंकों को ऐसे कारणों से कठिनाइयां हो रही हैं जो इनके नियंत्रण से बाहर थे। मैं देश के विभाजन और इसके बाद

की घटनाओं का उल्लेख कर रहा हूं। ऐसी विषम स्थितियां हैं जिनका निदान रिजर्व बैंक को दी गई शक्तियों में निहित नहीं है। विभाजन के कारण प्रभावित बैंकों के कार्यों के संबंध को एक विशेष विधान पारित करना पड़ा। मेरा विश्वास है कि रिजर्व बैंक, अनुसूचित बैंकों को सहायता देने में अपनी शक्तियों के अंतर्गत निर्धारित अधिकतम सीमा तक पहुंच गया है। इस ने उन परिसम्पतियों के क्षेत्र को व्यापक बनाने में धारा 18 के संशोधन का समर्थन भी किया जिन्हें वह समस्याग्रस्त बैंकों से अपने हाथ में ले सकता था। वास्तव में, रिजर्व बैंक का यह अनुभव रहा है कि यदि कुछ अक्षम बैंकों को सहायता दी भी गई है तो उनकी स्थिति और भी कमजोर पड़ गई है और इससे उन सीमाओं का पता चलता है जो अनुसूचित बैंकों को कठिनाइयों में मदद करने के लिए रिजर्व बैंक की शक्तियों में वास्तव में व्याप्त हैं, मैं नहीं समझता हूं कि हम कोई ऐसा विधायी प्रावधान कर सकते हैं जो हमेशा के लिए यह सुनिश्चित करेगा कि खाताधारियों को कोई हानि नहीं पहुंचेगी। उनकी होने वाली हानि को कम करने का केवल एक ही रास्ता है कि यह सुनिश्चित किया जाये कि देश की बैंकिंग व्यवस्था सक्षम हो। इस विषय पर बोलते समय में उन कुछ व्यक्तिगत मामलों पर नहीं बोलूंगा जिनका वाद-विवाद के दौरान उल्लेख किया गया था क्योंकि सम्बंधित बैंकों के बारे में मेरे पास जानकारी उपलब्ध नहीं है और यह भी कि उनमें से कुछ बैंकों के नाम नहीं बताये गये हैं। श्री कृष्णमाचारी ने इस देश में कोई जमा बीमा पद्धति तैयार करने की सम्भावनाओं का उल्लेख किया है । इस विषय पर रिजर्व बैंक ने विचार किया है परन्तु उन्होंने पाया कि ऐसी कोई पद्धति बनाना व्यवहार्य रूप में तब तक बहुत कठिन होगा जब तक पहले देश में बैंकिंग स्तर में सुधार न लाया जाये और इसे कम आसान न बनाया जाये। तभी इस सीमा राशि को देश के बैंकों में बराबर-बराबर बांटा जा सकता है। श्री कृष्णमाचारी ने, औद्योगिक न्यायाधिकरण ने बैंकिंग विवादों में पंचाट का भी उल्लेख किया गया। हममें से कुछ सदस्य इस पंचाट के सम्भावित प्रभावों पर चिंतित हैं और हमने रिजर्व बैंक से यह जांच करने को कहा है कि पंचाट का कुछ प्रतिनिधि बैंकों के भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इस विषय पर रिजर्व बैंक की रिपोर्ट मिलने के पश्चात ही हम इस पर विचार करेंगे।

मैं समझता हूं कि मैं इस समय—यद्यपि यह विचाराधीन विषय से कुछ भिन्न है—सरकारी प्रतिभूतियों के मूल्यों में गिरावट आने से बैंकों और अन्य निवेशकों को हुई असुविधा के सम्बंध में श्री टी० कृष्णमाचारी द्वारा उठाये गये मुद्दे का उल्लेख कर सकता हूं। मुझे विश्वास है कि वह आमतौर पर ब्याज की दर अथवा धन दर के ढांचे के बारे में सरकार के इरादों के संबंध में मुझसे किसी वक्तव्य की आशा नहीं कर रहे होंगे किन्तु मेरा उनसे अनुरोध है कि वे इस बात को याद रखें कि यदि भारतीय रिजर्व बैंक मुद्रा

स्फीति को बढ़ावा नहीं देना चाहता है, तो उनकी खुले बाजार की गतिविधियां उसके पास उपलब्ध वित्त तक सीमित हैं। बेशक निरन्तर खरीद द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों का समर्थन देना हमेशा संभव है, किन्तु एक समय आता है जब नकद राशि काफी कम हो जाती है। ऐसी स्थिति में रिजर्व बैंक करेंसी का विस्तार करके मुद्रा बाजार को समर्थन दे सकता है। मैं समझता हूं यह सभा रिजर्व बैंक द्वारा इस रास्ते को अपनाने के खतरों को महसूस करती है।

मैं इसके बाद सहकारी बैंकों के साथ रिजर्व बैंक के संबंधों के बारे में कुछ कहूंगा। मैं श्री चैट्टियार का कृतज्ञ हूं कि उन्होंने रिजर्व बैंक द्वारा सहकारी बैंकों को दी जा रही सहायता को मान्यता दी है। मैं यहां पर कुछ संगत आंकड़ों को उद्धृत करना चाहता हूं जो चौधरी रणवीर सिंह द्वारा पूछे गये प्रश्न का आंशिक उत्तर देते हैं। मैं धारा 17 के अन्तर्गत अनुसूचित बैंकों और सहकारी बैंकों को चार वर्षों 1946-49 के लिए दिये गये ऋणों के आंकड़े प्रस्तुत कर रहा हूं।

वर्ष 1946 में अनुसूचित बैंकों को 2469 लाख रुपये और सहकारी बैंकों को 33 लाख रुपये के ऋण दिये गये। वह पहला वर्ष था जब सहकारी बैंकों को कुछ रियायत देने सम्बंधी योजना आरम्भ की जा रही थी। वर्ष 1947 में अनुसूचित बैंकों को 308 लाख रुपये और सहकारी बैंकों को दो लाख रुपये के ऋण दिये गये। वर्ष 1948 में अनुसूचित बैंकों को 2202 लाख रुपये और सहकारी बैंकों को 122 लाख रुपये के ऋण दिये गये। वर्ष 1949 में अनुसूचित बैंकों को 3,561 लाख रुपये और सहकारी बैंकों को 616 लाख रुपये के ऋण दिये गये, जिसमें 224 लाख रुपये $1^{1}/_{2}$ प्रतिशत ब्याज पर दिये गये थे। आप यह महसूस करेंगे कि रिजर्व बैंक द्वारा सहकारी बैंकों को बड़े पैमाने पर सहायता दी जा रही है। चौधरी रणवीर सिंह ने पूछा था कि इस राशि का कितना भाग कृषकों तक पहुंचा है। मैं कहता हूं कि सारी राशि कृषकों तक पहुंची है।

सर्वप्रथम ऋण दिये जाते हैं और दस्तावेज प्रांतीय बैंक को अग्रसारित किये जाते हैं तथा प्रांतीय बैंक रिजर्व बैंक से ऋण प्राप्त करते हैं। सहकारी बैंकों द्वारा किसानों को रियायत न देने का कोई कारण नहीं हो सकता है।

प्रांतीय बैंक केवल एक परिवर्धन करते हैं, और वह है उनका अपना प्रशासनिक व्यय, शायद श्री चेट्टियार ने कहा था कि प्रशासनिक व्यय $2^{1/2}$ प्रतिशत बैठते है, जिसे $1^{1/2}$ प्रतिशत ब्याज में जोड़ा जाता है। इनको जोड़ने पर भी जो दर आती है, वह भी उचित है। यदि यह 6 प्रतिशत भी हो जाये, तो भी यह उचित दर है।

कृषि ऋण संबंधी सामान्य प्रश्न पर बोलने से पहले मैं संक्षेप में इम्पीरियल बैंक पर लगाये गये आरोपों और इसके राष्ट्रीयकरण के संबंध में दिये गये सुझावों के बारे में कुछ

कहूंगा। मैं यहां पर उपाध्यक्ष महोदय श्री अनन्तशयनम अय्यंगर के प्रश्न के उत्तर में 1 फरवरी, 1949 को डा० जौन मकार्ड द्वारा दिये गये उत्तर का उल्लेख करना चाहूंगा। प्रश्न था:

"(क) क्या वित्त मंत्री यह बताने की कृपा करेंगे कि सरकार इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया के राष्ट्रीयकरण के लिए क्या कदम उठा रही है?
(ख) क्या सरकार का विचार विधान मंडल के चालू सत्र के दौरान इस प्रयोजनार्थ विधेयक पुरःस्थापित करने का है?"
इसका उत्तर था:

"मैं माननीय सदस्य का ध्यान 4 फरवरी, 1948 के अल्प सूचना प्रश्न पर मेरे पूर्ववर्ती श्री मोहन लाल सक्सेना द्वारा दिये गये उत्तर की ओर दिलाता हूं। उल्लिखित तकनीकी प्रश्नों और निवेश बाजार में सम्भावित प्रतिक्रिया तथा देश में अनिश्चित वर्तमान आर्थिक स्थिति को देखते हुए सरकार यह समझती है कि इस समय इम्पीरियल बैंक आफ इंडिया का राष्ट्रीयकरण करना व्यवहार्य नहीं है।"
मैं यह कहना चाहता हूं कि मैं इस विचार से पूरी तरह से सहमत हूं और मैं आश्वस्त हूं कि इस प्रकार की कोशिश देश के आर्थिक हित में नहीं है।

यह प्रश्न फिर भी रह जाता है कि क्या कार्यवाही की जाये। इस संबंध में ग्रामीण बैंकिंग जांच समिति ने कुछ सुझाव दिये हैं और ये उनकी अन्य सिफारिशों के साथ सरकार के विचाराधीन हैं। वास्तव में भारतीय रिजर्व बैंक से अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करने को कहा गया है और मुझे आशा है कि यह मामला अगली बैठक में उनके सामने आएगा।

मेरे मित्र श्री बी० दास ने, जिनकी विषय के प्रति गंभीरता और संसदीय अनुभव का मैं सम्मान करता हूं, इम्पीरियल बैंक पर अपना अत्यधिक रोष व्यक्त किया है। उन्होंने मुझे एक पुराने यौद्धा की याद दिला दी है। जिसने वीरता की पुरानी कहानियों को याद करते हुए अपने दुर्दान्त शत्रुओं पर प्रहार कर दिया था। मैं समझता हूं कि उन्होंने ऐसा करते हुए अपने तर्क के मुकाबले भावनाओं में बह गए हैं। मूल रूप से उनकी शिकायतों में चाहे कुछ दम रहा हो, परन्तु अब स्थिति में काफी परिवर्तन आ गया है।

मैं समझता हूं कि इम्पीरियल बैंक में इस समय शेयरों का एक बड़ा भाग भारतीयों के पास है और स्टाफ के भारतीयकरण की प्रक्रिया चल रही है तथा कुछ वर्षों मे वहां पर

शायद ही कोई गैर-भारतीय अधिकारी होगा। तकनीकी दृष्टि से मेरे विचार से बैंकिंग की यह एक बहुत ही अच्छी व्यवस्था है और समय के साथ यह हमारे नियंत्रण के अनुरूप ही जाएगी। इस व्यवस्था के प्रयोग को क्षति पहुंचाने वाली जल्दी में की गई कोई कार्यवाही हमारे अपने हितों के विपरीत होगी। देश की बैंकिंग प्रणाली में, मेरे विचार से इम्पीरियल बैंक की रीढ़ की हड्डी की तरह से है और यह सुनिश्चित करना हमारे हित में है कि हमारी वर्तमान बैंकिंग प्रणाली में परिवर्तन को हानि पहुंचाने वाला कोई कार्य न किया जाए, विशेष रूप से तब जब हम नये बैंकिंग अधिनियम की सहायता से बैंकिंग व्यवस्था को ठीक ढंग से संगठित करने का प्रयास कर रहे हैं।

एक और विषय है जिसके बारे में मैं बोलना चाहूंगा और वह है जो श्री पन्नालाल ने उठाया था। उन्हें डर था कि यदि खण्ड 9 को कानून बनाया जाता है तो इम्पीरियल बैंक सम्पूर्ण भारत में हमारे एजेंट हो जाएंगे जिसमें भाग "ख" राज्य भी शामिल होंगे। सदन को ज्ञात है कि ग्रामीण बैंकिंग जांच समिति ने कुछ सिफारिशें की हैं और मामला अभी भी विचाराधीन है। अतः हमारी इच्छा चयन समिति स्तर पर एक उपयुक्त संशोधन प्रस्तुत करने की है। हम एक स्पष्टीकरण का प्रस्ताव करेंगे कि—

> "यह व्याख्या राज्यों के सभी स्थानों पर जहां भारतीय इम्पीरियल बैंक की शाखा है, जो अनुसूची एक के पैराग्राफ-1 में आई है का अर्थ होगा, भाग क और भाग ग राज्यों के सभी स्थानों पर जहां भारतीय इम्पीरियल बैंक की शाखा है, बशर्ते कि केन्द्रीय सरकार द्वारा भाग ख के राज्यों के ऐसे स्थानों को किसी अधिसूचना द्वारा सम्मिलित किया जाए।"

इसका असर यह होगा कि यह मामला इस पर पूर्ण विचार होने तक विचाराधीन रखा जा सके।

अन्त में, मैं कृषि ऋण के संबंध में बोलना चाहूंगा। पृष्ठभूमि के तौर पर, मैं भारतीय रिजर्व बैंक की दूसरी संवैधानिक रिपोर्ट के अध्याय 4 का उल्लेख करना चाहूंगा जिसमें उन्होंने कुछ सामान्य सिद्धांतों की व्याख्या की है। उन्होंने कल की गई आलोचना का उत्तर दिया है—कि रिजर्व बैंक कृषकों के लिए असीमित ऋण की व्यवस्था नहीं करता है। उन्होंने स्पष्ट किया है कि रिजर्व बैंक किस प्रकार से एक बैंकर बैंक है और अधिनियम की प्रस्तावना में भारतीय वित्तीय स्थिरता को किस प्रकार सुनिश्चित करने की व्यवस्था है तथा देश के हित में मुद्रा और ऋण व्यवस्था को सामान्य रूप से किस प्रकार चलाना है। रिपोर्ट में बताया गया है कि यह बैंक सभी महत्वपूर्ण बैंकों की जमा राशि के बराबर नकद

संसाधन रखता है। एक समय—रिपोर्ट के समय—इनका बकाया बैंक की कार्य पूंजी के अधिकांश भाग के बराबर था। आज ऐसी स्थिति नहीं है क्योंकि विभिन्न अन्य जमा ऋण इस विशेष मद से बड़े हैं। रिपोर्ट में आगे कहा गया है—

> "यह रिजर्व बैंक के संसाधनों का प्रमुख स्रोत होने के कारण समझना सरल होगा कि आपातकाल में इसे एक साधारण वित्तीय ऐजेंसी न होकर बैंकर बैंक क्यों होता है। अनुसूचित बैंक जो धनराशि अपने पास रखने के लिए बाध्य होते हैं ताकि वह आपातकाल के समय "सम्पूर्ण पूल" के रूप में उपलब्ध हो सके, उसे व्यापार के तौर पर हम बंद करके नहीं रख सकते जोकि अनुसूचित बैंक स्वयं जोखिम खतरे, लम्बी अवधि, परिसमापन की कमी या अन्य किन्हीं कारणों से ऐसा नहीं चाहेंगे।"

इस अध्याय में जो कहा गया है उसे मैं दोहराना नहीं चाहता। लेकिन मैं पुनः सभा से, और विशेष रूप से प्रवर समिति के सदस्यों से निवेदन करूंगा कि इस समिति की बैठक से पूर्व इस अध्याय को पढें।

इसका अर्थ यह नहीं है कि हम नहीं जानते कि समस्या है और काफी गंभीर है। और यह कितनी है आंकड़ों के अभाव में इसकी गंभीरता बताना संभव नहीं है। सभा को याद होगा कि औद्योगिक वित्त निगम पर चर्चा के दौरान एक बार मेरे पूर्व वक्ता ने कहा था कि समस्या का हल एक पृथक कृषि वित्त निगम की स्थापना में है। हमने रिजर्व बैंक से परामर्श किया है और उन्होंने विभिन्न कारणों से इस प्रक्रिया को व्यावहारिक नहीं बताया है। इसके प्रमुख कारण यह हैं कि अनेक समितियां और उद्योग इस मामले पर विचार करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि इस प्रकार की संस्था की स्थापना प्रान्तीय स्तर पर की जानी चाहिए। उदाहरण के तौर पर, 1946 में गाडगिल समिति ने प्रान्तीय कृषि ऋण निगम की स्थापना करने की सिफारिश की थी। यह सच है कि कुछ अन्य देशों में इस प्रकार की केन्द्रीय संस्थाएं हैं, जैसे उदाहरण के तौर पर इंग्लैंड, आयरलैंड, अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि, परन्तु यह महसूस किया गया है कि इन देशों में परिस्थितियां हमारे देश की परिस्थितियों से बहुत भिन्न हैं। मुख्य भिन्नता यह है कि हमारे यहां बहुत छोटे स्तर पर कृषि की जाती है और केन्द्रीय संगठन को जिन यूनिटों के साथ कार्य करना होगा उनकी संख्या इतनी अधिक होगी कि प्रभावी नियंत्रण और निरीक्षण नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त अल्पावधि के ऋण देना वास्तव में केन्द्रीय संस्था के कार्य क्षेत्र से बाहर होगा, क्योंकि केन्द्रीय संस्था को काफी बड़े क्षेत्र के कृषकों के लिए ये सुविधाएं उपलब्ध करना व्यवहारिक रूप से असम्भव है और ये सुविधाएं सामान्य रूप से, जहां तक सम्भव

हो, सहकारी संस्थाओं के कार्यक्षेत्र में ही होनी चाहिऐ। वास्तव में कुछ प्रान्तीय सरकारों को डर था कि प्रान्तीय कृषि वित्त निगम भी शायद सहकारी आन्दोलन, जो जोर पकड़ने जा रहा है, से प्रतिस्पर्धा न कर पाए। फिर भी, रिजर्व बैंक द्वारा तैयार किया गया नोट राज्य सरकारों को उनकी राय हेतु भेजा गया था।

कुछ राज्य सरकारों से उनकी राय प्राप्त हो गई है। सदन को यह जानने की इच्छा होगी कि ये राय क्या हैं। बम्बई और उत्तर प्रदेश इस बात से सहमत हैं कि कृषि ऋण प्रान्तीय स्तर पर अर्थात् राज्य स्तर पर दिए जाएं। बम्बई ने आगे कहा है कि इस कार्य हेतु विद्यमान सहकारी एजेंसियों का उपयोग किया जाना चाहिए। मैं यह भी बताना चाहूंगा कि इस दिशा में कुछ सक्रिय कदम भी उठाए गए हैं। इसके बाद पंजाब, बिहार और उड़ीसा ने प्रान्तीय संस्थाओं को अधिक उपयुक्त मानते हुए कहा है कि आवश्यक राशि जुटाने में कठिनाइयां होने के कारण प्रान्तीय संस्थाओं की स्थापना कारगर नहीं हो सकेगी।

दूसरी ओर असम ने असम कोआपरेटिव अपेक्स बैंक को बहुत ही कम ब्याज दर पर ऋण देने के प्रयोजन से एक अखिल भारतीय कृषि वित्त निगम का सुझाव दिया है। पश्चिम बंगाल का विचार है, चूंकि वित्त निगम केन्द्रीय कानून सातवीं अनुसूची की प्रविष्टि 43—के अन्तर्गत आते हैं—राज्य सरकार वित्त निगमों की स्थापना करने के लिए सक्षम नहीं है। अतः संविधान के उपबंधों का उल्लेख करके उन्होंने जिम्मेदारी टाल दी है।

इस समय मैं यही कह सकता हूं कि सरकार इस मामले पर विचार कर रही है। सिर्फ ये ही उत्तर प्रात हुए हैं।

मैं व्यक्तिगत रूप से इस दृष्टिकोण से सहमत हूं कि यह ऐसा मामला नहीं है, जिसे केन्द्रीय कृषि ऋण संस्था के माध्यम से निपटाया जा सके, बल्कि केन्द्र और राज्यों तथा रिजर्व बैंक को एक साथ मिलकर यह देखना चाहिए कि इस मामले को कैसे सफल बनाया जाए तथा ऐसी संस्थाओं की स्थापना में क्या रुकावटें हैं तथा केन्द्र अथवा रिजर्व बैंक सामान्य उत्तरदायित्व को निभाते हुए इस मामले में क्या कुछ कर सकते हैं।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि 1939 से 1945 तक युद्ध लड़ा गया था और कृषि ऋण की समस्या युद्ध से अछूती नहीं रही है। मेरे विचार से राष्ट्र के रूप में हमारी स्मरण शक्ति अधिक है और मेरा विश्वास है कि इस मामले में हमारे विचार इस बात से प्रभावित हैं कि मंदी के दौरान क्या हुआ, जब ऋण वास्तव में एक बहुत ही विकट समस्या थी। युद्ध के वर्षों के दौरान, मैं समझता हूं कि सहकारी आन्दोलन का बकाया बहुत कम हो गया था।

और वास्तव में गत तीन वर्षों के दौरान सहकारी आन्दोलन के सामने अपने फालतू रिजर्व का उपयोग करने की समस्या उत्पन्न हो गई थी। मैं इस बात से इंकार नहीं कर रहा हूं कि यह समस्या अब नहीं है लेकिन अब वास्तव में यह समस्या इतनी विकट नहीं है जिसकी कुछ सदस्यों ने कल्पना की है।

मेरे विचार से चर्चा के दौरान उठाये गये सभी महत्वपूर्ण मुद्दों का मैंने लगभग उत्तर दे दिया है और मैंने उन विशिष्ट खंडों पर भी बात की है जिनमें संशोधन किए जाने का प्रस्ताव है। अब मैं अपना प्रस्ताव सदन की स्वीकृति हेतु प्रस्तुत करता हूं।*

*प्रस्ताव पारित किया गया।

भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) विधेयक*

मैं प्रस्ताव करता हूं:**

"कि भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 में और संशोधन करने वाले विधेयक पर प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विचार किया जाए"।

प्रवर समिति द्वारा किए गए संशोधनों की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करने से पूर्व में इस अवसर पर समिति के उन सदस्यों के प्रति आभार व्यक्त करना चाहूंगा जिन्होंने इस विधेयक में सुधार करने में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है। यद्यपि प्रवर समिति के प्रतिवेदन मे इसका उल्लेख नहीं किया गया है, तथापि इस पर बहुत व्यापक रूप से चर्चा की गई जबकि इस विधेयक के कुछ निर्धारित पहलुओं पर ही विचार किया जाना था। इसमें इम्पीरियल बैंक के भविष्य अथवा ग्रामीण ऋण के लिए अच्छे संगठन जैसे विषयों पर भी चर्चा की गई। मैं थोड़ा बाद में विषयों का संक्षेप में उल्लेख करूंगा।

जैसाकि मैंने पिछले अवसर पर स्पष्ट किया था, सदन के समक्ष विधेयक के उद्देश्यों का स्वरूप सीमित है अर्थात् भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम में कुछ संशोधन करना जो परिवर्तित संवैधानिक स्थिति, विशेष रूप से भाग ख राज्यों के वित्तीय एकीकरण को ध्यान में रखते हुए तथा भारतीय रिजर्व बैंक को अपने कार्यकलाप के दौरान प्राप्त अनुभव को ध्यान में रखते हुए आवश्यक हो गया है। प्रवर समिति ने इन पहलुओं को ध्यान में रखते हुए विधेयक में अनेक संशोधन किए हैं। उनके द्वारा प्रस्तावित परिवर्तन की विषय-वस्तु को प्रवर समिति के प्रतिवेदन में स्पष्ट किया गया है तथा मैं इनमें से अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तनों तक ही अपनी टिप्पणियों को सीमित रखूंगा।

प्रवर समिति द्वारा किया गया प्रथम महत्वपूर्ण परिवर्तन विधेयक के खंड 6(2) से संबंधित है जिसके अनुसार भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 17 (2) (ख) के

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 20 फरवरी, 1951, कॉ॰ 3219—3225, 27 अप्रैल, 1951, कॉ॰ 7629—7632 ।

**विधेयक पर प्रवर समिति द्वारा प्रतिवेदित रूप में विचार के लिए प्रस्ताव ।

अन्तर्गत उपयुक्त कृषि पत्र के उपयोग का विधेयक में प्रस्तावित 12 महीने से विस्तार करके 15 महीने किया गया है। समिति में इस बात पर सहमति व्यक्त की गई कि जबकि मौसमी कृषि-कार्यों अथवा फसलों के विपणन के लिए वित्त प्रदान करने हेतु सामान्यतः बारह महीने का समय पर्याप्त है, कुछ फसलों जैसे गन्ने को तैयार होने में अपेक्षाकृत अधिक समय की आवश्यकता होती है और इसलिए यह आवश्यक था कि रिजर्व बैंक को 15 महीने तक परिपक्व होने वाले बिलों में छूट देने की शक्ति प्रदान की जानी चाहिए। जैसाकि मैं विधेयक को प्रवर समिति को सौंपने के अपने प्रस्ताव में बता चुका हूं, इस अवधि के अन्तर्गत कृषि कार्यों के सम्पूर्ण चरणों को शामिल करने का इरादा नहीं है अर्थात् बीज और खाद की खरीद तथा भूमि की जुताई से लेकर फसल के अन्तिम रूप से विपणन किए जाने तक की अवधि के लिए ही रिजर्व बैंक से वित्त की आवश्यकता है। तथापि, कुछ फसलों की संभावित विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अधिकतम अवधि को बढ़ाकर 15 महीने किया गया है, जैसाकि अब इसे संशोधित करने का प्रस्ताव है। मेरा विश्वास है कि भारतीय रिजर्व बैंक की धारा 17 (2) (ख) मौसमी कृषि कार्यों के लिए सहकारी आन्दोलन को रिजर्व बैंक से वित्त उपलब्ध कराने में अधिक उपयोगी सिद्ध होगी। इस संबंध में मैं यह उल्लेख करना चाहता हूं कि भारतीय रिजर्व बैंक राज्य सहकारी बैंकों के लिए कृषि बिलों में डेढ़ प्रतिशत की अति निम्न दर पर से पुनः छूट देता है।

प्रवर समिति द्वारा किया गया दूसरा महत्वपूर्ण परिवर्तन विधेयक के खंड 8, 9 और 10 से संबंधित है। संविधान के अनुच्छेद 283 (2) के अन्तर्गत यह उपबंध किया गया है कि किसी राज्य की संचित निधि का संरक्षण, इन निधियों में धन का भुगतान, इसमें से धन का निष्कासन, राज्य सरकार द्वारा अथवा राज्य सरकार की ओर से प्राप्त धन के अतिरिक्त इन निधियों में जमा कराये गये सरकारी धन का संरक्षण, राज्य के सरकारी खाते में इनका भुगतान तथा इस खाते से धन का निष्कासन एवं उपर्युक्त मामलों से संबंधित अन्य सभी मामले एवं आनुषंगिक मामले राज्य विधानमंडल द्वारा बनाए गए कानून से विनियमित होंगे और जब तक इस संबंध में कोई उपबंध नहीं किया जाता, राज्य के राज्यपाल अथवा राजप्रमुख द्वारा बनाये गये नियमों से विनियमित होंगे। इस संवैधानिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए विधेयक के खंड 8 और 9 पर, मूलतः यथापुरः स्थापित, समिति द्वारा विचार किया जाना था। चूंकि भाग क राज्यों के संबंध में स्थिति यह

है कि वर्तमान कानून के अन्तर्गत उनके नकद अतिशेष तथा बैंकिंग कारोबार रिजर्व बैंक के सुपुर्द होते हैं एवं उनके और बैंक के बीच हुए समझौतों से शासित होते हैं, इसलिए समिति ने विधेयक के खंड 8 और 9 में संशोधन किया है ताकि भारतीय रिजर्व बैंक की धारा 20 और 21 को भाग क राज्यों तक सीमित रखा जा सके और इस प्रकार वर्तमान स्थिति बनी रह सके। भाग ख राज्यों के संबंध में समिति ने संविधान के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए यह उचित माना है कि रिजर्व बैंक के साथ उनके बैंकिंग कारोबार के नियमों को बैंक और संबंधित भाग ख राज्य सरकारों के विचारार्थ छोड़ दिया जाना चाहिए तथा एक नया खंड 10 अन्तर्विष्ट किया गया है, जिसमें रिजर्व बैंक को भाग ख राज्य सरकारों की सहमति अनुसार उनके साथ बैंकिंग कारोबार करने के लिए प्राधिकृत किया गया है। इस संबंध में मैं यह उल्लेख करना चाहता हूं कि भाग ख राज्यों में वित्तीय व्यवस्था के सम्पूर्ण मसले की केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त ग्रामीण बैंकिंग जांच समिति द्वारा हाल में जांच की गई है तथा समिति की सिफारिशों की सरकार द्वारा रिजर्व बैंक के परामर्श से जांच की जा रही है।

इस समय मैं विधेयक के खंड 13 के संबंध में प्रवर समिति में हुई चर्चा का उल्लेख करना चाहूंगा। समिति ने "ब्रिटिश प्रतिभूतियां" के स्थान पर "विदेशी प्रतिभूतियां" पद के प्रतिस्थापन को स्वीकृति प्रदान करते हुए अनुभव किया कि अधिनियम की धारा 33(6) में विद्यमान उपबंध बहुत व्यापक है तथा रिजर्व बैंक के परामर्श से इस धारा में उपर्युक्त संशोधन किया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 33(6) में यह उपबंध किया गया है कि रिजर्व बैंक के निर्गम विभाग की परिसंपत्तियों के रूप में जो "विदेशी प्रतिभूतियां" रखी जायेंगी, उन प्रतिभूतियों का अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष कै किसी सदस्य देश की मुद्रा के रूप में भुगतान किया जा सकेगा। मुझे यह सब कहने की आवश्यकता नहीं है। यह उस बैंक के साथ जो उस देश की मुख्य करेंसी संस्था है, निर्गम विभाग के जमा-खाते में अतिशेष-राशि का लेखा-जोखा रखता है अथवा यदि ऐसा कोई बैंक नहीं है तो उस देश में निगमित किसी भी बैंक के साथ ऐसा करता है।

समिति में इस बात पर विचार किया गया कि क्या रिजर्व बैंक द्वारा रखी जाने वाली प्रतिभूतियों के प्रकारों के बारे में विस्तृत ब्यौरा नहीं दिया जाना चाहिए। इस धारा का उल्लेख करने के पीछे मेरा उद्देश्य यह है कि यह मामला कुछ जटिल-सा है तथा इसमें एक सिद्धांत का मसला शामिल है जिसका रिजर्व बैंक के कार्य-कलापों पर प्रभाव पड़ता है। इसलिए हमने यह फैसला किया है कि इस मामले की रिजर्व बैंक के परामर्श से जांच की जानी चाहिए तथा यदि उचित समझा जाय, तो बाद में इसमें एक उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए। कभी-कभी ऐसा होता है कि विदेशी मुद्रा का भुगतान बैंकिंग विभाग में किया जाता है और तत्पश्चात् इसका कुछ भाग निर्गम विभाग को हस्तांतरित किया जाता

है ताकि बैंकिंग विभाग इसका समंजन नहीं कर सके। इसलिए इस मसले की जांच थोड़ी अधिक सावधानीपूर्वक करनी होगी।

अब मैं विधेयक के खंड 14 में समिति द्वारा किये गये परिवर्तनों पर विचार करूंगा जो भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 42 के अन्तर्गत अनुसूचित बैंकों द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले साप्ताहिक विवरणों से संबंधित है। इस खंड में समिति द्वारा किया गया मुख्य परिवर्तन विवरणों को प्रस्तुत करने की अवधि को दो कार्य दिवस से बढ़ाकर पांच कार्य दिवस करने से संबंधित है। ऐसा भारतीय बैंक एसोसिएशन के अभ्यावेदन के प्रत्युत्तर में किया गया जिसमें कहा गया था कि उक्त अवधि व्यावहारिक दृष्टि से अत्यल्प है तथा बैंकों को अपनी शाखाओं से आवश्यक जानकारी प्राप्त करने में टेलीग्राफ प्रभार के रूप में परिहार्य व्यय वहन करना पड़ता है। इस पहलू को ध्यान में रखते हुए तथा इस तथ्य पर विचार करते हुए कि पूंजी-निवेश, मांग तथा अल्प सूचना पर धन तथा बैंकों के पास अतिशेष-राशि के संबंध में अतिरिक्त जानकारी मंगानी होती है, विधेयक में विवरण के क्षेत्र का विस्तार करने का प्रस्ताव है, समिति ने प्रस्ताव किया कि अवधि को बढ़ाकर पांच दिन किया जाना चाहिए ताकि बैंक अपनी शाखाओं से डाक द्वारा जानकारी प्राप्त कर सकें। साथ ही, किसी बैंक को अपने प्रधान कार्यालय अथवा शाखाओं की भौगोलिक अवस्थिति के कारण किसी प्रकार की कठिनाई से बचाने के लिए यह व्यवस्था की गई कि एक अनंतिम विवरण पांच दिन के अन्दर प्रस्तुत किया जाए तथा अन्तिम विवरण संबंधित अवधि से दस दिन के भीतर प्रस्तुत किया जाए। आशा की जाती है कि जो पूरी जानकारी उपलब्ध होगी, उससे बैंकों द्वारा विवरण के प्रस्तुत किए जाने में यदि कोई विलम्ब हुआ है; तो उसकी प्रस्तावित संशोधन के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति हो जाएगी। इस समय किसी विशेष शुक्रवार के संबंध में अनुसूचित बैंकों का साप्ताहिक विवरण सामान्यतः अगले शुक्रवार को प्रकाशित होता है और साधारणतः प्रस्तावित संशोधन के पारित होने के बाद भी वर्तमान प्रथा के जारी रहने की संभावना है। अतः यह कोई असाधारण मामला न होकर एक सामान्य मामला है।

धारा 42(2) में प्रस्तावित परिवर्तनों पर चर्चा के परिणामस्वरूप प्रवर समिति ने अधिनियम की धारा 44 में संशोधन किया है जो राज्य सहकारी बैंकों द्वारा विवरण प्रस्तुत किए जाने के बारे में है। इस समय, रिजर्व बैंक की बैंकों से विवरण मंगाने की शक्ति उन्हीं राज्य सहकारी बैंकों तक ही सीमित है, जिनके कारोबार रिजर्व बैंक अधिनियम की धारा 17 के अन्तर्गत इसके साथ किये जाते हैं। समिति ने इसे वांछनीय समझा कि रिजर्व बैंक को सभी राज्य सहकारी बैंकों से विवरण मंगाने की

शक्ति प्राप्त होनी चाहिए, चाहे उनके कारोबार रिजर्व बैंक के साथ होते हों अथवा नहीं और इसलिए एक नया खंड 15 इसमें जोड़ा गया है।

अब मैं खंड 17 पर विचार करता हूं जिसमें इम्पीरियल बैंक की वर्तमान स्थिति को भाग क और भाग ग राज्यों में रिजर्व बैंक के एकमात्र एजेंट के रूप में बनाए रखा गया है। जैसाकि पहले कहा, भाग ख राज्यों में राजकोष की व्यवस्था से संबंधित सम्पूर्ण मामले की ग्रामीण बैंकिंग जांच समिति द्वारा हाल ही में जांच की गई है तथा उनकी रिपोर्ट पर केन्द्रीय सरकार द्वारा रिजर्व बैंक के साथ मिलकर विचार किया जा रहा है। किन्तु जब तक कोई निर्णय नहीं लिया जाता, स्पष्ट है कि वर्तमान व्यवस्था को भाग ख राज्यों में बनाये रखना होगा और इस बीच इम्पीरियल बैंक के रिजर्व बैंक के एकमात्र एजेंट संबंधी अधिकार भाग क और भाग ग राज्यों तक ही सीमित होंगे।

अन्त में, मैं अधिनियम की धारा 7 (3) में संशोधन करने की आवश्यकता के संबंध में 21 नवम्बर, 1950 को दिए अपने भाषण की ओर इस सदन का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा जिसमें अधिनियम के अन्तर्गत गवर्नर को उसे प्रदत्त शक्तियों का उसके द्वारा डिप्टी गवर्नर को प्रत्यायोजित करने की शक्ति प्रदान की गई है। तथापि, मैंने प्रवर समिति स्तर पर इस आधार पर कोई संशोधन प्रस्तुत नहीं किया कि धारा 7 के अर्न्तगत गवर्नर में निहित भारतीय तथा अफ्रीकी विनिमय बैंक (परिसमापन में) के कार्यों से संबंधित शक्तियों को बम्बई उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई है। उस मामले में एक समझौते के आधार पर न्यायालय द्वारा निर्णय दिया जा चुका है और मैं समझता हूं कि यह सबसे अच्छा होगा, यदि हम इस समय न केवल डिप्टी गवर्नर को शक्तियों के प्रत्यायोजन के बारे में संशोधन करें बल्कि गवर्नर की स्थिति के बारे में अस्पष्टता को दूर भी करें तथा असंदिग्ध रूप से इसे स्पष्ट करें कि गवनर के पास यह निर्णय करने की पूरी शक्ति होनी चाहिए कि क्या ऐसा अवसर उत्पन्न हुआ है जैसा कि धारा 18 (1) में उल्लिखित है जिसने गर्वनर के लिए यह आवश्यक या वांछनीय बना दिया है कि वह भारतीय व्यापार, वाणिज्य, उद्योग और कृषि के हित में इस उप धारा के अन्तर्गत कार्यवाही करे। यह बात स्मरणीय है कि इस उपधारा में, रिजर्व बैंक राष्ट्रीयकरण अधिनियम, 1948 द्वारा संशोधन किया गया था। संशोधन से पूर्व उस उपधारा में यह उपबंध किया गया था कि केन्द्रीय बोर्ड अथवा केन्द्रीय बोर्ड की एक समिति द्वारा अथवा गवर्नर द्वारा उन्हें केन्द्रीय बोर्ड द्वारा शक्तियां प्रत्यायोजित की जाती है, धारा 18 के अर्न्तगत विचार व्यक्त किये जा सकते हैं, उस समय लागू विनियमों के अन्तर्गत यही व्यवस्था थी। राष्ट्रीयकरण अधिनियम, 1948 के अर्न्तगत पुरःस्थापित धारा 7 की उपधारा (3) में यह निहित था कि बैंक के सम्पूर्ण कारोबार के संचालन की सारी शक्तियां गर्वनर के पास हों, जिसका संचालन गवर्नर द्वारा किया जाता था और उस समय यह सोचा गया था कि केन्द्रीय बोर्ड के अस्तित्व में आने

के बावजूद धारा 18 (1) के अन्तर्गत कृत्यों का भी गवर्नर द्वारा निर्वहन किया जायेगा। वास्तव में, मेरे पूर्ववर्ती मंत्री ने धारा 18 (3) में संशोधन करने हेतु एक संशोधन प्रस्तुत करने की बात सोची थी, लेकिन उन्होंने इसे प्रस्तुत नहीं किया क्योंकि वह समझते थे कि कानून अपने-आप में स्पष्ट था। दुर्भाग्यवश एक विसंगति रह गई थी, जो कि न्यायालय में व्याख्या को चुनौती दिए जाने के बाद सामने आई। अतः मैं, धारा 7 (3) में संशोधन किए जाने और इसके परिणामस्वरूप धारा 18 (1) में परिवर्तन के लिए संशोधन प्रस्तुत कर रहा हूं, ताकि गवर्नर इस कार्य हेतु, केन्द्रीय बोर्ड की बैठक होने का इन्तजार किए बिना, धारा 18 (1) के अर्न्तगत आपात शक्तियों का प्रयोग कर सके। यह भी प्रावधान किया गया है कि एक जनवरी, 1949 अर्थात् जिस तारीख से धारा 7 में मूल संशोधन लागू किये गये थे; से धारा 7 (3) और धारा 18 (1) में किए गए संशोधन भूतलक्षी प्रभाव से लागू किए जाएं।

जब प्रवर समिति की रिपोर्ट पर विचार किया जाएगा तब परिणामी प्रकार के कुछ अन्य छोटे संशोधन भी प्रस्तुत किए जाएंगे।

जहां तक विधेयक का संबंध है, मुझे बस इतना ही कहना है।

मैं केवल दो अन्य मुद्दों का उल्लेख करना चाहूंगा। पहला मुद्दा यह है कि इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया के संबंध में हमें अब भारतीय रिजर्व बैंक की सिफारिशें प्राप्त हो गई हैं और जैसे ही हम अपने पूर्व निर्धारित आवश्यक कार्यों से फारिग होंगे, हम इनकी जांच करेंगे और देखेंगे कि इम्पीरियल बैंक के कार्य संचालन के संबंध में किस प्रकार के संशोधन किए जाने आवश्यक हैं। जहां तक दूसरे प्रश्न का सम्बन्ध है, जोकि कुछ लोगों के दिमाग में हैं, वह कृषि ऋण के बारे में है। मेरे अनुरोध पर रिजर्व बैंक ने इस बारे में एक सम्मेलन बुलाया था, जो कि अब आयोजित किया जा चुका है।

इसमें ऐसे अनेक लोग शामिल थे, जिन्हें ग्रामीण वित्त की कुछ जानकारी है। इसमें विशेषकर बम्बई और मद्रास से विशेषज्ञ आए हैं, क्योंकि मैंने सोचा कि अगर रिजर्व बैंक किन्हीं विशेष राज्यों की समस्या के संदर्भ में इसका अध्ययन करेगा तो उनके निष्कर्षों को कुछ सुधारों के साथ अन्य भागों पर भी लागू किया जा सकता है। सम्मेलन के अध्यक्ष प्रो० डी० आर० गाडगिल थे। जैसाकि आपको याद होगा कि वह ग्रामीण ऋण जांच समिति के भी अध्यक्ष थे। इसके अलावा इंडियन सोसाइटी आफ एग्रीकल्चरल इकनामिक्स के प्रेसिडेंट, श्री मणिलाल नानावती, जो पहले रिजर्व बैंक के डिप्टी गवर्नर थे

और अब निदेशक हैं, इसमें शामिल थे। श्री रामलिंगम चेट्टियार, श्री सारैया, चेयरमैन, बम्बई प्रोविंसियल कोआपरेटिव बैंक, और लगभग चौदह या पंद्रह अन्य सदस्य शामिल थे। इनके निर्देशपद भी काफी व्यापक हैं। मुझे इस समिति की सिफारिशों की बहुत उत्सुकता से प्रतीक्षा है और इसके पश्चात ही हम ग्रामीण ऋण दिए जाने के बारे में कुछ निश्चित कर पाने योग्य हो पायेंगे।

*पिछले अवसर पर, मैं विधेयक पर विचार के लिये रखे गये प्रस्ताव पर हुई चर्चा का उत्तर दे रहा था और मैंने कहा था कि अपना भाषण समाप्त करने के पहले मैं कुछ और विचार व्यक्त करना चाहूंगा। ये टिप्पणियां, रिजर्व बैंक द्वारा कृषि ऋण दिए जाने सम्बन्धी सीमाओं के बारे में हैं। रिजर्व बैंक के विरुद्ध एक आरोप यह लगाया गया है कि इसे सीधे मुद्रा सहायता देकर कृषि ऋण को मदद देनी होती है और जो आलोचना की गई है, उससे मैं महसूस करता हूं कि यह अवश्य आशा की जानी चाहिए कि रिजर्व बैंक किसी भी सीमा तक कृषि ऋण दे सकता है। रिजर्व बैंक द्वारा 1936 या 1937 में जारी की गई सांवधिक रिपोर्ट की धारा 55(1) के अन्तर्गत इस विषय पर विचार किया गया है, मैं इसके कुछ अंश का हवाला देना चाहता हूं, जो कि आज भी उतना सही है, जितना पहले था। रिपोर्ट में सर्वप्रथम रिजर्व बैंक अधिनियम की प्रस्तावना का उल्लेख किया गया है जिसमें यह बताया गया है कि बैंक नोटों के निर्गम को विनियमित करने, मुद्रा की स्थिति में स्थिरता लाने के उद्देश्य से आरक्षित कोष रखने और सामान्य रूप से देश के हित में करंसी और ऋण प्रणाली को विनियमित करने के लिये बैंक स्थापना की गई थी। देश के बैंकिंग ढांचे पर नियंत्रण रखने के लिए रिजर्व बैंक द्वारा आवश्यक उपाय के रूप में अधिनियम में सभी बैंकों को, जिनकी पूंजी और आरक्षित कोष 5 लाख रुपए एवं अधिक है, अपनी सांवधिक देनदारियों का 2 प्रतिशत और मांग देनदारियों का 5 प्रतिशत रिजर्व बैंक के पास जमा कराना होता है। इस प्रकार रिजर्व बैंक, सभी महत्वपूर्ण बैंकों के जमा रिजर्व या जमा के लिए दिन-प्रति-दिन के रिजर्व पर नियंत्रण रखता है। अनुसूचित बैंकों को जो राशियां रिजर्व बैंक के पास रखने पर मजबूर होना पड़ता है, वे राशियां उन्हें आपातकाल में उपलब्ध करायी जाती हैं। अतः, उन्हें व्यापार में प्रयोग करने हेतु रख पाना सम्भव नहीं, जोकि अनुसूचित बैंक स्वयं भी जोखिम या समयावधि या नकदी की कमी या अन्य कारणों से ऐसा नहीं करेंगे। इसलिए रिजर्व बैंक को अपनी निधियों का बड़ा भाग नकदी के रूप में रखना पड़ता है और अधिकांश शेष आसानी से प्राप्य हो सकने वाली सरकारी प्रतिभूतियों और सरकारी बिलों में निवेश करना होता है। यही कारण है कि

---

*भारतीय रिजर्व बैंक (संशोधन) विधेयक पर विचार करने संबंधी प्रस्ताव पर वाद-विवाद पर 27 अप्रैल, 1951 को अपना उत्तर जारी रखते हुए।

अधिनियम के अन्तर्गत जो व्यापार करने की अनुमति दी गई है वह प्रतिभूतियों तक ही सीमित है, जो स्वतः समापन स्वरूप की होती है। अंतः, रिजर्व बैंक के लिए कृषकों को सीधे ही ऋण देना या सरकारी बैंकों को बड़ी रकम अग्रिम देना या देशी बैंकरों को काश्तकारों को ऋण देने के लिए कहना, सम्भव नहीं है। न ही रिजर्व बैंक सरकार का स्थान ले सकता है।

अतः कृषकों को ऋण उपलब्ध कराने में रिजर्व बैंक की शक्तियों की ये सीमाएं हैं; अतः यह कार्य सरकारी ऋण एजेंसियों या कतिपय निर्धारित उद्देश्यों जैसे कि कृषि संबंधी कार्यों या विपणन कार्यों के लिये वाणिज्यिक बैंकों जैसी किसी मूल ऋण एजेंसियों के माध्यम से किया जाता है।

अगर संशोधन प्रस्तुत किये जाते हैं तो, धारा 17(4) (ख) जैसी कुछ विशेष धाराओं, जिन के बारे में कुछ गलतफहमियां हैं, पर मैं विचार करूंगा। लेकिन मैं कहना चाहता हूं कि धारा 17(4) के उद्देश्य के लिए योजना यह है कि रिजर्व बैंक, 'कोलेटरल ऑफ डाक्यूमेंट्स ऑफ टाइटिल' जोकि अन्तरित किये जा सकते हैं पर अग्रिम दें और कानून के अनुसार यदि इन 'डाक्यूमेंट्स ऑफ टाइटिल'' का कब्जा उधार लेने वाले या उस वाणिज्यिक बैंक के पास रहता है, जिसने पहले ऋण दिया था, तो इनका पुनः कब्जा नहीं लिया जा सकता है। दोनों ही मामलों में, नियम यह है कि ''डाक्यूमेंट्स ऑफ टाइटिल'' का लेनदेन नहीं होता। 'डाक्यूमेंट्स ऑफ टाइटिल' तभी प्रयोग में आता है जब इसे किसी तीसरी पार्टी, जैसे, भण्डागार प्रभारी या रेलवे भण्डागार के प्रभारी, जिसे रेलवे रसीद या बिल ऑफ लेडिंग आदि जारी करने का प्राधिकार प्राप्त है; के नाम हस्तांतरित किया गया हो। इसी कारण से हम धारा 17(4) (घ) के अन्तर्गत सामान को सीधे-सीधे गिरवी रखने के लिए स्वीकार नहीं कर सकते। अब यह कहा जा सकता है कि इस मामले में उस विशेष धारा को लागू नहीं किया जाना चाहिये और रिजर्व बैंक द्वारा स्वयं ही कोलेटरल ऑफ गुडस पर ऋण देना चाहिए। ऐसा तभी संम्भव है जब हस्तांतरण आसान हो और जहां रिजर्व बैंक सम्पदा के देखरेख करने की स्थिति में हो। सोने और चांदी जैसे मामलों में ऐसा किया जा सकता है। इससे ठीक पूर्व एक अन्य धारा है जिसके अन्तर्गत रिजर्व बैंक को सोने और चांदी के गिरवी रखे जाने जैसे मामलों में अग्रिम देने की अनुमति है। सोने और चांदी जैसे वस्तुओं के मामले में यह अब संभव है। लेकिन कृषि उत्पादों जैसे मामलों में यह संभव नहीं है और विशेषरूप से खड़ी फसल के रूप में और भी सम्भव नहीं है। दोनों ही मामलों में यह माना जाएगा कि रिजर्व बैंक की सारे देश में शाखाएं हैं और जो वस्तुएं इसमें गिरवी रखी गई है उनके देखभाल करने की

उसकी व्यवस्था है। इसी कारण ऐसे किसी संशोधन को लागू करना संभव नहीं है, जैसाकि उन कुछ माननीय सदस्यों ने परिकल्पना की है, जिन्होंने संशोधन की सूचना दी है।

एक अन्य मुद्दे से चर्चा संक्षिप्त हो सकती है। मैंने वायदा किया था कि मैं रिजर्व बैंक से अनुरोध करुंगा कि वह अपने किसी अधिकारी को असम चाय बागानों के जिलों का दौरा करने के लिए भेजे, ताकि वह चाय उद्योग को ऋण देने की वर्तमान प्रणाली का अध्ययन कर सकें। यहां यह स्मरण कराया जाता है कि 23 फरवरी को हुई चर्चा के दौरान, श्री चालिहा ने अनुरोध किया था कि चाय उद्योग को भी ऋण सुविधा प्रदान की जाए ताकि वे खाद्यान्न, कोयला, चाय की पेटियां आदि की खरीद कर सकें। मैंने यह स्वीकार किया था कि क्योंकि चाय बागानों को इस समस्या का अभी हाल ही में सामना करना पड़ा है, अतः मैं रिजर्व बैंक से अनुरोध करता हूं कि वह इस समस्या का अध्ययन करने के लिए एक अधिकारी भेजे और समस्या को आसानी से सुलझाने के लिए सुझाव दे। मैंने रिजर्व बैंक से पता लगाया है कि रिजर्व बैंक के गवर्नर ने केन्द्रीय् चाय बोर्ड के चेयरमैन से पहले ही प्रारम्भिक बातचीत की है और रिजर्व बैंक के एक अर्थशास्त्री द्वारा इस समस्या पर विचार किया जा रहा है। रिजर्व बैंक मामले पर आगे कार्यवाही कर रहा है और कलकत्ता के बैंकिंग आपरेशन विभाग को समस्या का अध्ययन करने और इस सम्बन्ध में रिपोर्ट भेजने के बारे में निदेश जारी किये गए हैं। अतः इस मामले पर कार्यवाही की जा रही है और मुझे विश्वास है कि इस पर ध्यान दिया जाएगा।

मैंने उस सम्मेलन का भी जिक्र किया था, जिसमें ग्रामीण ऋण की समस्या पर व्यापक रूप से विचार किया गया था। मेरे माननीय मित्र श्री रामलिंगम चेट्टियार इसके सदस्य थे और सम्मेलन में हुई चर्चा के परिणामों के अनुरूप, उन्होंने एक संशोधन की भी सूचना दी है। वे ग्रामीण ऋण संबंधी तथ्यों का पता लगाने के लिए एक सर्वेक्षण कराने जा रहे हैं और समग आने पर हम उनकी सभी सिफारिशों को अन्तिम रूप देंगे या ऐसी प्रशासनिक कार्यवाही करेंगे जिसका संकेत दिया गया है। आशा की जाती है कि हम ग्रामीण ऋण के सम्बर्धन के मामले को उससे भी कहीं अधिक सन्तोषजनक तरीके से सुलझा पायेंगे जिसकी सभा को आशा है।

एक संशोधन मिश्रित आपरेशन आदि के बारे में है और मैं कहना चाहता हूं कि सम्मेलन द्वारा की गई सिफारिशों जिन पर रिजर्व बैंक में अंतिम रूप से विचार नहीं किया गया है में से एक सिफारिश मौसमी कृषि कार्यों और फसलों के विपणन की परिभाषा को व्यापक बनाने के बारे में हैं, ताकि इनमें वे मदें भी शामिल की जा सकें, जो कि देश के

अन्य भागों में कृषि कार्यों के अन्तर्गत जाती है। इस मामले पर भी सक्रिय रूप से विचार किया जा रहा है, परन्तु इस समय हम इस विधेयक में इस बारे में औपचारिक संशोधन शामिल करने के लिए तैयार नहीं हैं। अतः, मैं समझता हूं कि सभा को सारे मामले पर ध्यान पूर्वक विचार किए जाने तक इन्तजार करना होगा और तब हम अपने निर्णयों के अनुसार उपयुक्त विधेयक प्रस्तुत करेंगे।*

*प्रस्ताव स्वीकृत हुआ।

जीवन बीमा (आपातिक उपबन्ध) विधेयक*

मैं प्रस्ताव करता हूं: "कि जीवन बीमा व्यवसाय, जिसका राष्ट्रीयकरण होने वाला है, का जनहित में प्रबन्ध संभालने का उपबन्ध करने वाले विधेयक पर विचार किया जाये।"

इस विधेयक का प्रयोजन 19 जनवरी, 1956 को निर्मित जीवन बीमा (आपातिक उपबन्ध) अध्यादेश को अधिनियम में परिणीत करना है। अध्यादेश का जारी करना इस देश में जीवन बीमा के राष्ट्रीयकरण की ओर पहला प्रारम्भिक कदम था। अब मैं यह बतलाऊंगा कि किन कारणों से सरकार ने यह बड़ा निर्णय किया।

राष्ट्रीयकरण का निर्णय करने के पश्चात् सरकार ने अग्रेतर कार्यवाही पर विचार किया कि जब तक संसद द्वारा आवश्यक विधान पास किया जाये क्या उस बीच में कोई अंतरिम कार्यवाही आवश्यक है। सामान्य प्रक्रिया यह होती है कि यह उपबन्ध करते हुये एक विधेयक पुरःस्थापित किया जाता है कि पुरःस्थापना की तिथि के पश्चात् कम्पनियों के प्रबन्धकों द्वारा किये गये सौदे सरकार पुनः खोल सकती है। यदि यह प्रतीत हो कि ये सौदे दुर्भाव से किये गये थे। जबकि इस प्रकार का उपबन्ध अन्य प्रकार के अधिकतर व्यवसाय के लिये पर्याप्त होता, हमारा ख्याल था कि जीवन बीमा के बारे में यह अपर्याप्त होगा। कम नीति कुशल, बीमा कंम्पनियों का गत अनेक वर्ष का हमारे अनुभव से हमें यह विश्वास हो गया था कि इस प्रकार के उपबन्ध से परिसम्पत्ति का बड़ी मात्रा में कम होना नहीं रोका जा सकेगा। ऐसा करने से बीमा कम्पनियों के प्रबन्धक कई तरीकों से धन कमा सकते थे, शायद पालिसीदारों के हितों की अपेक्षा करके हो सकता है कि शेयर धारियों के हितों की उपेक्षा करके सौदों पर अवश्य ही पीछे की तारीखें डाल दी जाती और उस तारीख तक धन का जो दुरुपयोग किया गया था उसके सम्बन्ध में कल्पित हिसाब बना दिया जाएगा। वास्तव में मेरे कामों में कुछ प्रबंधकों की शिकायतें आई हैं कि अपना हिसाब ठीक करने के लिए उन्हें 24 घन्टे भी नहीं दिये गये। रुपये का दुरुपयोग

*लोक सभा वाद-विवाद, 29 फरवरी, 1956, कां० 1135—1147।

कुछ थोड़े से ही प्रबन्धकों तक सीमित नहीं था जैसा कि एक प्रमुख आर्थिक पत्र ने लिखा है जिसमें से मैं अभी पढ़ कर सुनाऊंगा। मैं बता दूं कि यह पत्र वह है जो राष्ट्रीयकरण के अत्यन्त विरुद्ध है तथा जिसने सरकार के इस निर्णय की आलोचना की है। इस पत्र का कहना है:

"कुछ व्यवसायी जो कि अपने अंतर्गत बीमा कम्पनियों की सहायता से शेयरों से सट्टेबाजी करते थे एकाएक गिरफ्त में आ गये हैं। इन लोगों की प्रथा यह रही है कि वह बिना उन दलालों को बतलाये जिनके नाम पर कि संविद् संविदे किये जाने हैं, शेयरों को पहले बेच या खरीद लेते हैं। यदि उस सौदे में लाभ हुआ, तो यह अपने नाम में वसूल कर लिया जाता है। लेकिन यदि हानि हुई तो बीमा कम्पनी के नाम डाल दी जाती है। ऐसा मालूम होता है कि सरकार द्वारा बीमा कम्पनियों का राष्ट्रीयकरण किये जाने के समय इनमें से कुछ सट्टेवालों को ख्याति प्राप्त प्रतिभूतियों में एक लम्बे अरसे से अच्छी स्थिति प्राप्त थी। चूंकि सरकार ने उन्हें बीमा कम्पनियों के बही खातों में परिवर्तन करने का समय नहीं दिया, डा० देशमुख ने अपने विमुद्रीकरण अध्यादेश के अनुभव का लाभ उठाया है। उनके सम्मुख अपनी खरीदों का परिसमापन करने के अतिरिक्त और कोई चारा न था।"

इस सुस्थापित तथा सुज्ञात प्रथा पर और कुछ कहना अनावश्यक है। किन्तु उस पहलू के अतिरिक्त, अर्थात् परिसम्पत्ति का कम होना, हमें एक ओर यह डर था कि अच्छे प्रकार के प्रबन्धक अपनी कम्पनियों में दिलचस्पी खो देंगे और राष्ट्रीयकरण तथा इस विधेयक के पुरःस्थापन के मध्य जो पांच या छः महीने का समय गुजरता उसमें पालिसीदारों के हितों को हानि पहुंचती। प्रबन्ध तत्काल अपने हाथ में लेकर सरकार इस अंतरिम काल में न केवल बीमा कम्पनियों के सामान्य कार्यकरण के लिये आवश्यक कदम उठा सकेगी, अपितु उन्हें सुचारु तथा सत्यशीलता पर आधारित कर सकेगी।

बीमा कम्पनियों का प्रबन्ध लेने के बाद जो चीजें हमने पायी उनसे कुछ सदस्यगण अवश्य ही अवगत होंगे। एक बीमा कम्पनी के बारे में, जिसका प्रधान कार्यालय बम्बई में था, हमने पाया कि 30,00,000 रुपये के मूल्य की सरकारी प्रतिभूतियां गायब थीं। कलकत्ते से दो मामलों की सूचना मिली जिनमें प्रत्येक 15,00,000 रु० गायब थे। उत्तर प्रदेश के एक चौथे मामले में एक प्रबन्ध संचालक जो कम्पनी की 12,00,000 रुपये की प्रतिभूतियां लेकर गया हुआ था अभी तक वापस नहीं लौटा है और अब पुलिस उसकी

तलाश में है। यह सही है कि यह गबन अध्यादेश जारी होने के पूर्व हुआ था, किन्तु यदि ये लोग अकस्मात ही अध्यादेश की गिरफ्त में नहीं आ गये होते तो अवश्य ही हिसाब में इधर उधर करके इन सौदों को एक ऐसा रूप दे दिया जाता जिससे हमारे सामने एक दूसरी तस्वीर आती। एक दूसरे मामले में, प्रबन्ध लिये जाने से ठीक पूर्व एक प्रबन्धक ने एक लाख रुपये के मूल्य की सरकारी प्रतिभूतियां बेच दी और बराबर मूल्य की कृष्य भूमि खरीद ली। जांच करने पर परिसमापक को मालूम हुआ कि बेचने वाले का उस भूमि पर कभी अधिकार नहीं रहा तथा जो राशि दी गयी थी भूमि का मूल्य उसका एक छोटा अंश मात्र भी नहीं था एक और मामले में 20,00,000 रुपये के मूल्य की सरकारी प्रतिभूतियां कथित रूप से एक बैंक में जमा कर दी गयी थी। बाद में परिसमापक ने पाया कि सरकारी प्रतिभूतियों का पता ही नहीं है, किन्तु कुछ शेयर थे और यह भी स्पष्ट नहीं मालूम होता था कि वे किसके थे। लेकिन जिन बैंकों में ये प्रतिभूतियां रखी बतायी गयी थीं और लेखापरीक्षक के सम्मुख इस बारे में जिन बैंकों के प्रमाणपत्र प्रस्तुत किये गये थे उन बैंकों ने एकदम इससे इन्कार कर दिया कि ये प्रतिभूतियां उनके यहां रखी गयी थीं। दूसरे शब्दों में बैंक प्रमाण पत्र जाली बना लिये गये थे।

इस प्रकार के मामलों से सावधान रहने के लिये ही अध्यादेश जारी करने की आवश्यकता पड़ी और फिर भी हमने केवल न्यूनतम आवश्यक अधिकार ही धारण किये तथा राष्ट्रीयकरण से उठने वाले समस्त उपबन्धों पर विचार विमर्श जीवन बीमा निगम विधेयक पर चर्चा के समय के लिये छोड़ दिया।

चूंकि यह प्रथम और प्रारम्भिक कदम है, सदन मुझ से यह अवश्य जानना चाहेगा कि राष्ट्रीयकरण करने का बड़ा निर्णय क्यों किया गया। इस विषय पर पत्रों, अर्थशास्त्रियों, उद्योगपतियों तथा अन्य लोगों द्वारा विचार प्रकट किये जाते रहे हैं किन्तु इन सब चर्चाओं में एक इस चीज की कमी रही है कि बीमा व्यवसाय को व्यापक रूप से नहीं परखा गया है। किसी कम्पनी विशेष के अथवा बीमा हितों के किसी वर्ग विशेष के अथवा वास्तविकताओं से परे केवल सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से ही इस विषय पर विचार किया गया है। हम इस सम्बन्ध में अनुकूल स्थिति में थे क्योंकि अधिनियम को प्रशासित करने के कारण हम समस्त उद्योग को व्यापक रूप से इसके विभिन्न पहलुओं में देख सकते थे। इसलिये हम पालिसीदारों, शेयरधारियों, कमीशन एजेंटों, वास्तव में प्रत्येक सम्बन्धित हित का दृष्टिकोण मापने की स्थिति में थे। और इस सब के अध्ययन से हमें ज्ञात हुआ कि जीवन बीमा का प्रबन्ध पर्याप्त उत्तरदायित्व अथवा क्षमता के साथ नहीं किया जा रहा। हमने यह महसूस किया कि इस व्यवसाय को दृढ़ आधार पर स्थित करने के उपायों का निर्धारण करने के लिये इसके मामलों की विस्तृत जांच करना आवश्यक है।

मुझे सभा को शायद यह विश्वास दिलाने की आवश्यकता नहीं है कि यह जांच हमने

इसलिये प्रारम्भ नहीं की कि हमने इस व्यवसाय के सम्बन्ध में कोई धारणाएं पहले से बना रखी थीं अथवा हम इसके मामलों में जबरदस्ती हस्तक्षेप करना चाहते थे। हमने अपने सम्मुख ये प्रश्न रखे क्या भारत में जीवन बीमा पूर्ण सक्षमता के साथ कार्य कर रहा है। जिससे कि यह औसत व्यक्ति की बचत को अधिकाधिक आकर्षित कर सके? यदि नहीं, तो इसके ऐसा करने में क्या रुकावटें हैं?

ये कमियां किस प्रकार की हैं और नियंत्रण अधिक मजबूत करके इन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है? अथवा भारत में जो जीवन बीमा का प्रबन्ध विद्यमान है ये कमियां क्या उसका अभिन्न अंग समझी जायें? मैं यह भी दावा कर सकता हूं कि इन सब बातों का अध्ययन हमने एक लम्बे अरसे तक तथा व्यापक रूप से किया था। सबसे पहले सक्रिय रूप से इस प्रश्न पर सन 1951 में विचार किया गया। तब से बराबर हम इसका अध्ययन करते रहे हैं। प्रथम जांच में ही राष्ट्रीयकरण इसका स्पष्ट निदान प्रतीत लगा था। किन्तु हम शीघ्रता से कोई कार्य नहीं करना चाहते थे। इस लम्बी अवधि में हमने सारे पहलुओं का अध्ययन किया, प्रत्येक विचारधारा को देखा और जिन कम्पनियों का प्रबन्ध हमारे हाथ में था उसका अनुभव भी संकलित किया। जिस निष्कर्ष पर हम अंत में पहुंचे उससे हमारी शंकाएं सुदृढ़ हो गयी। वर्तमान शासन व्यवस्था में बीमा कंपनियों से जो भाग अदा करने की आशा की जाती है वह वे नहीं कर रही थीं और हमने यह अनुभव किया कि इस स्थिति को सुधारने के लिये भूतकाल की तरह और कानूनों की सहायता लेने से काम नहीं चलेगा। न्याय की धारणा जो कि बीमा कम्पनियों का आधार होना चाहिये, उसका वहां नितान्त अभाव था। वास्तव में अधिकतर प्रबन्धक इस बात में कोई अंतर ही नहीं कर सकते थे कि न्यास के रुपये में तथा ज्वाइंट स्टाक कम्पनी के रुपये में, जिसका स्वामित्व स्वयं शेयरधारियों का होता है—क्या अंतर है।

अब मैं विस्तारपूर्वक यह बताऊंगा कि इस कदम को उठाने के क्या कारण थे। बीमा कम्पनियां उन स्तरों तक नहीं पहुंची जो कि एक सुव्यवस्थित बीमा कम्पनी को अपनाने चाहिये। सर्वप्रथम व्यवसाय को अधिकतम मितव्ययता के साथ चलाया जाये जिसमें यह पूरी तरह ध्यान रखा जाये कि रुपया पालिसीधारकों का है। बीमे की किस्तों की रकम उससे अधिक नहीं होनी चाहिये जितनी जीवनांकिक आधार से उचित हो। धन इस प्रकार विनियोजित किया जाये जिससे कि पूंजी के सुरक्षण के साथ-साथ पालिसीधारकों को अधिकतम लाभ हो। पालिसीधारकों के प्रति इसकी सेवा द्रुत व सूक्ष्म हो तथा अपनी सेवा द्वारा यह बीमा को खूब लोकप्रिय बना दे। अंत में, प्रबन्धन को न्यास की भावना से संचालित किया जाना चाहिए।

अब, पहली बात लीजिये। मैं समझता हूं हमारी जीवन बीमा कम्पनियों का कार्य

असंतोषजनक रहा है। भारतीय कम्पनियों के प्रबन्ध व्यय तथा किस्तों की आय का अनुपात 27 प्रतिशत है जब कि इंग्लैंड की कम्पनियों का 15 प्रतिशत तथा अमेरिका की कम्पनियों का 18 प्रतिशत है। खर्चे की सीमाओं पर कानूनी पाबन्दी लगा देने से भी अपव्ययता में कमी नहीं आती है। कम्पनियों द्वारा इस ऊंचे अनुपात के अनेक कारण दिये जाते हैं किन्तु मुझे इसका कारण अपव्ययता ही प्रतीत होता है। बाहर काम करने वाले अधिकतर एजेंट असली नहीं है और उनका मुख्य प्रयोजन अवैध रूप से दी जाने वाली छूटों का साधन मात्र होना ही है। स्वयं इस उद्योग द्वारा ही बनाये गये नियमों के अनुसार ब्रांच कार्यालय तथा एजेंट के बीच केवल एक ही बिचौली का उपबन्ध था जिससे कि बार-बार प्राप्त करने के लिये की जाने वाली इस तेज दौड़ को रोका जा सके किन्तु मुझे खेद है कि उद्योग ने शीघ्र ही इसका उल्लंघन कर दिया। ब्रांचों के अब कितने ही ब्रांच सेक्रेटरी, संयुक्त ब्रांच सेक्रेटरी तथा सहायक ब्रांच सेक्रेटरी हो गये हैं और कारोबार हासिल करने के लिये होड़ जारी है।

इतना व्यय होने पर यह आशा अवश्य ही की जायेगी कि पालिसीदारों के हितों की भली प्रकार रक्षा हो। किन्तु यहां भी इन कम्पनियों का कार्य अच्छा नहीं है। पालिसी बिक जाने के बाद की सर्विस बहुत खराब रही है तथा व्यपगत पालिसियों की संख्या बहुत अधिक रही है। जब पालिसीधारक बीमा कराता है तो उसका बीमा उस प्रकार की खरीद नहीं होती है जैसे एक शेयर खरीद लिया गया है। अथवा उपभोग की अन्य वस्तु खरीद ली गई हो। प्रीमियम वास्तव में बचत का एक तरीका है और जब कि इस बचत के प्रत्येक रुपये में से चार आने खर्चे में आ जाते हैं तथा केवल बारह आने दिये जाते हैं तो छोटी बचत करने वालों को होने वाली हानि का अंदाजा आसानी से लगाया जा सकता है।

जहां तक बीमे की किस्तों की दरों का सम्बन्ध है वह दुनियां के सभी समुन्नत देशों में पायी जाने वाली किस्तों की दरों से अधिक है। यह सच है कि भारत में मृत्यु दर का अनुपात उनमें से अधिकांश देशों की मृत्यु दर के अनुपात से अधिक है पर इस बात का समुचित ध्यान रखते हुये भी विशेषज्ञों का विचार है कि हमारे यहां बीमा की किस्तों की दरें अपेक्षाकृत अधिक हैं।

इसके बाद विनियोजनों की बात लीजिये, हम देखते हैं कि बहुत से ऐसे कदाचार हैं जिनकी परिहार्य नहीं हो सकता। जब सर्वप्रथम 1951 में प्रबन्धकों द्वारा किये गये विनियोजनों के विस्तृत विवरण हमें प्राप्त हुये तो हम उन्हें देख कर आश्चर्य में पड़ गये। सभी प्रकार की प्रतिभूतियों—अच्छी, बुरी और उदासीन पर ऋण दिये गये थे। कभी-कभी बिना किसी प्रतिभूति के शेयरों, खेती की भूमियों व नौकाओं या चल प्रतिभूति

जैसे गन्ने की खड़ी फसलों और पुस्तकालयों पर भी ऋण दिये गए थे। 1950 में ऋण के संबंध में उपबन्धों को कड़ा करने पर हम समझते थे कि यह प्रवृत्तियां लुप्त हो जायेंगी। पर वे लुप्त नहीं हुईं। केवल उनका स्वरूप बदल गया।

बीमा कराने वालों का धन उपक्रमों में बिना इस बात का ध्यान किये लगाया जाता था कि उन उपक्रमों का वास्तविक महत्व क्या है। अनावश्यक रूप से प्रतिभूतियों का उलटफेर, अपर्याप्त प्रतिभूतियों पर ऋण का देना और बढ़े हुए मूल्यों पर सम्पत्ति की खरीद की जाती थी। यह कुछ ऐसे तरीके हैं जिनके द्वारा धन की बरबादी की गयी थी या धन का दुरुपयोग किया गया। मकान सम्पत्तियों और उसके बाद शेयरों और ऋण पत्रों जिनमें से कुछ का कोई भी स्पष्ट मूल्य नहीं है इस प्रकार के कार्यों में विनियोजनों में कदाचार के लिये काफी गुंजाइश रहती है।

इन सभी विनियोजनों और बड़े-बड़े खर्चों का जो अपरिहार्य परिणाम होना था वही हुआ। 1944 से 1954 तक के दस वर्ष के दौरान में 25 बीमा कम्पनियां अवसायित हुईं और इतनी ही कम्पनियों ने अपना व्यापार दूसरी कम्पनियों को सौंपा जिसमें से अधिकांश मामलों में बीमा ठेके में कमी भी कर दी गयी। मैं समझता हूं कि ऐसा एक मामला एक विदेशी कम्पनी के सम्बन्ध में सभा के सामने भी आया था। इस समय जो कम्पनियां बीमे का काम कर रही हैं उनमें से 75 कम्पनियां अपने गत मूल्यांकन के समय किसी बोनस की घोषणा नहीं कर सकीं इसका मतलब यह है कि इन बीमा कम्पनियों ने अपनी किस्तों में जितना व्यय करने का उपबन्ध किया था उतना ही व्यय नहीं किया बल्कि उन अतिरिक्त किस्तों में से भी व्यय किया जिन्हें बीमाधारियों ने बोनस पाने की आशा में जमा किया था।

अब, हमें बीमा कम्पनियों के इस दावे पर विचार करना है कि उन्होंने इस देश में बीमा को लोकप्रिय बनाने के लिये किसी से कम काम नहीं किया है। मैं इस बात से इन्कार नहीं करता कि उन्होंने कुछ भी नहीं किया है। प्रश्न यह है कि क्या उन्होंने काफी काम किया है?

अच्छी तरह से विचार करने पर आप देखेंगे कि उतनी उन्नति नहीं हुई है जितनी होनी चाहिये थी। जीवन बीमा एक सामाजिक आवश्यकता है और विशेषकर आज जब कि संयुक्त परिवार प्रणाली जो अप्रत्यक्ष बीमा के रूप में अभी तक अंशतः सहायता करती आ रही थी, अब बड़ी तेजी से टूट रही है और हर एक आदमी के सामने आर्थिक अनिश्चिता और असुरक्षा है। अन्य उन्नतिशील देशों में बीमा कम्पनियों ने ऐसी योजनायें बनाई हैं जिनसे कम आर्थिक साधनों वाले लोग भी थोड़ी-थोड़ी राशियों का बीमा करा सकें। उन योजनाओं के अन्तर्गत साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक किस्तें देनी होती हैं और

वह भी लोगों के घरों से एकत्रित की जाती हैं। इस प्रकार के कार्य को सामान्यतया औद्योगिक बीमा कहा जाता है क्योंकि वह लोग अधिकतर औद्योगिक कर्मचारी होते हैं। इस प्रकार का काम ब्रिटेन में किये गये कुल जीवन बीमा के काम का 40 प्रतिशत और जर्मनी में किये गये कुल जीवन बीमा के काम का 35 प्रतिशत है। भारत में इस काम को करने का प्रयत्न भी नहीं किया गया। 70 भविष्य निधि समितियां हैं जो कहती हैं कि वे समाज के गरीब वर्ग की आवश्यकतायें पूरी करती हैं पर यह सच है कि उन्होंने अभी तक उनका शोषण ही किया है। इन समितियों का इतिहास असंतोषजनक रहा है। शताब्दी के प्रारंभ के वर्षों में उनकी संख्या 500 से अधिक थी और अब 71 रह गयी है। उनमें से अधिकांश का या तो दिवाला हो गया है या होने वाला है और उनकी कुल आस्तियां एक बीमा कम्पनी की एक महीने की आय के बराबर है।

इस समय भारत में प्रति व्यक्ति बीमा 25 रुपये है जब कि संयुक्त राज्य अमरीका में 8,365 रुपये और कनाडा में 6,647 रुपये, आस्ट्रेलिया में 2,544 रुपये और ब्रिटेन में 1,840 रुपये है। आप यह कह सकते हैं कि यह एक उचित तुलना नहीं है क्योंकि उन देशों में प्रति व्यक्ति आय बहुत अधिक है। परन्तु इस बात को ध्यान में रखते हुए भी, वर्तमान समय में बीमा की गई राशियों की राष्ट्रीय आय से तुलना करने पर हमें पता लगता है कि भारत में बीमा की गयी राशि, राष्ट्रीय आय की 10 प्रतिशत है जब कि कनाडा में यह राशि 108 प्रतिशत और ब्रिटेन में 95 प्रतिशत है। अतः यह स्पष्ट है कि भारत में बीमा की प्रगति अन्य देशों की तुलना में इतनी कम होने का कारण प्रति व्यक्ति कम आय होना नहीं है। इसका संतोषजनक उत्तर यह है कि हमारे देश की बीमा कम्पनियां अल्पकालीन विचारों के आधार पर हैं और उनकी गतिविधियां शहर के क्षेत्रों तक ही सीमित थीं और शहरों में भी कुछ विशेष श्रेणी के लोगों तक ही।

पालिसीदारों की सेवा के सम्बन्ध में कुछ कम्पनियां दावे के भुगतान को कानूनी तरीकों से स्थगित करती या टालती हैं। 1954 में हमारे विभाग में हजारों शिकायतें आई थीं कि बहुत सी कम्पनियां दावों के भुगतान में विलम्ब कर रही हैं या भुगतान नहीं कर रही हैं। आस्ट्रेलिया में जहां पर जीवन बीमाधारियों की संख्या लगभग इतनी ही है, बीमा के आयुक्त के प्रतिवेदन के अनुसार वहां दावे का भुगतान न करने के सम्बन्ध में 1954 में सिर्फ एक शिकायत हुई है। बीमा कम्पनियों द्वारा दावेदारों को संतोषजनक उत्तर न मिलने पर बहुत से मामले धारा 47क के अंतर्गत बीमा नियंत्रक के पास भेजे गये। अधिकांश मामलों में बीमा कम्पनियों की ही गलती मिली। अतः स्पष्ट है कि भारत में हम बीमा कंपनियों से सम्बन्धित वह अच्छी परम्परा नहीं पैदा कर सके जो संसार के अन्य देशों में है।

विनियोजनों के सम्बन्ध में छोटे विनियोजन के संबंध में हम देखते हैं कि एक व्यक्ति

को तुलनात्मक दृष्टि से बहुत बड़ी राशि पर नियंत्रण प्राप्त हो जाता है और उस नियंत्रण का भी वह व्यक्ति अधिकतर इस प्रकार उपयोग करता है जैसा कि किसी न्यासी को नहीं करना चाहिये।

यह भी दावे के साथ कहा गया है कि अग्रेतर विधान बना कर पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण को कड़ा करके स्थिति में सुधार किया जा सकता था। ऐसे सभी नियंत्रण या विनियम व्यर्थ हैं। इनसे यह बात रोकी जा सकती है जो बाहर से बुरी दिखाई पड़ती है पर इससे स्तर को ऊंचा नहीं उठाया जा सकता। यह तो उनको स्वयं करना पड़ेगा सरकार तो केवल विकास का रक्षण कर सकती है। उदाहरणार्थ ब्रिटेन में जीवन बीमा पर बहुत ही थोड़ा नियंत्रण है पर फिर भी उनका स्तर बहुत ऊंचा है। 1912 में हमने ब्रिटेन के नमूने पर काम शुरू किया था पर "स्वतंत्रता तथा प्रचार" का सिद्धान्त ब्रिटेन के ऊंचे स्तर को प्राप्त करने के लिये काफी सिद्ध नहीं हुआ। अतः विस्तृत राज्य नियंत्रण के लिए हमें विधान बनाना पड़ा। 1938 में एक व्यापक—या जिसे हम व्यापक समझते थे बीमा अधिनियम बनाया गया। उस समय इस अधिनियम को अति कठोर विधान समझा गया था और यह आशा की गयी थी कि इससे सभी कुप्रबन्ध दूर हो जायेंगे। पर हम कुछ बीमा प्रबन्धकों की प्रतिभा का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सके थे। गत 18 वर्षों में अधिनियम को 10 बार संशोधित करना पड़ा और हर बार उपबन्ध को कड़ा बनाया गया पर प्रत्येक बार साधन सम्पन्न प्रबन्धकों ने एक न एक रास्ता निकाल ही लिया। उदाहरण के लिये, जीवन बीमा कम्पनी पर किसी एक व्यक्ति का नियंत्रण रहे इस बात को रोकने के लिए 1950 के संशोधक अधिनियम ने यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि कभी कोई व्यक्ति बीमा कम्पनी की पूंजी के 5 प्रतिशत से अधिक का शेयर होल्डर नहीं बन सकता। इसके बाद भी उन्हीं व्यक्तियों या उन्हीं दलों का बीमा कम्पनियों पर पहले की ही भांति नियंत्रण बना रहा। परिवार के सदस्यों, मित्रों या कर्मचारियों के नाम से शेयर लेकर इस अधिनियम के साथ वंचना की गयी। हमारे देश में बेनामी के बड़े-बड़े विशेषज्ञ हैं। उसी अधिनियम में एक उपबन्ध का समावेश किया गया जिसके द्वारा बीमा कम्पनियों के पदाधिकारियों को बहुत अधिक उपलब्धियों का भुगतान करने का निषेध किया गया। इस उपबन्ध के साथ फर्जी नियुक्तियां करके वंचना की गयी और उनके वेतनों को पूर्णतः या अंशतः वे लोग लेते थे जो कम्पनियों का नियंत्रण ही करते थे।

अब मैं एक दूसरा उदाहरण दूंगा। अधिनियम में मना किया गया है कि कोई बीमा कम्पनी उन कम्पनियों को ऋण न देगी जिनमें उस बीमा कम्पनी के निदेशक स्वयं भी निदेशक हों। कुछ मामलों में इस उपबन्ध का भी वंचन इस प्रकार किया गया कि उन कम्पनियों ने ऋण पत्र जारी किये और बीमा कम्पनियों ने इन ऋण पत्रों को खरीद

लिया। एक मामले में तो ऐसा हुआ कि एक कम्पनी के ऋण पत्रों को खरीदने वाली केवल बीमा कम्पनियां ही थीं।

इस व्यापार को एक अन्य दृष्टिकोण से देखने पर भी हमें कानून नियंत्रण की प्रभाव-हीनता दिखाई पड़ती है। जैसाकि मैंने बताया कि गत 10 वर्षों में 25 बीमा कम्पनियां परिसमापित हो गयीं और 25 अन्य कम्पनियों को अपना व्यापार दूसरी कम्पनियों को सौंपना पड़ा और अधिकांश मामलों में बीमा के ठेके में कमी कर दी गयी। इन कम्पनियों के 60,000 गरीब बीमाधारियों को विभिन्न मात्राओं में हानि हुई। मैं एक सबसे बड़ा मामला आपके सामने रखता हूं। 11 बीमा कम्पनियों के मामलों में प्रबन्ध का काम संभालने के लिये प्रशासकों की नियुक्ति करनी पड़ी। ऐसी नियुक्तियों के कारण जाली लेन-देन, गलतियां, फर्जी व्यक्तियों को ऋण देना, अंधाधुन्ध व्यय, दिवालियापन, भारी कुप्रबन्ध आदि थे। कुछ अन्य कम्पनियों की हालत भी ऐसी ही थी कि उनके साथ भी ऐसा व्यवहार किया जाय पर या तो इसलिये कार्यवाही नहीं की गयी कि प्रबन्धकों से कहा गया कि वह अपनी सारी गड़बड़ियों को ठीक कर लें या इसलिये कि कुछ व्यवहारिक कठिनाइयां थीं। अतः आज स्थिति ऐसी है कि हमारा स्तर ब्रिटेन के स्तर से बहुत नीचा है।

यदि कुछ थोड़ी सी कम्पनियों का ही स्तर नीचा होता तो अग्रेतर विधान से कुछ लाभ हो सकता था पर मुझे यह कहते हुए दुख हो रहा है कि आज अच्छी तरह से प्रबन्धित कम्पनियों की संख्या बहुत ही कम है। विधान या नियंत्रण द्वारा अब हम अपना उद्देश्य प्राप्त कर सकने की आशा नहीं करते इस तर्क पर इस बात का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ता कि वह थोड़ी सी अच्छी प्रकार से प्रबन्धित कम्पनियां बहुत काफी कारोबार करती हैं, क्योंकि आज लाखों व्यक्तियों के बामे असुरक्षित हैं और इससे लाखों परिवारों पर असर पड़ेगा। इस अवस्था को जारी रहने देने का कोई औचित्य नहीं है। बीमा एक ऐसा कारोबार है, जिसमें कभी भी हानि होने की संभावना नहीं होनी चाहिये और जिसमें किसी भी पालिसीदार की जिंदगी भर की बचत को कभी भी खतरा नहीं होना चाहिये। काफी समय तक कानूनी नियंत्रण का परीक्षण किया गया है अब आगे भी उसे जारी रखना कठिन होगा।

बीमा एक आवश्यक सामाजिक सेवा है जिसे प्रत्येक कल्याणकारी राज्य को अपनी जनता के लिये उपलब्ध करना चाहिये और एक बार जब यह बात निःसंदेह रूप से स्पष्ट हो गयी है कि यदि इसका प्रबन्ध अन्य किसी प्रकार से नहीं किया जा सकता तो राज्य को चाहिये की राज्य इस सेवा का प्रबन्ध करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले ले। अतः अपेक्षित उच्च प्रथाओं के आधार पर बीमा कम्पनियों के ठीक प्रकार न चल पाने के कारण सरकार को यह कार्यवाही करनी पड़ी, मैं यह भी बताना चाहता हूं कि इसका

राष्ट्रीयकरण करना स्वयं एक समुचित बात है। लाभ के विचार को छोड़कर और राष्ट्रीयकरण के अंतर्गत सेवा की कुशलता को एक मूल आधार बना कर बीमा के संदेश को दूर-दूर तक, शहरों से आगे उपेक्षित ग्रामीण क्षेत्रों तक पहुंचना संभव होगा।

जीवन बीमा बीमा कराने वाले में सुरक्षा की भावना पैदा करता है पर इसके लिये उसे अपने कष्टमय दिनों के लिये धन इकटठा करने की मजबूरी भी होती है। आज इस देश में 30 लाख से भी कम व्यक्तियों का बीमा हुआ है। यदि हम यह संख्या दूनी भी कर लेंगे तो हम बचत को काफी बढ़ा लेंगे। पर इस योजना के विस्तार के लिये तो और भी ज्यादा संभावनायें हैं। शहरों में भी अभी बहुत से कमाई करने वाले लोग हैं और ग्रामीण क्षेत्र तो इस दृष्टि से अभी तक बिल्कुल ही अछूते हैं। गैर-सरकारी उपक्रम ने यह भी दावा किया है कि उसे विश्वास है कि आगामी 10 वर्षों में वह जीवन बीमा के चालू कारबार को जो इस समय 1,200 करोड़ रुपये से कुछ अधिक 8,000 करोड़ रुपए कर देगा और 5 रुपये प्रति व्यक्ति बीमा से 200 रुपये प्रति व्यक्ति बीमा कर देगा। मुझे इस बात में कोई शक नहीं है कि राष्ट्रीयकरण होने के बाद जीवन बीमा केवल इतना ही नहीं इससे ज्यादा भी करने में सफल हो जायेगा और ऐसा करके हम अपनी योजना-द्वितीय और आगामी योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिये जनता द्वारा की गयी बचत से काफी बड़ी राशियां प्राप्त कर सकेंगे।

अब मैं फिर अध्यादेश की बात लेता हूं और मैं आपको बताऊंगा कि 19 जनवरी के इसके प्रख्यापित होने के बाद अभी तक क्या हुआ है। जैसाकि आप को पता है कि इस अध्यादेश के कारण जीवन बीमा का सारे कारबार का प्रबन्ध सरकार के हाथ में आ गया है और इसलिये कि कारबार में कोई गड़बड़ी न हो, यह व्यवस्था कर दी गयी थी मौजूदा प्रबन्ध ही कारबार की देखभाल करेगा पर सरकार के एजेंट के रूप में। प्रबन्धकों को रोजाना का कार्य अपने उत्तरदायित्व पर करने की अनुमति दे दी गयी थी पर कुछ महत्वपूर्ण मामलों, जैसे निधियों का विनियोजन करने या किसी सामान्य परम्परा के अपवाद के रूप में कुछ करने में वह सरकार द्वारा नामजद किये गये अधिकृत व्यक्तियों के अनुमोदन पर ही कार्यवाही कर सकेंगे। 20 जनवरी को ही ऐसे अधिकृत व्यक्तियों को नियुक्त कर दिया गया था।

हमने उन्हें गुप्त रूप से मनोनीत किया और कुछ महीनों तक प्रशिक्षण दिया और उन्हें एक निश्चित समय पर अपने पदों का भार संभालने के आदेश मिल गये थे। इसलिये किसी भी बीमा कम्पनी के कार्यकरण की तारतम्यता में कोई भंग नहीं हुआ। समाचारपत्रों में इस संबंध में अनेक प्रकार की कल्पनायें की गई हैं कि ये व्यक्ति अपने स्थानों को 20

तारीख को ही कैसे पहुंचे और यह अंदाजा लगाया गया है कि इन व्यक्तियों को एक विशेष हवाई जहाज द्वारा पहुंचाया गया। परन्तु वास्तविक तथ्य मैं आपको बताऊंगा। उन्होंने रेल से ही यात्रा की और 17 तारीख की शाम को ही दिल्ली से बाहर जाना प्रारंभ कर दिया था। उनमें से केवल थोड़े से व्यक्तियों ने ही हवाई जहाज से यात्रा की तथा वह यात्रा नियमित अनुसूचित उड़ानों वाले हवाई जहाजों से ही की और अपने साथ उन अधिकार पत्रों को लेकर जो उन्हें अध्यादेश के समुचित रूप से प्राधिकृत होने के पश्चात् उपलब्ध हुये थे। इसलिये मैं कह सकता हूं कि गोपनीयता बहुत अच्छी तरह रखी गई। जो बात मैं कहना चाहता हूं वह यह हैं कि हमने ऐसा प्रबन्ध किया था कि बीमाधारियों को तनिक भी असुविधा न हो, और मैं समझता हूं कि हम उसमें सफल होने का दावा कर सकते हैं। अध्यादेश के प्रकट होने के तुरन्त पश्चात हमने बीमा कम्पनियों का भार संभालने के लिये अभिरक्षकों की नियुक्ति करना प्रारंभ किया। कोई 126 बीमा कम्पनियों का प्रबन्ध अभी भी अभिरक्षकों द्वारा किया जाता है और चूंकि यह कुल बीमा व्यापार का 96 प्रतिशत हो जाता है, यह कहा जा सकता है कि अब उच्चस्तरीय प्रबन्ध प्रत्यक्षतः सरकार के हाथ में है। अभिरक्षकों का चुनाव बीमा कम्पनियों के ऊंचा वेतन पाने वाले कर्मचारियों में से किया जाता है। वे वित्त मंत्रालय के सामान्य पथ-प्रदर्शन के अंतर्गत एक दल की तरह मिलकर कार्य कर रहे हैं, और एक एकरूप नीति का सूत्रपात हो गया है। जैसाकि आप जानते हैं, एकरूप प्रव्याजि (प्रीमियम) दरें तथा एकरूप बीमा शर्तें विनिहित की गई हैं।

विनियोजन के मामले में भी एकरूप नीति का विकास किया जा रहा है। बीमा लाभों का, किसी विशेष कम्पनी के संबंध में भी एकरूप नीति का विकास किया जा रहा है। बीमा के लाभों का, किसी विशेष कम्पनी के संबंध में नहीं बल्कि सामान्य रूप में, प्रचार करने वाले विज्ञापन निकलने लगे हैं। ऐसा कहा गया है कि नये बीमों का कार्य ठप्प हो गया है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता हो रही है कि यह बात ठीक नहीं है। बहुत थोड़े समय के बाद ही पहले जैसी गति से बीमा व्यापार पुनः प्रारम्भ हो गया है और शंकाओं के सामाधान और स्थिति स्पष्ट होते ही यह गति तीव्रतर हो जायेगी और देश के कुछ भागों में होने भी लगी है। साथ ही यह स्पष्ट होता जा रहा है कि दावों का भुगतान तुरन्त किया जाता है। इस संबंध में अभी तक मेरे पास कोई शिकायत नहीं आई है। परन्तु मैं एक चेतावनी भी देना चाहता हूं कि दिवालिया कम्पनियों के बीमाधारियों को उस समय तक प्रतीक्षा करनी होगी जब तक कि ऐसी कम्पनियों की पूरी जांच न हो जाय। सभा के सामने जो विधेयक है वह प्रायः अध्यादेश के उपबन्धों की पुनरावृत्ति करता है। फिर भी, 20 जनवरी 1956 से लेकर अभी तक की छोटी सी अवधि में प्राप्त किये अनुभवों के आधार पर हम अभिरक्षकों को कुछ अतिरिक्त शक्तियां उस प्रकार की देना चाहते हैं

जैसा कि बीमा अधिनियम के अंतर्गत नियुक्त प्रशासकों को प्राप्त थीं। यह स्पष्टतः आवश्यक है कि अभिरक्षक गोलमाल रकमों को पुनः प्राप्त करने के लिये, शीघ्रता से और उचित तरीके से, कार्यवाही करने में जहां कहीं भी ऐसी कार्यवाही आवश्यक हो, समर्थ हों, इन शब्दों के साथ मैं सभा में अपना प्रस्ताव रखता हूं।

11

जीवन बीमा निगम विधेयक, 1956*

वित्त मंत्री (श्री सी० डी० देशमुख) : श्रीमन्, मैं प्रस्ताव करता हूं कि :

> "भारत में जीवन बीमा कार्य का, ऐसे सारे कार्य को इस प्रयोजन के लिए स्थापित किये गये निगम को हस्तान्तरित करके, राष्ट्रीयकरण करने का उपबन्ध करने वाले तथा निगम के कार्य के विनियमन और नियन्त्रण तथा तत्संबंधी अथवा प्रासंगिक विषयों का उपबन्ध करने वाले विधेयक पर, जिस रूप में वह लोक सभा द्वारा पारित किया गया है, विचार किया जाये।"

श्रीमन, इससे पूर्व जीवन बीमा (आपात कालीन उपबन्ध) विधेयक पर इस सदन में होने वाले चर्चा के समय मैंने सविस्तार वह कारण बता दिये थे जिनसे विवश होकर सरकार ने जीवन बीमा कार्य का राष्ट्रीयकरण करने का महत्वपूर्ण निर्णय किया, जिसका कि सदन ने उत्साह के साथ अनुमोदन किया। इसलिये मुझे पुरानी बातें दोहराने की आवश्यकता नहीं है। मैं केवल निगम की संगठन व्यवस्था पर, विधेयक में दी गई, कुछ रोशनी डालूंगा और विधेयक के कुछ अन्य मुख्य उपबन्धों की व्यवस्था करूंगा।

भारत भर का सारा जीवन बीमा कार्य, नियत तिथि के पश्चात् भारत जीवन बीमा निगम के नाम से होगा, जो विधेयक के खंड 3 के उपखंड (1) के अनुसार बनाया जा रहा है। खंड 7 के उपखंड (1) के अनुसार सब बीमाकृत व्यक्तियों का बीमा उसी के नाम अपने आप हस्तान्तरित हो जायेगा। निगम को ही भारत में जीवन बीमा कार्य करने का एकाधिकार होगा। खंड 4 के उपखंड (1) के अनुसार निगम में 15 व्यक्ति से अधिक नहीं होंगे और उन्हें केन्द्रीय सरकार नियुक्त करेगी। इसके कंधों पर ही निगम के चलाने का कार्यभार होगा। प्रतिदिन के काम के लिये 15 की संख्या कुछ अधिक है, इसलिये खंड 19 में यह उपबंध किया गया है कि निगम का सामान्य अधीक्षण और कार्य चालन एक कार्य-पालिका समिति के हाथ में होगा, जिसके सदस्य

---

*राज्य सभा वाद-विवाद, 28 मई, 1956, पृष्ठ 3540—3561

5 से अधिक न होंगे। यह समिति वह सब अधिकार बरत सकेगी जोकि उसे निगम द्वारा सौंपे जायेंगे और वास्तव में निगम के मामलों के प्रतिदिन के शासन के लिये यह समिति ही उत्तरदायी होगी।

खंड 19 का उपखंड (2) एक नियोजक समिति की व्यवस्था करता है, जिसका काम समिति को उसकी निधि के नियोजन के संबंध में परामर्श देना होगा। श्रीमन्, आप मानेंगे कि निगम के नियोजन का विचार रखना, जो कि अब भी 380 करोड़ से अधिक है, और जो कि प्रतिवर्ष बढ़ता ही जायेगा, एक ऐसा कठिन काम है जिसके लिये विशाल उत्तरदायित्व और निर्णयवृद्धि की आवश्यकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह नियोजन पालिसी लेने वालों के हित में ही किये जायेंगे, क्योंकि धन के स्वामी तो वही हैं, परन्तु समाज के हितों का भी उतना ध्यान रखा जायेगा, क्योंकि यह नियोजन किस ढंग से किये जाते हैं, इसका उन पर भी भारी प्रभाव पड़ता है। इसलिये विधेयक में इस बात का विशेष प्रबंध किया गया है कि नियोजन समिति की सदस्यता उन व्यक्तियों के लिये भी खुली हो जोकि वित्तीय मामलों में विशेष ज्ञान रखते हैं, भले ही वह निगम के सदस्य न हों। इस नियोजन समिति के अतिरिक्त और समितियां भी बन सकती हैं जिसके लिए आवश्यक अधिकार उपखण्ड (3) में दिया गया है। यह होगा, केन्द्रीय कार्यालय का ढांचा।

इस केन्द्रीय कार्यालय के अतिरिक्त निम्नलिखित स्थानों में एक-एक क्षेत्रीय कार्यालय खोला जायेगा। अर्थात् बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर और मद्रास में। विधेयक में निगम को बाद में क्षेत्रीय कार्यालय खोलने का अधिकार दिया गया है। यह सुझाव दिया गया था कि तत्काल और क्षेत्रीय कार्यालय खोले जाने चाहियें और यह भी कहा गया था कि संघ के प्रत्येक राज्य में एक-एक क्षेत्रीय कार्यालय खोला जाना चाहिये। बहुत सोच विचार के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि उपरोक्त पांच स्थानों में ही क्षेत्रीय कार्यालय आरम्भ में खोलना अधिक हितकर होगा।

प्रत्येक क्षेत्रीय कार्यालय का अपने विशेष क्षेत्र पर पूरा अधिकार होगा। यह अच्छा होगा, यदि मैं कुछ बता दूं कि इस अधिकार के क्या अर्थ हैं। होने वाले राज्य पुनर्गठन के कारण यह बताना कुछ दुष्कर है कि कौन-कौन से क्षेत्र वर्तमान अवस्था में इन क्षेत्रों में आयेंगे। परन्तु पुनर्गठन के पश्चात् क्या चित्र बनेगा यह बताने की अनुमति हो तो प्रत्येक क्षेत्र का विस्तार इस प्रकार होगा।

उत्तरीय क्षेत्र, जिसका मुख्य कार्यालय दिल्ली में होगा, उस में दिल्ली, राजस्थान का प्रस्तावित नया राज्य, हिमाचल प्रदेश और जम्मू तथा कश्मीर होंगे।

केन्द्रीय क्षेत्र में जिस का मुख्यालय कानपुर में होगा, उत्तर प्रदेश और नया मध्य प्रदेश होंगे।

पूर्वी क्षेत्र में जिस का मुख्यालय कलकत्ता में होगा. असम, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मणिपुर, त्रिपुरा और अन्डमान द्वीप होंगे।

दक्षिणी क्षेत्र में जिसका मुख्यालय मद्रास में होगा, आंध्र का नया राज्य तेलंगाना सहित, मद्रास, केरल और मैसूर होंगे।

अन्त में पश्चिमी क्षेत्र में जिसका मुख्यालय बम्बई में होगा, बम्बई राज्य, उन क्षेत्रों के बिना जो कि मैसूर में मिलाये गये हैं और उन क्षेत्रों के सहित जो कि प्रस्तावित महाराष्ट्र तथा गुजरात के नये राज्यों में सम्मिलित होंगे, अर्थात मराठवाड़ा, महाविदर्भ, सौराष्ट्र तथा कच्छ।

प्रत्येक क्षेत्र एक "क्षेत्रीय प्रबन्धक" के अधीन होगा, जो कि निगम के वह सब कर्तव्य पूरा करेगा जो कि उसे उसके क्षेत्रीय कार्यालय के अधीनस्थ क्षेत्र के लिये सौंपे जायेंगे। ऐसा खंड 22 में दिया गया है। मैं पहले कह चुका हूं कि अपने क्षेत्र में क्षेत्रीय कार्यालय को पूर्ण अधिकार प्राप्त होंगे। किसी खंड द्वारा एक मंत्रणा मंडल के निर्माण का प्रबन्ध किया गया है, जो कि क्षेत्रीय प्रबन्धकों को परामर्श देगा। इस व्यवस्था से निगम को स्थानीय जनता के उत्साह की पूरी जानकारी प्राप्त होती रहेगी।

इसी खंड द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में कर्मचारियों और अभिकर्त्ताओं के दरमियानी संबंधों के लिये एक समिति की रचना भी की जायेगी। यह विचार उड्डयन निगम अधिनियम के अधीन बनायी गयी कल्याणकारी समितियों से लिया गया है। हमने इसमें एक मौलिक परिवर्तन यह किया है कि हमने अभिकर्त्ताओं को प्रतिनिधित्व दिया है। इसीलिए हम इसे कर्मचारी एवं अभिकर्त्ता सम्पर्क समिति कहते हैं। जैसा कि आप जानते हैं, अभिकर्त्ता जीवन बीमा व्यवसाय के एक प्रमुख अंग हैं। वास्तव में तो उन्हें धुरी कहा जा सकता है, इसीलिये उनका इस समिति में लिया जाना अत्यावश्यक है। मुझे निश्चय है कि यह प्रबन्ध निगम के सब वर्गों में यह भावना उत्पन्न करेगा कि वह राष्ट्रीयकरण के लोक-लक्ष्य के लिये कार्य कर रहे हैं।

जहां तक क्षेत्रों का प्रश्न है क्षेत्रों में मण्डल कार्यालय खोले जायेंगे तथा उन के अधीन शाखा कार्यालय और उनके अधीन उपशाखा कार्यालय होंगे। अर्थात सारे देश में कार्यालयों का जाल सा बिछ जायेगा, ताकि प्रत्येक व्यक्ति का निवास स्थान किसी न

किसी कार्यालय के पास ही हो। इससे आप को इस संगठन की मोटी सी रूपरेखा का ज्ञान हो जायेगा। इसके चलाने के विषय में मैं आरम्भ में ही बता दूं कि हमारी इच्छा है कि किसी भी कीमत पर अति केन्द्रीयकरण से परहेज किया जाये। नियोजन जैसे महत्वपूर्ण मामलों मे तो केन्द्र का परामर्श जरूरी है, परन्तु हम यथाशक्ति अधिक से अधिक शक्तियां क्षेत्रीय और मंडल कार्यालयों को सौंप देंगे। यह मंडल कार्यालय तात्कालिक समय के लिये बीमा कम्पनियों के मुख्यालयों का फार्म भरने और दानों आदि सब कामों के लिये उत्तरदायी होंगे।

परीक्षणात्मक से काम इस तरह बांटा जायेगा कि केन्द्रीय कार्यालय, प्रविवरण, किस्तों की दरों, पालिसी की शर्तों, जीवनांकिकी आधारों, पालिसी देने के स्तरों, प्रक्रिया के प्रमापीकरण, कर्मचारी वृन्द के लिये नियमों और नौकरी के लिये शर्तों, नियोजन की नीति तथा वास्तविक नियोजन, लेखा परीक्षा और निरीक्षण का नियंत्रण, राष्ट्रीय प्रचार तथा पुनः बीमाकरण आदि के लिये प्रबन्ध और सामंजस्य से संबंध रखेगा। इस के बाद क्षेत्रीय कार्यालय असाधारण खतरों के लिये विशिष्ट सीमाओं तक अभिगोपन, बड़ी राशियों के मूल्यांकन, जीवनांकिकी अन्वेक्षण, स्थानीय विनियोजन, शाखा कार्यालयों के निरीक्षण और लेखा परीक्षण, क्षेत्रीय प्रचार एवं अन्वेक्षण और योजना कार्य का प्रबन्ध तथा नियंत्रण करेंगे। मंडल कार्यालय भी इसी प्रकार विशेष सीमा तक अभिगोपन, गोपलेख देना और शाखा कार्यालय के नियंत्रण, योजना और कार्यपालक विकास के कार्यक्रम और अभिकर्त्ताओं में प्रशिक्षण का काम करेंगे। यह भी हमारा अन्तिम विचार नहीं है। हमारा ध्येय है, केन्द्रीय समेकन और स्थानीय स्वातंत्रय की व्यवस्था को मिला देना, ताकि दोनों व्यवस्थाओं से लाभान्वित हो सकें।

आगे चलने से पहले मैं कुछ सज्जनों द्वारा उठाये गये एक दो प्रश्नों को लेता हूं। उनका विचार है कि केन्द्रीय तथा क्षेत्रीय समितियों में गोपलेखधारियों (पालिसी होल्डरों) के प्रतिनिधि होने चाहियें। हमने इस पर बहुत विचार किया है, परन्तु हम ऐसा करना व्यावहारिक नहीं समझते। हर एक क्षेत्र में दसियों लाख पालिसी होल्डर हैं और आगे इनकी संख्या और भी बढ़ जायेगी। तो इन लाखों वोटरों से जो कि सब राज्यों में फैले होंगे, वोट लेना कितनी कठिन बात होगी। व्यय इतना होगा कि इससे निगम को अथवा पालिसी होल्डरों को, किन्हीं को भी कोई लाभ नहीं होगा। निजी कम्पनियों की तरह निगम में वर्गीय हितों की टक्कर नहीं होगी, अतः एक प्रकार से निगम के अथवा क्षेत्रीय मण्डल के सब सदस्य ही पालिसी होल्डरों के प्रतिनिधि होंगे।

दूसरा सुझाव यह दिया गया है कि प्रतिद्वन्द्विता की भावना को जागरूक रखने के लिये भारत भर में कई स्वतन्त्र निगम बनायें जायें। यह सुझाव भी अमल के काबिल नहीं

है। जब राज्य ही उत्तरदायी है तो प्रतिद्वन्द्विता कुछ अवास्तविक सी होगी। विभिन्न पालिसियों के लिये विभिन्न दरें आदि नहीं हो सकतीं। विनियोजन के लिए भिन्न-भिन्न नीतियां नहीं हो सकतीं और न सेवा की शर्तें ही विभिन्न हो सकती हैं, तो मुकाबिला एक प्रकार से कमीशन देने की होड़ का रूप धारण कर लेगा और कुछ निगम देहाती क्षेत्रों को, जहां व्यवसाय मुश्किल से मिलेगा, छोड़कर शहरी क्षेत्रों को ही अपनायेंगे। परिणामतः देहाती क्षेत्र परित्यक्त ही रहेंगे, जैसे कि वह अब हैं।

अब विधेयक के मुख्य उपबन्धों को लीजिये। खंड 6 (2) (छ) के द्वारा निगम को अपने सारे अथवा कुछ विदेशी व्यवसाय को किसी एक व्यक्ति अथवा व्यक्तियों को सौंपने का अधिकार है। एक निजी कम्पनी द्वारा ऐसा करने और सरकारी स्वामित्व में आयी कम्पनी द्वारा ऐसा करने में अंतर है। निगम एक स्वतंत्र निकाय होगा। जो व्यावसायिक आधार पर काम करेगा, फिर भी विदेशी लोग या वहां की सरकारें इस अंतर को न समझ पायेंगी। कुछ सरकारें इससे अमित्रता का रुख अपना सकती हैं जिससे विषम स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इसीलिये हमने समझा कि निगम अपने विदेशी व्यापार की चिन्ता से मुक्त हो जाये और इसीलिये इस खंड का प्रबन्ध किया गया। इसके आधार पर किसी भी संसाधन युक्त भारतीय कम्पनी के बारे में, जो अपना कार्य विदेशों में कामयाबी से कर सकती है, विचार किया जा सकता है। खंड 3 द्वारा भारतीय कम्पनियों को विदेशों में नया काम जारी करने की अनुमति दी गई है। हां, भारत में काम एकाधिकार के आधार पर चलाया जायेगा।

अगला महत्वपूर्ण खंड 7 है, जिसके द्वारा पालिसी होल्डरों के नियन्त्रित व्यवसाय की परिसम्पदाओं और देयों को निगम के हवाले किया गया है। खंड 8 इस की शाखा है और इसके द्वारा निवृत्तिवेतनों और इनाम आदि की राशियां निगम के नाम हस्तान्तरण करने का प्रबन्ध है।

अगले खंड 11 और 12 हैं, और वह कर्मचारीवृन्द से संबंधित होने के कारण महत्वपूर्ण हैं। मेरा दावा है कि सरकारी दृष्टिकोण इस विषय में उदार है। उन सब कर्मचारियों को, जो पूरा समय बीमा कम्पनियों के काम में लगाते थे, निगम के राष्ट्रीयकरण से पूर्व की शर्तों पर ही निगम की सेवा में ले लिया गया है।

खंड 11 के उपखंड (2) के अनुसार, केन्द्रीय सरकार को शक्ति दी गयी है कि वह वेतनों का संगतिकरण करे, परन्तु यदि कोई व्यक्ति इस पुनरीक्षित वेतन को स्वीकार न करे, तो निगम उसे तीन महीनों का वेतन और अन्य निवृत्तिवेतन

और उपदान की राशियां, जिनका कि वह करार के अनुसार हकदार हो, देकर सेवा विमुक्त कर सकती है। यह संगतिकरण उन्हीं पदों के लिये अधिक दृष्टिगोचर होगा जो कि इस प्रकार से मुफ्त का वेतन लेने वालों के हैं।

मैंने कई बार स्पष्ट कर दिया है कि जो स्टाफ हमें कम्पनियों से मिला है, वह आवश्यकता से अधिक भी हो, तो भी सरकार की नीति छंटनी की नहीं होगी। इसका सर्वोत्तम हल यह होगा कि व्यवसाय शीघ्र बढ़ाकर सर्वोपयोगी बना दिया जाये। यदि किसी सदस्य को ज्ञात हो कि सारा दिन काम करने वाले किसी बीमा कर्मचारी की छंटनी की गयी है तो उसका मामला हमारे ध्यान में लाया जाये और हम उस पर यथोचित कार्यवाही करेंगे। इस आश्वासन का यह अर्थ लगाया गया है कि निरीक्षकादि क्षेत्रीय स्टाफ करार के अनुसार निश्चित कार्य न करने पर भी सेवा में रखे जायेंगे। ऐसी बात राष्ट्रीयकरण के लिये अथवा अन्य श्रेणियों के कार्यकर्त्ताओं के लिये अति अनुचित होगी।

जो अभिकर्त्ता केवल कमीशन पर काम करते हैं, उनके लिये तो यह बिल्कुल यथार्थ हैं। मैं मेज पर काम करने वाले और बाहर काम करने वालों का अंतर बता दूं। दफ्तर में काम करने वालों को कुछ न कुछ काम सौंपा गया है, इसलिए वह कम काम करते हैं या ज्यादा, यह प्रश्न नहीं उठता। बाहर काम करने वालों को किसी यात्रा में काम लाकर देना होता है। उनकी तो उपयोगिता का आधार ही उनके काम लाने की मात्रा पर होता है।

वे विशेष अभिकर्त्ता (स्पेशल एजेंटों) के रूप में हैं और वेतन के आधार पर रखे गये हैं। इसके प्रतिकूल कुछ भी दावा क्यों न किया जाये, किन्तु मूल व्यवस्था ही यही है। अतः इन निरीक्षकों को बिना इस विचार के कि वे कितना काम लाते हैं, अन्यों जैसी शर्तों पर रहने देना निगम के साथ अन्याय करना होगा। निगम के लिये यह घातक होगा, यदि यह विचार फैल जाये, कि अब घर में बैठे बिठायें काम के बिना ही वेतन मिल सकता है। क्योंकि राष्ट्रीयकरण तो हो ही गया है। मैं यह मानता हूं कि करारों में और आंकड़ों में परिवर्तन के द्वारा हम निजी कम्पनियों की अपेक्षा अधिक सहानुभूति दिखा सकते हैं। सहिष्णुता तो हो सकती है, परन्तु जैसा कि कइयों की इच्छा है, हम इन पदों को विश्राम के पद नहीं बना सकते। यद्यपि निगम मुख्य अभिकर्त्ताओं के आदमियों को सेवा में लेने के लिये बाधित नहीं है तो वह उन्हें अन्य कर्मचारियों की तरह थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ इन प्रबन्धों के परीक्षण के लिये सेवा में ले रहा है। आप मुझसे सहमत होंगे कि यह व्यवहार उदार है।

अब मैं खंड 14 को लेता हूं जो कि पालिसी होल्डरों के लिये बड़े महत्व का है। यह सुझाव दिया गया है कि चूंकि सरकार व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण कर रही है, इसलिये वह और पालिसियों की तरह उन कम्पनियों की पालिसियों के करार की भी गारन्टी करे जो

दिवाले में जा चुकीं हैं। यद्यपि मेरी उन अभागे व्यक्तियों से पूर्ण सहानुभूति है जिन्होंने कि ऐसी कम्पनियों से बीमे कराये हैं तो भी मैं इस सुझाव के सिद्धांत को स्वीकार नहीं कर सकता। इस सिद्धांत के मानने के बाद में अनन्त अड़चनें उत्पन्न होंगी। मैंने उस दिन बैंकों का जिक्र किया था। क्या हम उन सब बैंकों में दिये गये निक्षेपों की अदायगी करें जो दिवालिया हो चुके हैं? सिद्धांत रूप से तो हमारा यह पक्ष है, तो भी क्रिया रूप में हमारा व्यवहार सहानुभूति युक्त होगा। वास्तविक कटौतियां आंकिकी के आधार से बहुत न्यून होंगी बल्कि उस मात्रा से भी कम होंगी, जिन्हें कि पालिसी होल्डर अथवा उनके प्रतिनिधियों को स्वीकार करने का अधिकार है। अर्थात् हमारा रुख सिद्धांत रूप से कड़ा किन्तु क्रियात्मक रूप में उदार होगा।

अगला खंड 15 है, जो निगम को अधिकार देता है कि वह कई अवस्थाओं में सहायता ले सके। निगम को जब निश्चय हो कि पिछले पांच वर्षों में एक बीमा कराने वाले के हितों को प्रबन्ध व्यवस्थापकों ने हानि पहुंचाई है, तो वह इस विधेयक के आधार पर बने अधिकरण के सामने सहायता की मांग कर सकता है। कइयों ने यह आशंका व्यक्त की है कि इससे अन्यों को परेशान किया जा सकता है। परन्तु मैं सदन को विश्वास दिलाता हूं कि यह भय निराधार है। निगम इस अधिकार का प्रयोग उत्तरदायी रूप से करेगा। हम तब तक इसका प्रयोग नहीं करेंगे, जब तक कि पालिसी होल्डरों की बड़ी हानि नहीं होगी और सौदे नाजायज नहीं होंगे।

अब मैं खंड 25 की ओर आता हूं, जिसमें कि निगम के सौदों के लेखापरीक्षण का जिक्र है। वैधानिक स्थिति यह है कि अनुच्छेद 149 के अनुसार के नियंत्रक और महालेखापरीक्षक "ऐसे कर्तव्य पूरा करेगा और संघ तथा राज्यों के या अन्य प्राधिकारी निकाय के लेखों के संबंध में उन शक्तियों को बरतेगा जो संसद द्वारा बनाये गये किसी विधान में प्रविहित होंगी।" इससे स्पष्ट है कि वह संघ के लेखाओं के संबंध में परीक्षा का पूर्ण अधिकार रखता है; किन्तु परिनियत निगमों या ऐसे समवायों के संबंध में, जिनसे सरकार का वित्तीय स्वार्थ हो उसे लेखा परीक्षा का अधिकार स्वतः प्राप्त नहीं है। इसका दायित्व उस पर तभी आता है जब संसद विधि द्वारा ऐसे विहित करे। मैंने यह कानूनी नुक्ता इसलिये समझाया है कि कई व्यक्तियों का विचार है कि निगमों का महालेखा परीक्षक द्वारा लेखा परीक्षण एक वैधानिक आवश्यकता है।

सरकारी क्षेत्र में जो काम की वृद्धि हुई है, उनमें प्रत्येक केस के लिये लेखा परीक्षण का प्रबंध सरकार को करना है। साधारणतया इसके लिये नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक को ही इस कार्य के लिये उपयोगी समझा जाता है जैसा कि इंडस्ट्रियल फाइनेंस कार्पोरेशन के मामले में हुआ है। किन्तु खास किस्म के उपक्रमों के संबंध में विशेषतः वित्तीय स्वरूप

वाले उपक्रमों में वैसा लेखापरीक्षण, जैसा कि महालेखा परीक्षक करते हैं, लोकहित में उपयुक्त नहीं होगा और उससे शायद उत्साह की भावना ही जाती रहेगी और अपने उद्देश्य को ही क्षति पहुंचेगी। असली उद्देश्य तो यह है कि व्यवसाय इस प्रकार चलाया जाये कि जनता के दिल में उसकी साख बड़े और काम में वृद्धि हो। वहां अन्य कसौटियां लागू होंगी केवल लेखा परीक्षा की ही नहीं। इसलिये लोक सभा ने यह फैसला किया है कि यह बात निगम के अधिकारियों के विवेक पर छोड़ दी जाये कि वह धन के विनियोजन के मामले में जैसा मुनासिब समझें व्यवहार करें।

इस अध्याय के अन्य उपबंध हर दो साल में आंकिकी आधार पर मूल्यांकन करने और वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के बारे में है जो कि खंड 29 के आधार पर संसद को अवगत कराने के लिये उसके सामने पेश की जायेगी।

खंड 28 के अनुसार 95% लाभ शेयरहोल्डरों को मिलेगा। केवल 5% ही शेयरहोल्डरों अर्थात् निगम को जायेगा। यह न्यूनतम है। मुझे आशा है कि भविष्य में जब यह हिस्सा बढ़ जायेगा, तो उसी अनुपात से सरकार का भाग कम हो जायेगा।

खंड 35 (1) विदेशी बीमा कर्ताओं के देयों और सम्पदाओं के संबंध में है। इंग्लैड और कनाडा के बीमा करने वालों के रजिस्टरों में बड़ी संख्या में ऐसी पालिसियां हैं जो विदेशी मुद्रा में जारी की गई हैं, जो कि उन विदेशियों की हैं जो कि अस्थायी रूप से भारत में रह रहे हैं। इनमें से कई पालिसियां पहले इंग्लैंड में जारी की गईं और तत्पश्चात भारतीय शाखाओं को हस्तान्तरित की गईं। अन्य भारत में ही चालू की गईं। ऐसी पालिसियों का भारतीय रजिस्टरों से इंग्लैंड अथवा कनाडा के रजिस्टरों में हस्तान्तरित किया जाना एक साधारण बात थी। वास्तव में इन विदेशी पालिसी होल्डरों ने उन कंपनियों को इसलिये चुना, क्योंकि उनका संगठन विश्वव्यापी है और उनकी सेवा संसार भर में उपलब्ध थीं। इनमें से अधिकांश को अपने देशों को लौट जाना था, जहां कि निगम उनकी संतोषजनक सेवा नहीं कर सकता। पालिसी होल्डरों ने प्रार्थना की है कि उनकी पालिसियां मय उनके संचित धन के उनके देश के कार्यालयों को सौंप दी जायें। अनुमान है कि ऐसा व्यवहार कुल विदेशी व्यवसाय का 15-20 प्रतिशत होगा।

इन विदेशी कंपनियों ने एक प्रार्थना और भी की। उन्होंने कहा कि भारत स्थित उनकी सब सम्पदा भारत में उपार्जित नहीं की गई है, अतः भारतीय पालिसी संबंधी देयता को चुकाने के लिए जितना जरूरी हो उतने को छोड़कर शेष सम्पदा को उन्हें अपने जन्मस्थल ले जाने की आज्ञा दी जाये। यह बात भी हमें तर्कसंगत नजर आई और इसलिये यह प्रबंध किया गया है कि भारतीय पालिसी होल्डरों के हितों की रक्षा युक्तियुक्त तथा पर्याप्त रूप से करते हुए समाधिक राशि को वापिस कर दिया जाये। दूसरी अनुसूची में जो

जीवांकिकी आंकड़े दिये हुये हैं, उनके ब्यौरे देकर मैं सदन को उबाना नहीं चाहता। हां, इतना कहता हूं कि जो संचित निधियां ये कंपनियां यहां छोड़ रही हैं, वह उनसे अधिक दृढ़ हैं जोकि अच्छी से अच्छी भारतीय कंपनियों के पास हैं।

खंड 36 द्वारा मुख्य अभिकर्त्ताओं और विशेष अभिकर्त्ताओं से किये गये करारों की समाप्ति का प्रबंध किया गया है, मुख्य अभिकर्त्ता कंपनी के लिये ग्राहक लाते हैं। उनका कार्य क्षेत्र एक जिला से कम नहीं होता और उन्हें अपने अभिकरण द्वारा प्राप्त किये गये व्यवसाय पर कमीशन मिलता है। मुख्य अभिकर्ता निरीक्षक और विशेष अभिकर्ता अपने अधीन नियुक्त करते हैं और उनका खर्चा अपने कमीशन से निकालते हैं। चाहे इस प्रणाली की कितनी ही उपयोगिता हो, राष्ट्रीयकरण के पश्चात इसे कायम नहीं रखा जा सकता। यदि निगम ने बीमा प्रथा को सर्वप्रिय बनाना है तो वह विस्तृत क्षेत्र ऐसे व्यक्तियों के हवाले नहीं कर सकता जिनके ऊपर उसका कोई नियंत्रण नहीं हो। उन्हें रखना एक प्रकार से निजी रूप से बीमा व्यवसाय चलाने की उन्हें आज्ञा देना है। सभा समझ सकती है कि ऐसे कार्यकर्ताओं का बनाये रखना कितना बेतुका है। इसलिये इन मुख्य अभिकर्ताओं (एजेंटों) तथा विशेष अभिकर्ताओं के करार समाप्त कर दिये गये। इन्हें प्रतिकर देने का विषय तीसरी अनुसूची का है। इस खंड के अधीन सब परिधान दोनों सभाओं के समक्ष रखे जायेंगे और ज्यों ही वह प्रकाशित होंगे संसद को आवश्यकता पड़ी तो उन पर पुनः विचार करने का अवसर दिया जायेगा।

अब मैं खंड 43 की ओर आता हूं जो कि बीमा अधिनियम के निगम पर लागू होने के विषय में है। मुझे निश्चय है कि सदन मेरे साथ सहमत होगा कि चाहे निगम पर कोई आंतरिक नियंत्रण की प्रणाली हो या न हो, इसके ऊपर बाहरी नियंत्रण होना अत्यंत आवश्यक है, जो कि निगम के और हर एक व्यक्ति के हित में होगा। हमने सोचा कि इसका सर्वोत्तम उपाय यह होगा कि बीमा अधिनियम के उपबंधों को निगम पर लागू किया जाये। हमारा विचार है कि बीमा नियंत्रक संगठन का जारी रहना भविष्य में निगम के कामों पर नियंत्रण के लिये जरूरी है। यह अधिनियम पहले 160 के करीब कंपनियों पर लागू होने के लिये बनाया गया था। उनके स्थान पर एक ही निगम का बन जाना एक मौलिक परिवर्तन है। इसलिये अधिनियम की हर एक धारा का अध्ययन यह देखने के लिये करना पड़ेगा कि कौनसी धाराओं का निगम पर लागू किया जाना लाभप्रद होगा। धारा 6-क अथवा 7 को छोड़ कर जो कि क्रमशः दत्त पूंजी और निक्षेपों के संबंध में है, आप देखेंगे कि बाकी सब धाराएं ज्यों की त्यों या थोड़े बहुत रूपभेद के साथ निगम पर लागू की गई। ऐसी सारी धारायें जो पालिसी होल्डरों के लाभ की हैं निगम पर लागू की गई हैं। जैसे 47-क जोकि बीमा ग्राहक को अधिकार देता है कि वह बीमा नियंत्रण से शीघ्र झगड़े के निपटारे के लिये प्रार्थना कर सकता है और धारा 113 जिससे कि जब्त न

किये जाने के लाभ दिये गये हैं लागू कर दी गई। परिवर्तन जो भी होंगे, वे अधिनियम द्वारा दिये गये लाभों को कम करने वाले नहीं होंगे।

मैं इस प्रसंग में धारा 44 के उपखंड (2) का उल्लेख करूंगा। यह उन धाराओं में से है, जिनको थोड़ा रूपभेद के साथ लागू किया जायेगा। अभिकर्ताओं (एजेंटों) को यह भय है कि इससे उनके अर्जित अधिकार खो जायेंगे। मैं उन्हें आश्वासन देता हूं कि ऐसा नहीं होगा। अभिकरण की शर्तों में जो परिवर्तन होंगे वह केवल आगे की पालिसियों के संबंध में ही होंगे और वह भी इसी प्रकार के होंगे जो सर्वथा युक्ति संगत होंगे।

अब मैं विमुक्तियों को लेता हूं। इनमें डाक विभागीय जीवन बीमा निधि और अनिवार्य कोटि के बीमे हैं जो कि सरकार ने कर्मचारियों के लाभ के लिये जारी किये हैं। ये एक प्रकार की सुविधाएं हैं, जो राज्य सरकारों ने कर्मचारियों को दे रखी हैं जिन्हें इस कानून द्वारा उड़ा देना ठीक नहीं समझते।

अब मैं खंड 44(ग) और 45 की तरफ आता हूं, जो कि एक ही विषय से संबंध रखते हैं। कई मामलों में बहुत गंभीर किस्म की कुव्यवस्था हुई है जिनके कारण सरकार को धारा 52-क के अधीन प्रशासकों को नियुक्त करना पड़ा है।

ऐसी कार्यवाही ने पालिसी होल्डरों को विनाश से बचा लिया। यह धारा केवल जीवन बीमा कंपनियों पर लागू होती है। किसी विशेष उपबंध के अभाव में एक नियम तिथि के बाद वह निश्चित किस्म की कंपनियां जो जीवन बीमा तथा अन्य बीमे के काम करती हैं, वह सभी जीवन बीमा की कंपनियां नहीं रहेंगी, बल्कि अन्य किस्म की बीमा करने वाली कंपनियां बन जायेंगी और उस दिन से नियुक्त किया हुआ कोई भी प्रशासक इस कंपनी का कार्यवाहक अधिकारी बन जायेगा। यह बात दुखद होगी, क्योंकि इसका अर्थ यह है कि जिन लोगों के हाथों से कंपनियों को बचाया गया था वह उन्हीं के हाथ पड़ जायेंगी और व्यवस्थापकों के विरुद्ध जो भी दीवानी अथवा फौजदारी मुकदमें चल रहे हैं उनमें भारी बाधा पड़ेगी। इसलिये यह प्रबंध किया गया है कि नियत तिथि पर यह प्रशासकाधीन कंपनियां निगम के अधीन न जाकर बाद में उसे हस्तान्तरित होंगी। पालिसी होल्डरों और कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिये पग उठाये जायेंगे।

खंड 48 नियमों के विषय में है इस पर इसके सिवाय और कुछ कहना नहीं है कि ये नियम संसद के समक्ष रखे जायेंगे। अब मैं प्रतिकार का प्रश्न लेता हूं। मैं मानता हूं कि अनुसूची 1 विशेषतया भाग "क" पेचदार मालूम होता है, परन्तु यह इसलिये है कि हम एक ऐसा सूत्र बनाना चाहते थे जो प्रत्येक के लिये न्यायपूर्ण हो। आपस में भारी भिन्नता रखने वाली इतनी कंपनियों पर समान रूप से लगने वाले सूत्र का निर्माण करना कोई सुगम कार्य नहीं था। आप देखेंगे कि इन सब गणनाओं में बाजार दर कहीं दृष्टिगोचर नहीं

हैं। इसका एक व्यावहारिक कारण है, जो यह है कि सब भारतीय मिश्रित कंपनियों और विदेशी कंपनियों से हम उनके कुल काम का एक अंश ही ले रहे हैं। इसलिये उनके बारे में बाजार की कीमतें अगर मालूम भी हों तो उससे हमें कुछ लाभ नहीं होगा। यह कीमतें केवल उस हिन्दुस्तानी बीमा कंपनी के बारे में लाभदायक होंगी जो कि केवल जीवन का काम कर रही हों। इन सब में से केवल दो ही कंपनियां ऐसी हैं कि जिनके शेयरों के मूल्य नियमित रूप से स्टाक एक्सचेंज से घोषित किये जाते हैं। इनके मूल्य भी विगत कुछ वर्षों से वास्तविक कीमत के अतिरिक्त और बातों से प्रभावित होते रहे हैं।

पहली अनुसूची तीन भागों में विभक्त है। भाग "क" स्वामित्व रखने वाली बीमा कंपनियों से संबंधित है, जिन्होंने कि अभी भी लाभ घोषित किया और उसे अपने पालिसी होल्डरों में वितरित कर दिया। भाग "ख" उनके विषय में है जो घाटे में रही अथवा नाम मात्र का लाभ उन्होंने घोषित किया। भाग "ग" पारस्परिकों, सहकारिताओं और अपंजीकृत निकायों के बारे में है। भाग "ग" सब से मुख्य है। **यद्यपि** इस भाग के अंतर्गत 79 कंपनियां ही आती हैं (60 भारतीय, 10 विदेशी और 9 भविष्य निधि की) पर देश का अधिकांश बीमा काम इन्होंने ही किया है इसलिए इन्हीं को ज्यादा प्रतिकर देना होगा। इस भाग में प्रतिकर का सिद्धांत यह है कि अंशधारियों (शेयर होल्डरों) को कमाई की हानि के लिये पहले के अनुमाप पर ही प्रतिकर दिया जाये। इसलिये इस समस्या के दो भाग हैं। प्रथम यह कि अंशधारियों की पहले की औसत कमाई को तय करना और दूसरी यह कि उचित ब्याज सहित आंक कर समतुल्य पूंजी रकम को निर्धारित करना।

औसत सालाना कमाई का भी वही हाल है जो अन्य व्यवसाय का, अर्थात कभी अच्छा कभी मंदा। इसलिये छः वर्षों की औसत निकालना ठीक समझा गया और सब कंपनियों के समान व्यवहार के लिये यह काल 1950-55 का रखा गया। परन्तु जहां इस व्यवस्था में खूबियां थीं वहां कठिनाइयां भी थी। 1950-55 की अवधि के आय के ठीक ठीक निर्धारण के लिये यह जरूरी था कि अवधि के आरंभ और अंत में, यानी 31 दिसम्बर, 1949 को और 31 दिसम्बर, 1955 को, इनकी क्या कीमत थी यह निर्धारित किया जाये। पर दिसम्बर, 1949 का मूल्य बहुत कम कंपनियों का ही आंका गया था और दिसम्बर 1955 का मूल्यांकन कराने में कठिनाई यह थी कि हमें अपना सारा ध्यान मुख्य काम से हटाना पड़ता जो हम कर नहीं सकते थे। इसलिये ऐसे तरीके की तलाश की जिससे बिना नये तौर से मूल्यांकन कराये हम शेयर होल्डरों को इस 6 साल अवधि के लाभ को जहां तक हो सके लगभग ठीक ठीक आंक लें। इसका यह हल निकाला गया कि विगत मूल्यांकन में शेयर होल्डरों को जो भी औसत वार्षिक लाभ बैठा हो (मूल्यांकन जिस अवधि को भी लेता हो), उसे व्यवसाय की औसत वृद्धि के अंक से गुणित किया जाये। हम यह नहीं कहते कि यह तरीका सोलह आने सही तरीका होगा

किन्तु हम यह जरूर महसूस करते हैं कि वर्तमान स्थिति में इस तरीके को हम समुचित रूप से एक वैज्ञानिक तरीका और बहुत ही उपयुक्त तरीका मान सकते हैं।

अंशधारियों (शेयर होल्डरों) के देयों का विचार करते समय हमने इंसाफ की खातिर कुछ परिवर्तन किये। बीमा अधिनियम के अनुसार जीवनांकिकी-मूल्यांकन के समय जो लाभ बनाया गया है, उसका $7\frac{1}{2}\%$ अंशधारियों को वितरित किया जा सकता था और अधिकांश कंपनियों ने ऐसा ही किया। परंतु कुछ ने अपनी जिम्मेदारियों के संबंध में समझदारी का दृष्टिकोण अपनाया और अंशधारियों को इससे बहुत कम दिया। अब प्रतिकर को $7\frac{1}{2}\%$ के आधार पर रखने का अर्थ होगा संकुचित दृष्टिकोण अपनाने वाले अंशधारियों (शेयर होल्डरों) को पुरस्कृत करना और उन अंशधारियों को दण्डित करना, जिन्होंने पालिसी होल्डरों के हित के प्रति समुचित ध्यान दिया। इससे बचने के लिए हमने लाभ का एक नियत प्रतिशत देना तय किया। हमें इस तरीके को त्यागना पड़ा क्योंकि हिस्से वास्तविक आवंटन के आधार पर बेचे और खरीदे जायेंगे। इसलिये हमने अधिकतम 5% और न्यूनतम $3\frac{1}{2}\%$ की सीमा रखी। यदि कोई कम्पनी 5% से अधिक देती है या वह $3\frac{1}{2}\%$ से कम देती है तो भी वह माना जायेगा कि आंवटन 5% और $3\frac{1}{2}\%$ का ही हुआ है। मुझे आशा है कि सदन मुझ से सहमत होगा कि यह एक अच्छा निबटारा है।

1950-55 के काल के लिये अंशधारियों के लिये औसत वार्षिक आंवटन निर्धारित करने के पश्चात हमें प्रतिकर के आंकड़ों का हिसाब लगाना है। यदि हम 5 प्रतिशत ब्याज की दर लगायें तो परिवर्तनीय अंश 20 वर्षीय क्रय हो जाता है और मुझे फिर इस परिस्थिति में यह एक अच्छा हल प्रतीत होता है।

अंशधारियों को उनके अंशों का नुकसान का प्रतिकर देने के बाद निगम को अधिकार होगा कि दत्त पूंजी को अपनाये। इसका अनुसूची में विशेष उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि यह पहले ही खंड 7(1) में दिया हुआ है।

बड़ी कंपनियों के लिये तो यह समाधान ठीक हुआ परन्तु छोटी कंपनियों के लिये ऐसा नहीं था, क्योंकि वहां अंशधारियों को 20 वार्षिक आवंटनों की राशि से दत्त पूंजी कम पड़ती थी। यदि उन्हें दिवालिए में लिया जाता अथवा उनके व्यवसाय दूसरी कंपनियों को हस्तान्तरित किये जाते तो उनकी पूंजी भी सुरक्षित रहती और मूल्यांकन लाभ में से भी कुछ मिलता। इसलिये सदन यह स्वीकार करेगा कि वह प्रबंध, जिससे कि उनकी अवस्था दिवालियापन से भी बिगड़ जाये ठीक नहीं है। हमने उन्हें "ख" श्रेणी में जाने का अधिकार दिया, परन्तु इससे भी झगड़े और विलंब होंगे, क्योंकि सम्पदाओं का ध्यानपूर्वक मूल्यांकन करना होगा। अतः यह प्रबंध किया गया कि ऐसी कंपनियों को अधिकार दिया

जाये कि वह अंशधारियों के वार्षिक आवंटनों का 10 गुना लें तथा उन्हें पूंजी रखने का भी हक हो।

अब भाग "ख" की स्वामित्वाधिकार रखने वाली कंपनियों को लीजिये, जिन्होंने कि अंशधारियों को देने लायक लाभ की घोषणा नहीं की। इसका साधारण आधार यह रखा गया कि प्रतिकर इस आधार पर हो कि "सम्पदाओं से दायित्व निकाल कर" जो बचे। अनुसूची में ही सम्पदा और देयों के मूल्यांकन के सिद्धांत दिये हुए हैं। इसमें यह प्रावधान भी है कि यदि जीवन बीमा कोष का मूल्यांकन अधिक्य दर्शाता है तो इस अधिक्य का 96 प्रतिशत पालिसीधारकों को जाएगा और शेष 4 प्रतिशत शेयरधारकों को जाएगा।

जबकि इस भाग के अन्तर्गत आने वाले अन्य स्वामित्व **बीमाकर्ताओं** को देय मुआवजे का यह आधार है, विस्थापित **बीमाकर्ताओं** के लिए एक विशेष प्रावधान किया गया है। इस साधारण सिद्धांत के अतिरिक्त, विस्थापित बीमा व्यवस्था वालों के लिए विशेष प्रबंध किया गया है। उन्होंने प्रार्थना पत्र भेजा कि 1947 के विभाजन से उन्हें क्षति हुई और इसी कारण से वह लाभ घोषित करने (और इस प्रकार भाग "क" के अधीन प्रतिकर लेने) के अयोग्य हो गये। यर्थाथ रूप से उनके लिये कोई भी विशेष सहायता सरकारी राजस्व से मिलनी चाहिये और निगम से दिलवाने का कोई भी आधार नहीं है। तो भी निगम कुछ परिसम्पदाओं और दायित्वों को ले रही है। प्रतिकर वर्तमान स्थिति पर निर्भर रहेगा। यह भी सोचा गया कि एक अनुग्रहरूप में राशि का देना असंगत नहीं होगा।

यह अनुग्रह राशि इस प्रकार निर्धारित की जायेगी, विधेयक में दिये गये विभिन्न मदों के अंतर्गत जो क्षति पाकिस्तान में हुई है वह जीवन बीमा निधि (और परिसम्पदाओं में भी) में जोड़ दी जायेगी और इन संशोधित आंकड़ों के आधार पर प्रतिकर को फिर से चालू तरीके से आंक दिया जायेगा। साधारण तरीके से और संशोधित आधार पर आंके गये आंकड़ों के अंतर का आधा अथवा दत्तपूंजी का आधा, जो भी न्यून हो, अदा किया जायेगा।

अब मैं "ग" भाग को लेता हूं। इसके अधीन पालिसी होल्डरों को प्रतिकर देना है और यह राशि उन्हें दी जाने वाली निश्चित की हुई लाभ की राशि में कुछ वृद्धि कर देने से बन जायेगी।

प्रथम अनुसूची की बातें यहां समाप्त होती हैं।

मेरे विचार से मुझे द्वितीय अनुसूची के प्रबंधों पर बहुत समय नहीं लगाना चाहिये क्योंकि इसमें वह सिद्धांत दर्ज है जिनके आधार पर विदेशी कंपनियों की "अतिरेक परिसम्पदाओं" का मूल्यांकन करने के लिये पालिसियों का मोल लगाया जायेगा। मुझे

मूल्यांकन आधार की पेचीदगियों में जाने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही कहना है कि इस अनुसूची में निर्धारित आधार पर चलने से संचित उससे कहीं ठोस होगी जो प्रमुख भारतीय कंपनियों द्वारा अपनाये गये आधार पर चलने से बनती।

अब मैं तृतीय अनुसूची की तरफ आता हूं जो कि मुख्य अभिकर्ताओं और विशेष अभिकर्ताओं को प्रतिकर देने के बारे में है। मुख्य अभिकर्ताओं के करारनामे भंग कर देने के कारण मैं पहले बयान कर चुका हूं। इन अभिकर्ताओं को ओवर राइडिंग कमीशन मिलता था, जो कि सारी कमाई ही न थी, क्योंकि इसमें से उन्हें निरीक्षकों और विशेष एजेंटों को वेतन आदि देने होते थे। उनके करारनामे 10 वर्ष से कम के नहीं थे। सब कुछ सोच कर यह समझा गया कि हम उनसे बड़ी उदारता का व्यवहार करेंगे, यदि उन्हें उनके ओवर राइडिंग कमीशन का 75 प्रतिशत दे दें। जो कि अन्यथा वह 10 वर्षों में लेते। विशेष अभिकर्ताओं को अपनी वार्षिक आय का आठवां भाग कई वर्षों तक मिलता रहेगा।

श्रीमन्, यह प्रयास जो सरकार करने जा रही है वह आकार की दृष्टि से बहुत विशाल है और राष्ट्र के आर्थिक विकास की जो योजनायें हैं उनकी सफलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालता है। मैं अंतिम व्यक्ति हूंगा जो यह कहेगा कि अनुभव के आधार पर बाद में हमें इस विधान में कोई सुधार नहीं करना पड़ेगा। परन्तु मुझे निश्चय है कि हमारे पास एक ऐसे संगठन का उपकरण है, जिसके द्वारा कि हम सब का आरंभ में ही हार्दिक सहयोग प्राप्त कर लेंगे।

II

संवैधानिक और संसदीय मामले 12

राष्ट्रपति के अभिभाषण पर धन्यवाद प्रस्ताव*

राष्ट्रपति के अभिभाषण ने हमारा ध्यान आर्थिक परिस्थिति की कठिनाइयों की ओर आकर्षित किया है जो हाल की अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं से और भी गंभीर हो गई है। इसमें निरंतर सतर्कता बरतने विशेषकर मूल्यस्तर के संबंध में सतर्कता बरतने और सरकारी खर्च में यथासंभव अधिकतम कटौती करने तथा जनता द्वारा खर्चों पर संयम बरतने की आवश्यकता का उल्लेख किया गया है।

प्रो० के०टी० शाह के अनुसार योजना आयोग की नियुक्ति करने या देश के व्यापार संतुलन को बेहतर बनाने के बावजूद सरकार स्थिति से निपटने में पूरी तरह से असफल रही है। इस संबंध में पंडित हृदय नाथ कुंजरू के विचार प्रोफेसर शाह के विचारों से मेल खाते हैं और उन्होंने इस बात पर खेद व्यक्त किया है कि इस स्थिति, जिसको उन्होंने तीव्र गति से बिगड़ती आर्थिक स्थिति की संज्ञा दी है, से निपटने के लिए निकट भविष्य में सरकार का क्या कदम उठाने का विचार है, इसके बारे में कोई संकेत नहीं दिया गया है। उन्होंने योजना आयोग द्वारा इस मामले में कोई भी सहायता न दिये जाने पर निराशा व्यक्त की है। श्री महावीर त्यागी ने शिकायत की है कि सरकार की योजनाओं में ग्रामीण क्षेत्रों के प्रति उपेक्षा बरती गई हैं और उनका विश्वास है कि प्रयास करने से सरकारी खर्च में 100 करोड़ रुपये की बचत की जा सकती है। श्री गोयन्का ने अभी अवमूल्यन समिति के संबंध में अनेक शिकायतें की हैं। श्री गोयन्का के भाषण पर तो मैं अलग से चर्चा करना चाहूंगा लेकिन उनके अतिरिक्त मैंने सभी भाषण ध्यान से सुने लेकिन उनमें आर्थिक स्थिति में गंभीर गिरावट के मौलिक दावे के समर्थन में मुझे कोई ठोस दलील नजर नहीं आई। प्रो० शाह ने साफ तौर पर स्वीकार किया कि वे खाद्य पदार्थों, की स्थिति संबंधी तथ्यों के बारे में निश्चित नहीं हैं।

---

*अन्तरिम संसद वाद-विवाद, 2 अगस्त, 1950, का 200-212

पंडित कुंजरू ने 6 जून और 8 जुलाई के बीच खाद्य पदार्थों के मूल्य सूचकांक में वृद्धि और तिलहन के मूल्यों में असाधारण वृद्धि का उल्लेख किया है और पंडित कुंजरू और प्रो० शाह दोनों ने, अपर्याप्त औद्योगिक उत्पादन का भी उल्लेख किया है।

मेरा निवेदन है कि प्रस्तुत साक्ष्य यह प्रमाणित नहीं करते कि आर्थिक स्थिति तेजी से बिगड़ती जा रही है या यह कि सारा दोष, यदि कोई है, पूर्ण रूप से सरकार का है। मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि आर्थिक स्थिति कठिन है किन्तु मैं इसे निराशाजनक नहीं समझता। न ही मैं यह मानने को तैयार हूं कि सरकार निष्क्रिय तथा उदासीन है या फिर इस संबंध में सरकार की नीति अस्थिर या असमन्वयकारी रही है। स्थिति को इतना भयावह समझने का मुझे कोई कारण नजर नहीं आता। हम क्यों उन आशाजनक पहलुओं को भूल जातें हैं जिनसे निराशा दूर हो सकती है। रत्ती भर तथ्य ढेर सारे सिद्धान्तों से बेहतर हैं। आइये हम स्थिति के कुछ तथ्यों पर विचार करें।

थोक मूल्य सूचकांक लगभग वर्ष के पूर्वार्ध के दौरान अवमूल्यन पूर्व के स्तर को दर्शाते हैं। सदन को यह बात दिलचस्प लगेगी कि दिसम्बर, 1940 से जून, 1950 तक भारत में मूल्य सूचकांक में 3.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। इसी दौरान बर्तानिया में मूल्य सूचकांक में 7.2 प्रतिशत और अमेरिका में 15.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

मैं इस संबंध में आपके समक्ष कुछ विस्तृत आंकड़े देना चाहूंगा। मेरे पास नियंत्रण हटाये जाने के समय से मूल्य सूचकांक दर्शाने वाला एक विवरण है। यह सूचकांक थोक मूल्यों का साप्ताहिक सूचकांक है और इसका स्रोत आर्थिक सलाहकार का कार्यालय है। जनवरी, 1950 में खाद्यान्नों का मूल्य सूचकांक 454 था और जून, 1950 को यह 455 था। जनवरी 1950 में खाद्य पदार्थों का मूल्य सूचकांक 385.3 था और 10 जून को यह 399.6 था। औद्योगिक कच्चे माल का जनवरी में मूल्य सूचकांक 490.3 था और 10 जून को यह 493.5 था। अर्धनिर्मित वस्तुओं का जनवरी में मूल्य सूचकांक 337.3 जब कि जून में यह 335.8 था। निर्मित वस्तुओं का जनवरी में यह 355.4 था जब कि जून में 348.1 था। दूसरी तरफ प्रकीर्ण वस्तुओं, जिसमें बहुत सारी वस्तुयें आती हैं, का सूचकांक 619 से बढ़कर 699.3 हो गया और सभी वस्तुओं का मूल्य सूचकांक 388 से बढ़कर 395.4 हो गया।

यह सत्य है कि जुलाई, 1950 के प्रथम तीन सप्ताह में 24 जून को समाप्त

होने वाले सप्ताह के आंकड़ों के मुकाबले 2.5 अंकों की वृद्धि हुई। लेकिन मैं समझता हूं इसके वही कारण हैं जो कि मेरे माननीय मित्र ने गिनाये हैं और जमाखोरी, सट्टेबाजी और मुनाफाखोर भी इसका कारण हो सकते हैं। यह चिरस्थाई समस्याएं हैं और हम अपने आपको जोखिम में डालकर शायद उन्हें हल करने में सफल न हों। उन्हें सप्ताह या पक्षावधि में हल करने की मांग करना निश्चित तौर पर बहुत ज्यादा अपेक्षा करना है।

मैं यह कहूंगा कि मंत्रीगण भी मनुष्य हैं, चमत्कारी मनुष्य नहीं। हम इस बात को मानते हैं कि हमारे नियंत्रण से बाहर जो कारण हैं शायद उनसे विपरीत परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है और ऐसी भयानक स्थिति से निपटने के लिये ठोस उपचार की आवश्यकता होगी। लेकिन सरकार को उचित सुधारक कदम उठाने के लिये कुछ और समय न देना निश्चय ही अनुचित होगा। हो सकता है स्थिति से निपटने के लिये सरकार को विशेष आपातकालीन अधिकारों की आवश्यकता हो।

इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिये कि कुछ महत्वपूर्ण कार्य क्षेत्रों में राज्य सरकारों को कार्यवाही करने का अधिकार है और उनके साथ विचार-विमर्श करने के पश्चात् कुछ उपाय करने के लिये थोड़ा बहुत समय तो चाहिये ही।

जहां तक आर्थिक क्षेत्र के संबंध है, मेरा विचार है कि आर्थिक प्रवृत्तियों पर दृष्टि रखने वाला कोई भी व्यक्ति यह कहेगा कि निश्चित तौर पर स्थिति में सुधार हुआ है और विश्वास लौटने के संकेत मिल रहे हैं। मेरा संकेत केन्द्रीय सरकार द्वारा चालू वर्ष में जारी किये प्रथम ऋण के संबंध में हुई प्रतिक्रिया से है। मैं समझता हूं कि ऐसा पहली बार हुआ है जबकि हमने इतनी नकदी प्राप्त की है।

यह एक परिवर्तनीय ऋण था न कि नियमित ऋण और इस दृष्टि से हमने जो साढ़े सात करोड़ रुपये नकद प्राप्त किये हैं इसे संतोषजनक ही माना जायेगा।

इसके अलावा सदस्यों ने यह रिपोर्ट भी पढ़ी होगी कि जो प्रादेशिक ऋण अभी कुछ दिन हुए जारी किये गये थे, उनके प्रति अच्छी प्रतिक्रिया देखने में आई, लोगों ने उनमें अच्छा अंशदान किया। यह चीज भी गत वर्ष की घटना के बिल्कुल विपरीत है जब कि केवल एक प्रदेश कुछ ऋण प्राप्त करने में सफल हो पाया था। मैं समझता हूं कि यह कुछ आशाजनक तथ्य है।

प्रो॰ शाह ने भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी खाद्य पदार्थ का उल्लेख किया है। इस मुद्दे पर इस समय इस बात के सिवा मैं कुछ और नहीं कहना चाहूंगा कि कुछ लोगों द्वारा प्रदर्शित पराज्यवादी मनोवृत्ति को देख कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है। ऐसा शायद इसलिए है कि बुवाई के समय हमें कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है

लेकिन मैं समझता हूं कि ऐसा तब तक होता रहेगा जब तक कि मानव स्वभाव उसमें आसक्त है। लेकिन यदि हम प्रशासन को बेहतर बनाना चाहते हैं, इसमें सुधार करना चाहते हैं और मैं जानता हूं कि मेरे माननीय मित्र इस बात को बहुत महत्व देते हैं—तो खाद्य उत्पादन की एक ऐसे स्तर तक वृद्धि करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिये जहां पर हम उचित समयावधि में नियंत्रण के बिना काम चला सकें। इस संबंध में मैं केवल इतना कहना चाहूंगा कि मेरे माननीय मित्र हमेशा सक्रिय रहते हैं। निष्क्रियता के लिए उनके पास कोई स्थान नहीं है।

जहां तक औद्योगिक उत्पादन का संबंध है अधिष्ठापित क्षमता में कमी के अनेक कारण हैं और मैं आपको आश्वासन देता हूं कि उसके कारणों की जांच चल रही है और इस कार्य के लिए योजना आयोग से निकट परामर्श द्वारा समुचित तंत्र की व्यवस्था की जा रही है। तथापि यह प्रक्रिया निश्चय ही लम्बी और जटिल होगी और हर कदम पर हमें पर्याप्त वित्तीय सुविधाओं के साथ-साथ मजदूरों और नियोक्ताओं के सहयोग की आवश्यकता पड़ेगी। अभी कुछ दिन पूर्व कई प्रमुख उद्योगपतियों के साथ इस पर तथा इससे संबंधित समस्याओं पर विचार विमर्श किया गया था जो अत्यंत फलदायक रहा। मैं भी वित्तीय संसाधनों अर्थात औद्योगिक वित्त के लिए अधिक साधन जुटाने का जहां तक मेरा सवाल है, सम्भावनाओं पर रिजर्व बैंक के साथ विचार विमर्श कर रहा हूं। जैसा कि आपको पता होगा मजदूरों की कार्य की परिस्थितियों में सुधार की दिशा में भी कुछ प्रयास किये जा रहे हैं। उपायों के फल सामने आने में कुछ समय लगेगा और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाने के लिये सही समामेलन और जनशक्ति जुटाने में कुछ समय लगेगा।

अयोग्यता के आरोपों का उत्तर देने के लिये वर्ष के प्रथम तीन महीने तक का समय आर्थिक दृष्टि से बहुत कठिन समय रहा बजट अधिवेशन में हुए सरकार की आर्थिक व अन्य नीतियों से संबंधित विस्तृत वाद-विवाद की स्याही अभी सूखी भी नहीं कि नये आरोप न सूझने के कारण सरकार के आलोचकों को ऐसे आरोप लगाने की लालसा हो रही है जो कि उस समय लगाये भी जा सकते थे और उनका उत्तर भी दिया जा सकता था। उदाहरण के तौर पर प्रो० शाह ने आर्थिक समिति की रिपोर्ट को क्रियान्वित न करने का उल्लेख किया। बजट अधिवेशन में ही उन हालात के बारे में पता लगाया जा सकता था जिनके कारण रिपोर्ट में दर्ज सिफारिशें आपातकालीन छंटनी से प्रभावहीन हो गई। वास्तव में, सदन की जानकारी के लिए मैं यह बता देना चाहता हूं कि यदि मितव्ययता समिति की सिफारिशों को पूर्णतया कार्यान्वित किया जाता तो इससे सम्पूर्ण वर्ष में लगभग साढ़े चार करोड़ रुपये की बचत हो जाती। फिर भी वित्तीय संकट को देखते हुए सभी मंत्रालय के स्वीकृत बजट प्राक्कलनों में समान दर पर निश्चित प्रतिशत कटौती की गई थी और इस कटौती के परिणामस्वरूप सिद्धान्ततः साढ़े छः करोड़ से भी अधिक राशि प्रति

वर्ष प्राप्त होने का अनुमान लगाया गया है। दुर्भाग्य से अभी मेरे पास लेखा-जोखा नहीं है और हम यह पता नहीं लगा सके हैं कि क्या यह सम्पूर्ण राशि अथवा इसमें से कुछ राशि बचा ली गई है, क्योंकि इसके समरूप सर्विस के जिन नये प्रस्तावों को आवश्यक समझा गया था, उन्हें स्वीकार कर लिया गया और यह सम्भव है कि जिस बचत का लक्ष्य रखा गया था, उसमें से बहुत कुछ न हुई हो। फिर भी, मैं सदन को यह आश्वासन दे सकता हूं कि मेरी इच्छा इसकी गहराई से जांच कराने की है। मैंने प्रथम तीन महीनों के बजट परिव्यय की समीक्षा कराई थी और इससे जिस रूझान का मुझे पता चला है, उससे मै आश्वास्त हूं कि अपव्यय से बचने तथा छंटनी करने के लिए दुगने प्रयास किये जाने चाहिए। मैं पक्के तौर से यह नहीं कह सकता इन प्रयासों से उस हद तक बचत की भी जा सकेगी अथवा नहीं, जिसकी श्री महावीर त्यागी ने परिकल्पना की है। यहां यह भी स्मरणीय है कि छंटनी का अर्थ अस्थायी तौर पर ही सही, लोगों को रोजगार से हटाना और बेरोजगारी बढ़ाना है। इसलिए इस प्रक्रिया के मानवीय पहलुओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। परन्तु मैं आशा करुंगा कि मेरे इन विचारों के लिये मुझे निर्दयी नहीं कहा जायेगा कि प्रारम्भ में, दुखद पुनः समायोजन के पश्चात् अपव्यय को समाप्त करके और लाभप्रद रोजगार उपलब्ध करके समुदाय को काम मिलना चाहिये। मैंने स्थाई वित्तीय समिति को बजट की स्थिति के बारे में बता दिया है और उनके साथ मेरे इस पहले अनुभव के आधार पर मैं उनसे अधिक सहायता की आशा करता हूं। मेरे पास मंत्रालयों की जांच करने के संबंध में प्राक्कलन समिति द्वारा की गई व्यापक जांच की रिपोर्ट है और इसके संबंध में भी मैं आपसे सहायता चाहूंगा।

कर्मचारियों की छंटनी और अपव्यय से बचने के अलावा बजट की स्थिति सुधारने का दूसरा तरीका संसाधनों में वृद्धि करने के प्रयास ही हो सकते हैं। इस अवस्था में मैं समझता हूं कि सरकार से किसी घोषणा की अपेक्षा करना असामयिक होगा। सामान्यता इस पर वर्ष के अंत में ही विचार किया जाता है। फिर भी, मैं यह कह सकता हूं कि मैं राष्ट्रीय बचत अभियान में प्रगति अथवा इसके अमल पर अधिक से अधिक ध्यान देने जा रहा हूं। मैंने देखा है कि कुछ संगठनात्मक खामियों के कारण इसमें उतनी प्रगति नहीं हो सकी है जितनी होनी चाहिए थी। परन्तु हमने उन खामियों को दूर करने के लिए कदम उठाये हैं तथा बैंकिंग और धन संबंधी मामलों में खूब अनुभवी एक अधिकारी को राष्ट्रीय बचत आयुक्त नियुक्त किया गया है। इस अधिकारी ने कुछ राज्यों का दौरा किया है और मैं यह आशा करता हूं कि कुछ महीनों में मैं राज्यों का एक सम्मलेन बुला सकूंगा। ताकि इस अभियान में उनका समर्थन प्राप्त किया जा सके। मुझे पूरा विश्वास है कि हमारी कुछ ग्रामीण समस्याओं का हल

ग्रामीण क्षेत्र के किसी वर्ग की बचतों के इस्तेमाल में हमारी सफलता पर निर्भर करता है और संयोगवश श्री महावीर त्यागी तथा उपाध्यक्ष महोदय द्वारा उठाये गये प्रश्न का उत्तर भी शायद यही है।

उपाध्यक्ष महोदय ने अनाजों के मूल्य सूचकांक में, जो 1939 में 100 था, 500 तक की वृद्धि का उल्लेख किया है, जबकि वास्तव में यह 455 है। अब इससे पता चलता है कि क्रय शक्ति किस तरह सामान्य रास्तों से गुजरते हुए शहरी क्षेत्रों से ग्रामीण क्षेत्रों में भी पहुंच गयी है। यह सच है कि इसका अधिकांश भाग निष्क्रिय पड़ा है अथवा शायद इसका बेहतर उपयोग नहीं किया जाता है। यही एक समस्या है जिसे केन्द्रीय सरकार को राज्य सरकारों के परामर्श से हल करना पड़ेगा। इस समय विकास योजनाएं कार्यान्वित करने के लिए राज्य सरकारों द्वारा केन्द्र से सहायता की अपेक्षा करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। जबकि केन्द्रीय सरकार पूंजी बाज़ार में बहुत कम पूंजी जुटा सकती है। मेरी समझ से इसका कारण यह है कि इसमें से कुछ धन राज्य सरकारों की पहुंच में ही है और यदि वे प्रयास करें, मेरे कहने का तात्पर्य यह नहीं कि वे इसके वास्ते कर ही लगायें। और यदि वे इस बचत को रचनात्मक कार्यों पर लगाने का प्रयास करें तो ग्रामीण विकास और हमारे कुछ कृषि श्रमिकों के लिए रोजगार उपलब्ध कराने की समस्यायें हल हो जायेंगी।

संसाधनों तथा मुद्रा स्फीति में वृद्धि न हो, इस गरज़ से किये जाने वाले कुशल बजट प्रबंधन के अलावा वस्तुओं की कमी से निपटने तथा इस प्रकार मूल्यों को नियंत्रण में रखने का तरीका यह है कि आयात के लिए विदेशी मुद्रा जुटायी जाये। सदन से यह बात छिपी नहीं है कि यहां नासिक (टकसाल) कोई हल नहीं निकाल सकता है और इस संबंध में हमारे खर्च हमारे द्वारा अर्जित की जा सकने वाली विदेशी मुद्रा की राशि तक ही सीमित रह सकते हैं। अभिभाषण में दिये गये आंकड़ों से सदन को हमारे भुगतान संतुलन में हुए सुधार के बारे में कुछ आभास हो गया होगा। जैसा प्रोफेसर शाह ने कहा है यह एकदम सत्य है कि सुधार की यह स्थिति लम्बे समय तक नहीं रह सकेगी और इस पर निगरानी रखनी होगी। वास्तव में इस चीज को ध्यान में रखकर ही हमने इस विषय पर विचार किया है। हम तो इस वर्ष के पहले छः महीनों में हुई निर्यात वृद्धि का दावा कर रहे हैं, न कि हमारे भुगतान संतुलन में निवल सुधार का। अगले छः महीनों के दौरान इसमें और कमी की जायेगी और इसके अच्छे प्रयोजन के लिए काम किया जायेगा।

इस बीच हमें जो थोड़ा समय मिला, उसका हमने उचित उपयोग किया है। व्यापार संतुलन में हाल में हुए सुधार से हम आवश्यक वस्तुओं के आयात के लिए अधिक विदेशी मुद्रा का आवंटन कर सके हैं तथा विदेशी मुद्रा के इस आवंटन को करते समय हमने वही पुरानी योजना अपनाई है जिसमें औद्योगिक और विकास प्रयोजनों के लिए

आवश्यक सामान को उच्च प्राथमिकता दी जाती है तथा खाद्यान्नों के आयात, रक्षा रेल तथा अन्य प्रयोजनों हेतु आवश्यक सरकारी भण्डारों हेतु उचित प्रावधान करने के पश्चात् ही वाणिज्यिक आयातों के लिए आवंटन किया गया है। सभी की जानकारी के लिए मैं यह बता दूं कि वाणिज्यिक आयातों के लिए किये गये आवंटन में से केवल कुछ भाग ही, जो कुल आयात आवंटन के चार प्रतिशत से अधिक नहीं होता है, उपभोक्ता वस्तुओं के लिए है और शेष आवंटन पूर्ण रूप से उद्योगों के कच्चे माल, अर्द्ध-परिष्कृत सामानों तथा संयंत्रों तथा मशीनरी के लिए है। उपभोक्ता सामान में जो वस्तुएं होती हैं उनमें अधिकतर शिशु दुग्ध आहार, दूध का पाउडर और संघनित दूध, औषध तथा औषधियां और सुपारी जैसी आवश्यक वस्तुएं शामिल हैं, जिन पर राजस्व शुल्क के रूप में राजस्व वसूल किया जाता है। परन्तु जैसा कि मैंने पहले कहा है, इस आवंटन का अधिकांश भाग संयंत्रों तथा मशीनरी, पेट्रोलियम उत्पादों, इस्पात, अलौह धातुओं, कपास, रसायनों, मशीनी औजार, अखबारी कागज, इत्यादि के लिए होता है....। संसद के नवम्बर दिसम्बर सत्र के दौरान अवमूल्यन संबंधी तदर्थ समिति की दो बैठकें हुई थीं और इनमें आठ सूत्री आर्थिक योजना से उत्पन्न समस्याओं पर चर्चा की गई थी। सरकार ने इन दो बैठकों के दौरान हुई चर्चा तथा इनमें दिये गये सुझावों की समीक्षा की और इनमें से जिन सुझावों को स्वीकार किया जा सकता था, उन्हें कार्यान्वित किया गया। बाद में बजट पर चर्चा के दौरान इस विषय पर विचार हुआ और मुझे बताया गया है कि पटसन और चाय पर निर्यात शुल्क लगाने का विशेष प्रश्न वाणिज्य मंत्रालय की अनुदान की मांगों पर चर्चा के दौरान उठाया गया था और वाणिज्य मंत्री ने इस सुझाव पर सरकार के विचारों को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दिया था। तत्पश्चात् यह निर्णय लिया गया कि समिति की बैठक न बुलाई जाये, क्योंकि संसदीय वाद-विवाद के दौरान समिति के सदस्यों तथा अन्य सदस्यों के विचारों का पता चल गया था। यह कारण उचित था, अथवा नहीं, इसमें मैं कुछ नहीं कहूंगा।

अब स्थिति यह है कि कई महीनों के बाद भी अवमूल्यन के तुरंत बाद उत्पन्न हुई विशेष आर्थिक समस्या सामान्य आर्थिक स्थिति का अंग बन गयी है तथा इन्हें पृथक करना आसान काम नहीं है। और जो हो सो हो, "अवमूल्यन समिति" एक अशुभ नाम लगता है, खैर, जब इस विषय का जिक्र हो ही गया है इसलिए मैं चाहता हूं कि सारी स्थिति की समीक्षा करने के लिए इस समिति की एक बैठक बुलायी जाये।

चर्चा के दौरान योजना आयोग के बारे में अनेक बार उल्लेख किया गया। जब से योजना आयोग का गठन किया गया है, मुझे आयोग पर दोषारोपण किये जाने के कारण आश्चर्य हुआ है। यह आरोप केवल उन्होंने ही नहीं लगाया है जो आर्थिक मामलों पर अधिक ध्यान नहीं देते हैं बल्कि उन लोगों ने भी जिन्हें इस विषय में अच्छा ज्ञान है।

आलोचकों का एक वर्ग ऐसा है, जो योजना में विश्वास नहीं करता है। इस संबंध में जवाब देने के लिए यह कोई उपर्युक्त स्थान अथवा अवसर नहीं है। फिर भी, इस संबंध में आलोचना के पहलू पर टिप्पणी किये बिना मैं रह नहीं सकता। योजना का तब कोई उद्देश्य नहीं रह जाता जबकि हमारे पास संसाधन बहुत कम हैं और हमारी आकांक्षाएं बहुत ऊंची। वास्तव में यह परिस्थितियों का ही संयोग है जिनमें अपने अपर्याप्त संसाधनों का अत्यधिक लाभप्रद और संतुलित उपयोग करने के उद्देश्य से नियोजन करना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि योजना के बिना दुरुपयोग की संभावना अधिक हो जाती है।

अन्य वर्ग के आलोचकों ने जिनमें प्रोफेसर शाह और पंडित कुंजरू भी शामिल हैं, आयोग की उपलब्धियों पर निराशा प्रकट की है, इस संबंध में मैं कहूंगा कि इस तरह की आलोचना का कारण योजना आयोग के कार्यकरण तथा आयोजना की तकनीक और उसके प्रभाव की गलत अवधारणा है। प्रोफेसर शाह ने कहा है कि उन्हें यह पता नहीं है कि योजना आयोग की भूमिका क्या है और पंडित कुंजरू को इस बात पर निराशा है कि योजना आयोग ने वर्तमान आर्थिक रूग्णता को दूर करने के लिए कुछ नहीं किया है। मुझे प्रोफेसर शाह के बयान पर आश्चर्य है क्योंकि आयोग के निर्देश-पद प्रकाशित किये गये थे और ये एकदम स्पष्ट हैं। या फिर मैं यह अनुमान लगा सकता हूं कि उन्होंने इन निर्देश पदों का हाल में अथवा गंभीरता से अध्ययन नहीं किया होगा। मुझे यह लगता है कि पंडित कुंजरू ने आयोग नियुक्ति तथा राष्ट्रपति के अभिभाषण के पैराग्राफ 11 में उल्लिखित कठिन आर्थिक स्थिति के बीच अप्रासंगिक संबंध का अध्ययन किया है। मैं इस समय आयोग के निर्देश-पदों को पढ़कर सदन का समय नष्ट नहीं करना चाहता हूं परन्तु इतना अवश्य कहना चाहता हूं कि आर्थिक पृष्ठभूमि की समीक्षा, उद्देश्यों को परिभाषित करना, कितनी ही अलग-अलग क्षेत्रों में उत्पादन की समीक्षा करना, संसाधनों विशेषकर वित्तीय संसाधनों का सर्वेक्षण करना तथा व्यवहारिक योजनाएं तैयार करना एक बहुत ही जटिल कार्य है। उनके निष्पादन के लिए विस्तृत सांख्यिकीय आंकड़ों की आवश्यकता है जिसके संग्रहण में समय लगता है एवं विशेषज्ञ सहायता की आवश्यकता होती है।

मैंने अपने माननीय दोस्त* को ठीक से सुना नहीं होगा कि आयोग के कार्य परिश्रम और उत्साह से कर रहा है — मैं योजना आयोग के सदस्य तथा वित्तमंत्री के रूप में पर्याप्त साक्ष्य दे सकता हूं क्योंकि मुझे भी इसमें काफी समय देना पड़ता है। मैं आयोग के आलोचकों से इसे एक मौका देने का अनुरोध करता हूं। अगर वे चाहें तो वे अपना

---

*श्री एच०एन० कुन्जरू

कोई भी रचनात्मक सुझाव दे सकते हैं और विश्वास है कि इस प्रकार की सकारात्मक सहायता का आयोग द्वारा स्वागत किया जाएगा। सहिष्णुता, धैर्य और समझ का प्रदर्शन करते हुए वे किसी भी कीमत पर नकारात्मक रूप में सहायक हो सकते थे.....।

उन्हें चाहिए कि योजना आयोग को पूर्वाग्रह से रहित वातावरण में कार्य करने दें अन्यथा योजना आयोग जो भी योजना बनायेगा उन्हें पहले से ही व्यर्थ समझा जाने लगेगा। अतः जनता में यह विश्वास पैदा किया जाना चाहिए कि यह उनके लिए ही बनाई जा रही है।

सरकार की आर्थिक नीति के मुख्य उद्देश्यों को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है :—

(i) मुद्रास्फीति पर नियंत्रण के लिये सुदृढ़ वित्तीय और मौद्रिक नीति अपनाना।

(ii) विशेष रूप से आर्थिक प्रयत्नों में किसी भी प्रकार की ढील न देना।

(iii) पड़ोसी देशों के साथ हमारे राजनैतिक और आर्थिक सम्बन्धों के कारण हमारी अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले दबाव को समाप्त या कम करने के लिए प्रयत्न करना।

(iv) अनाज, कपास और पटसन में आत्म-निर्भरता के लिए सार्थक योजना पर जोर देना।

(v) औद्योगिक उत्पादन में अधिक वृद्धि के लिये अनुकूल परिस्थितियां पैदा करने के भरसक प्रयत्न करना।

(vi) यथा संभव ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने में सहायता करना।

(vii) मूल्य संबंधी सतर्कता और मूल्य नियंत्रण के लिए संवैधानिक और प्रशासकीय संसाधनों के अन्तर्गत उपाय करना; और

(viii) देश के सीमित संसाधनों का यथासंभव सर्वाधिक लाभपूर्ण ढंग से उपभोग करने के लिए योजनायें बनाना।

मैं यह कहना चाहता हूं कि सरकार शक्ति और निष्ठा से इन कार्यों को सम्पन्न कर रही है तथा इसमें सभी वर्गों से समझदारी-भरा सहयोग चाहती है, तीखी आलोचना नहीं।

संविधान (दसवां संशोधन) विधेयक, 1956*
(अन्तर-राज्यीय विक्रय और क्रय पर कर के सम्बन्ध में)

मैं प्रस्ताव करता हूं

"कि संयुक्त समिति द्वारा यथा सूचित भारत के संविधान में पुनः संशोधन करने वाले विधेयक** पर विचार किया जाये"

संयुक्त समिति ने सिफारिश की है कि लोक सभा में यथा पुरःथापित विधेयक पारित किया जाये। यह निष्कर्ष इस सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण पर व्यापक विचार-विमर्श के पश्चात सामने आया है और इसलिए यह कहना सही नहीं है कि समिति में पूरी सहमति थी। विशेष रूप से समिति में अधिकांश सदस्यों का यह विचार था कि यदि सरकार 1952 के आवश्यक वस्तु अधिनियम के तहत जीवन की आवश्यक वस्तुओं पर विक्रय कर लगाने के बारे में अर्थात 1952 के आवश्यक वस्तु अधिनियम के प्रावधनों के बारे में, विशेष रूप से जिन्हें जीवन की आवश्यकतायें कहा गया है के बारे में हस्तक्षेप करने का अधिकार अपने पास रख लेती, जैसाकि आज कर सकती है, तो यह अधिक संतोषजनक होता। इस मुद्दे पर अनेक सदस्यों ने अपने टिप्पणों तथा विमत टिप्पणों में न्यूनाधिक रूप में बल दिया है। इस अवस्था में मैं सदन के समक्ष कुछ मुख्य मुद्दों को चर्चा के लिए रखना आवश्यक समझता हूं।

मैं माननीय सदस्य की चिन्ता को समझ सकता हूं कि इस विधेयक में राज्यों द्वारा आम आदमी के उपभोग की वस्तुओं पर अत्यधिक विक्रय कर लगाने की संभावनाए हैं। इस चिन्ता को समझना भी सुगम है क्योंकि यह सदन स्वयं को आम आदमी का जबरदस्त हिमायती मानता है। इस प्रकार की संवेदनशीलता, के होते हुए भी मैं

---

*लो०स० वाद-वि०, 29 मई, 1956 का० 9874—9880, 9947—9954

**अन्तर्राज्यीय विक्रय एवं क्रय कर पर करों सम्बन्धी कुछ अनियमितताओं को दूर करने के उद्देश्य से अनुच्छेद 269 और 286 तथा सातवीं अनुसूची में संशोधन के लिए।

माननीय सदस्यों से वर्तमान स्थिति पर निष्पक्ष होकर विचार करने का अनुरोध करता हूं कि यदि परिस्थितिवश परिवर्तन करना पड़ा तो हम उसे करेंगे।

इस समय संविधान में इस बात की व्यवस्था है कि संसद द्वारा किसी समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक घोषित की गई वस्तुओं पर किसी राज्य का कोई कराधान कानून तभी प्रभावी हो सकता है जब उसे राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल गई हो। तथापि, इस प्रावधान के बारे में याद रखने वाली बात यह है कि उन कानूनों पर नहीं लागू होता जिन्हें संसद द्वारा किसी समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की घोषणा से पहले ही पारित कर दिया गया हो। मेरे लिए उन राज्यों की सूची देना आवश्यक नहीं जहां यह कानून तब लागू थे और लागू हैं कि उनके अन्तर्गत कौन-कौन सी सम्बद्ध वस्तुएं हैं, निर्धारित दरें क्या हैं तथा कर का स्वरूप क्या है। अर्थात क्या उसे एक स्तर पर अथवा अनेक स्तरों पर लगाया जाता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत चार राज्य ऐसे थे जो खाद्यान्नों पर विक्रय कर लगाने की स्थिति में थे, कुछ अन्य राज्यों ने गुड़ पर कर लगाया आदि-आदि। यह कहना पर्याप्त होगा कि संविधान के इस प्रावधान ने हमें किसी समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक कही जाने वाली वस्तुओं पर विक्रय कर लगाने के बारे में पूरा या निर्णायक नियंत्रण नहीं दिया है। जैसा मैंने कहा कि विभिन्न राज्यों में विभिन्न दरों पर कर लगाये गए हैं ये कर अभी भी संवैधानिक प्रावधान से अप्रभावित हैं। वर्तमान स्थिति की यह पहली सबसे बड़ी कमजोरी थी।

कुछ सीमा तक यह उचित ही कहा जाता है कि संसद ने किसी समुदाय के जीवन के लिए जिन वस्तुओं को आवश्यक घोषित किया था उनमें ऐसी वस्तुयें भी शामिल हैं जिन्हें सामान्यतया आवश्यक नहीं कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, कोई इस तर्क को उचित नहीं मानेगा कि जिस प्रकार खाद्यान्न आवश्यक है उसी अर्थ में सूखे मेवे या चमड़ा आवश्यक है। अन्ततः जबकि राज्य सरकारें उस अधिनियम के प्रावधानों के अतिरिक्त जीवन की आवश्यक वस्तुओं पर कर नहीं लगा सकती और जबकि आवश्यकता परीक्षण को लागू करने के कारण विक्रय कर में किसी प्रकार की वृद्धि पर एक सांविधिक रोक लगा रखी है राज्यों ने इस बात के लिए प्रायः शिकायत की है कि स्वयं केन्द्र सरकार ने जीवन के लिए आवश्यक घोषित की गई वस्तुओं में से कपड़ा और पैट्रोल जैसी कुछ वस्तुओं पर उत्पाद या सीमा शुल्क के रूप में भारी कर लगा रखे हैं। इसलिए यह स्पष्ट है कि इस पूरे प्रश्न की सावधानीपूर्वक जांच करने की आवश्यकता है। कराधान जांच आयोग ने संक्षेप में काफी कुछ यही किया। वे तीन निष्कर्षों पर पहुंचे हैं : पहला यह कि राज्य सरकारों को, जिनमें जीवन के लिए आवश्यक घोषित की गयी

वस्तुएं भी शामिल हैं, के क्रय विक्रय पर कर लगाने का पूरा अधिकार होना चाहिए और दूसरा यह कि विशेष महत्व के कच्चे मालों पर कर लगाने के बारे में कुछ प्रतिबन्ध न्यायोचित हो सकता है, जिस पर कर लगाकर राज्य सरकारें उत्पादित वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि कर सकती हैं चाहे यह उत्पादन उस राज्य में हो, जो कच्चे माल का प्रयोग करता है अथवा किसी दूसरे राज्य में जो उस राज्य से माल का आयात करता है। उस समय आयोग का विचार था कि ऐसा नियन्त्रण अन्तर्राज्यीय व्यापार में कुछ गिनी चुनी विशेष महत्व की सुपरिभाषित वस्तुओं तक ही सीमित होना चाहिए। यदि विस्तार से कहें, तो अन्तर्राज्यीय वाणिज्य में केन्द्रीय कानून द्वारा ऐसी किसी भी वस्तु को विशेष महत्व की वस्तु के रूप में नियंत्रण के लिए न चुना जाये जो कच्चा माल न हो, या विस्तृत रूप से कच्चे माल की प्रकृति की न हो जो कि या तो कच्चे माल के रूप में या इस प्रकार के कच्चे माल के आधार पर निर्मित वस्तु के रूप में, विशेष महत्व के अन्तर्राज्यीय व्यापार की परिधि में न आती हो और अन्त में जो पूरे देश के परिप्रेक्ष्य में उपभोक्ता या उद्योग की दृष्टि से विशेष महत्व की न हो।

इस आधार पर कोयला, लोहा और इस्पात, कपास, चमड़ा, तिलहन और पटसन जैसी छः वस्तुओं को अन्तर्राज्यीय व्यापार में विशेष महत्व की वस्तुओं के रूप में चुना गया था। कराधान जांच आयोग के इस दृष्टिकोण को दूसरी पंचवर्षीय योजना के निर्माण के लिये योजना आयोग को सलाह देने के लिए नामांकित अर्थशास्त्रियों के दल ने भी समर्थन दिया है। उनके ज्ञापन में कहा गया है—

"हम, समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं को राज्य के विक्रय कर लगाने की सीमा की वर्तमान छूट को समाप्त करने के लिए 'कराधान जांच आयोग' की इस सिफारिश का समर्थन करना चाहते हैं कि संविधान की धारा 286 (3) में संशोधन किया जाये।"

सरकार ने इन सिफारिशों को तथा कराधान आयोग के विचार को भी व्यापक रूप से स्वीकार कर लिया है कि विक्रय कर राजस्व के स्त्रोत के रूप में आवश्यक रूप से राज्य कर के रूप में ही बना रहे तथा राज्य सरकार द्वारा लगाया और नियन्त्रित किया जाता रहे। जब एक राज्य का बिक्री कर प्रशासनिक दृष्टि से दूसरे राज्य के व्यापरियों पर और राजकोषीय दृष्टि से दूसरे राज्य के उपभोक्ताओं पर अतिक्रमण करता है तो वहां राज्यों की शक्ति और उत्तरदायित्व का क्षेत्र समाप्त होकर केन्द्र के क्षेत्राधिकार का आरम्भ होता है। यही बात राज्यों के भीतर बिक्री के विषय में है उदाहरणार्थ जिस प्रकार मैंने पहले बताया

कि किसी राज्य में पैदा हुआ कच्चा माल अन्तर्राज्यिक व्यापार में बने हुए माल के रूप में महत्वपूर्ण रूप से उपलब्ध हो। इन परिस्थितियों से उत्पन्न आवश्यकता के लिए और केवल इसी सीमा तक कराधान जांच आयोग ने राज्यों पर नियंत्रण लगा कर केन्द्र द्वारा करारोपण एवं नियंत्रण सम्बन्धी शक्तियों के धारण किये जाने की सिफारिश की है। अन्तर्राज्यिक बिक्री कर को इस योजना को क्रियान्वित करने के लिये ही यह विधेयक तैयार किया गया है। करारोपण इस योजना के स्वीकार किये जाने पर अन्तर्राज्य वाणिज्य एवं व्यापार में आने वाले अत्यधिक महत्वपूर्ण कच्चे माल के सम्बन्ध में कर का भार समान रहेगा तथा यह एकरूप भार भी नियंत्रित प्रकार का होगा अर्थात बिक्री कर निर्दिष्ट वस्तुओं के संबंध में बिक्री अथवा खरीद में एक बार अन्तिम अवस्था में ही लगेगा।

यदि इस सूची में अत्यावश्यक वस्तुओं की वर्तमान सूची से एक दो वस्तुएं और जोड़ जायें तो ऐसा करने से देश का हित होगा और हमें इस बात का पूर्ण आश्वासन हो जायेगा कि तैयार माल को बनाने के लिए अपेक्षित कच्चे माल पर सम्पूर्ण देश में लगभग समान भार रहेगा। वैधानिक संशोधन स्वीकार हो जाने के पश्चात् जब वास्तविक विधेयक संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा तब इस पर विचार किया जायेगा। कराधान जांच आयोग की विस्तृत सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिये हम बाद में एक विधेयक प्रस्तुत करेंगे। उस समय लोक सभा को इस विषय पर चर्चा करने एवं यह निर्णय करने का अवसर मिलेगा कि अन्तर्राज्यिक व्यापार एवं वाणिज्य से विशेष महत्व की वस्तुऐं घोषित करने के लिए क्या सिद्धान्त निर्धारित किये जाने चाहियें तथा कर की दरें क्या हों।

एक और मूल तथ्य है जिसकी हम उपेक्षा नहीं कर सकते। इस प्रकार के वैधानिक संशोधन के लिये अधिकांश राज्यों और उनके विधान मण्डलों की स्वीकृति आवश्यक है।

मैं संविधान की धारा 368 की ओर निर्देश करूंगा। विधेयक जिस रूप में सभा के सम्मुख है हम अनौपचारिक रूप में इसे प्राप्त कर सके हैं और हम बहुत अंश में ऐसा इसलिये कर सके हैं कि यह कराधान जांच आयोग सरीखे विशेषज्ञ निकाय की सिफारिशों का स्पष्ट एव प्रत्यक्ष अनुसरण है। अतः यदि हम इस विधेयक में कोई सारपूर्ण परिवर्तन करें तो हमारे लिये राज्यों से पुनः सहमति प्राप्त करना आवश्यक है। राज्यों से निर्देश करने का क्या परिणाम होगा। मैं इसे पहले से ही नहीं बता सकता और न यह बताना सरल है कि इस प्रक्रिया में कितना समय लगेगा। लेकिन एक बात निश्चित है कि किसी सर्वमान्य समझौते पर पहुंचने में कई महीने लग जायेंगे।

अतः यदि हम राज्य सरकारों को राजस्व की इस विशाल राशि से वंचित नहीं करना चाहते हैं, जो कि अप्रत्यक्ष रूप में अपने आपको ही वंचित करना है जिन पर राज्यों को उनकी विकास योजनाओं में सहायता देने का इतना भार है तो यह लोक सभा का तथा

देश के अन्य विधान मण्डलों का उत्तरदायित्व है। देश की अर्थव्यवस्था के विकास के लिये योजना के साधनों को ढूंढने में हमें समय नहीं खोना चाहिए। यह विषय माननीय सदस्यों द्वारा संयुक्त समिति में उठाया गया था। अतः मैं सभा को यह आश्वासन दे दूं कि अत्यावश्यक वस्तुओं पर बिक्री कर के संबंध में सदस्यों द्वारा प्रकट की गई व्याकुलता तथा चर्चा के दौरान में इस विषय पर सभा में जो भी विचार व्यक्त किये जायेंगे उन सबसे मैं राज्य सरकारों को अवगत करा दूंगा।

जब सदस्यों को वर्तमान स्थिति स्पष्ट हो जायेगी, कि अत्यावश्यक वस्तुओं पर विभिन्न राज्यों में लगाये जाने वाले बिक्री करों पर हमारा कोई प्रभावशाली नियंत्रण नहीं है तथा केन्द्र की वर्तमान शक्तियों को बढ़ाने के लिये किसी संवैधानिक संशोधन के लिये राज्य सरकारों की सहमति प्राप्त करना संभव नहीं है और जब हम निरन्तर बढ़ रहे विकास कार्यों और साधनों की उत्सुकतापूर्ण खोज को दृष्टि में रखें तो यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक है कि इस भार का कुछ भाग जनसाधारण को वहन करना पड़ेगा। यदि माननीय सदस्य इसे स्वीकार कर लें तो वह निःसन्देह इन प्रस्तावों से सहमत हो जायेंगे। मैं यह निश्चयपूर्वक कह सकता हूं कि अन्तर्राज्यिक बिक्री कर को नियंत्रित करने और महत्वपूर्ण कच्चे माल पर राज्य के अन्दर करों का विनियमन करने वाली शक्तियों को प्राप्त किया जाये तो यह संसद की एक महत्वपूर्ण और निर्णायक कार्यवाही होगी।

एक अन्तिम बात मुझे और कहनी है। माननीय सदस्य, हम अनुभव करते हैं कि राज्य सरकारों को वस्तुओं की खरीद और बिक्री कर लगाने की वर्तमान शक्तियों से वंचित किया जा रहा है। जहां तक अन्तर्राज्यिक सौदों का संबंध है, अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) के अधीन राज्य की कोई विधि उस सीमा के अतिरिक्त प्रभाव नहीं रखती जिसके लिये उसे संसद के अधिनियम से अनुमति प्राप्त है। इस समय यह एक प्रतिबन्ध लगाने के समान है किन्तु यह वस्तुतः समान दरों पर अन्तर्राज्यिक सौदों पर कर लगाने की बराबरी नहीं करती है। दूसरे शब्दों में, संसद द्वारा प्रतिबन्ध हटाने की सामर्थ्य से लाभ न उठाना राज्य की मर्जी पर है। यदि हम अनुच्छेद 286 के खण्ड (3) के अधीन विधि पारित करें तो हम अन्तर्राज्यिक सौदों पर करारोपण की अधिक प्रभावशाली कार्यवाही करेंगे और जिस सीमा तक आन्तर्राज्यिक व्यापार एवं वाणिज्य की विशेष महत्व की वस्तुओं पर कर लगाया जायेगा, वे दरें स्वयं राज्यों में आन्तरिक सौदों पर लगाई जा सकने वाली दरों पर भी लागू होंगी।

अतः हम परोक्षरूप से उस क्षेत्र में एकरूपता प्राप्त कर लें जिसमें एकरूपता का अत्यधिक महत्व है। वस्तुओं के अन्य वर्गों के संबंध में, समय-समय पर एकरूपता लाने का अनुरोध किया गया है लेकिन जिन लोगों ने इस समस्या का परीक्षण किया है उनका

कहना है कि इतना अधिक समय व्यतीत हो जाने पर अब उसको वापस लेना संभव नहीं है और सम्पूर्ण भारत में तथा सभी राज्यों में बिक्री कर के सम्बन्ध में एकरूपता लाने की आशा को त्यागना पड़ेगा।

मुझे प्रतीत होता है कि इस सभा में चर्चा के दौरान जो विचार व्यक्त किये गये हैं और विशेषकर चीजों की अत्यावश्यकता के बारे में उन के पीछे जो विचारधारा है वह स्थिर तथा जड़वत है, जबकि हमारा वास्ता अस्थिर परिस्थितियों और गतिशील स्थितियों से है। जब संविधान बनाया गया था, तब मैं यहां उपस्थित नहीं था, किन्तु मुझे विश्वास है कि उस समय राज्य सरकारों के विचारों को बड़ा महत्व दिया गया था। किन्तु प्रतीत होता है कि हम उस स्थिति से परे हट गये हैं और अब संसद में इस आशय की ध्वनि उठाई जाती है कि संसद के लिये राज्य सरकारों के विचारों और भावनाओं का उल्लंघन करना युक्तियुक्त है। इस मामले पर इस दृष्टिकोण से विचार करना ठीक नहीं है।

जैसा कि मैंने कुछ समय पूर्व कहा था, यह राज्यों और केन्द्र के बीच सौदे करने की बात नहीं है। हम पुरानी कठिनाइयों का नवीन हल निकालने का प्रयत्न कर रहे हैं और जब मैंने कहा कि मैं राज्यों का प्रतिनिधित्व करता हूं तो मेरा यह अभिप्राय था कि मैं ऐसा हल बता रहा हूं जिस के पक्ष में अधिकतर राज्य हैं। इसीलिये मैंने कहा कि यदि हम इसके बारे में पीछे हटेंगे तो हम सरकार के रूप में इस विधान को आगे बढ़ाने में उचित नहीं होंगे। निःसंदेह संसद अपने संविधान परिवर्तक प्राधिकार के अनुकरण में संविधान में अपनी इच्छा के अनुसार परिवर्तन कर सकती है। इसका अनुच्छेद 368 के सीमित अर्थों तक सम्बन्ध है जिसका इस अत्यावश्यकता के प्रश्न पर कोई प्रभाव नहीं है। इसका सम्बन्ध संशोधन की आवश्यकता और अनुसूचियों में परिवर्तन से है, अर्थात केन्द्र और राज्यों के बीच कार्यपालिका और विधायिनी शक्तियों के वितरण से सम्बन्ध है। किन्तु जहां तक इस विधान के सार का संबंध है, संवैधानिक कठिनाइयां हमारे मार्ग में बाधक नहीं हैं, बल्कि यह अनुभूति बाधक है कि अब सरकार जो कुछ करने जा रही है, उस हल के बारे में सब सहमत हैं।

सौदा करने की बात के बारे में मैं कहूंगा कि जहां तक राज्यों का संबंध है, वे इस प्रणाली में व्यवस्था लाने हेतु थोड़ा सा त्याग कर रहे हैं। उच्चतम न्यायालय के नवीनतम निर्णय का ध्यान रखते हुए, पहले उनके लिये हानि की बात के बारे में, वे निःसंदेह अनुभव करते हैं कि उनके लिये अन्तर्राज्य सौदों की चीजों के क्रय और विक्रय पर कर लगाना संभव नहीं होगा। समाज के जीवन के लिये अत्यावश्यक वस्तुओं के बारे में उपबन्ध हैं और यह बात राज्य की अपेक्षा केन्द्र के पक्ष में है। यह राज्यों के विपरीत है। इस विधेयक का एक छोटा पहलू है, जहां राज्यों ने करारोपण की अपनी कुछ शक्तियों में

कुछ कमी करना स्वीकार कर लिया है। मैं संशोधित पाठान्तर के अनुच्छेद 286 के उप-अनुच्छेद (2) के वास्तविक शब्दों का यहां उल्लेख नहीं कर रहा। किन्तु मैं यह कहा रहा हूं कि हम अपनी नवीन शक्तियों के अनुसार जो अन्तर्राज्य विक्रय कर लगायेंगे, वह भूतलक्षी प्रभाव से लागू होगा और यदि हम राज्यों में इस समय विद्यमान दरों से कम दरों पर कर लगायें, तब उस सीमा तक वे दर घटाने होंगे। इसलिये उन राज्यों को कुछ बलिदान करना पड़ेगा, यद्यपि मैं इस प्रकार की बात को कोई महत्व नहीं देता। विक्रय कर और अभिनवीकरण के सामान्य, प्रश्न के बारे में, वह इतना व्यापक प्रश्न है कि हम उसे यहां नहीं उठा सकते, जब हम केवल संविधान में परिवर्तन कर रहे हैं और इस नवीन संविधान (संशोधन) विधेयक के उपबन्धों के अनुसार वास्तव में कोई विधेयक नहीं बना रहे हैं।

तीन मामलों का उल्लेख किया गया है, परामर्शदात्री समिति की नियुक्ति, अन्तर्राज्य कराधान आयोग की स्थापना और समय-समय पर एकरूपता लाना।

पहले मामले के बारे में कराधान जांच आयोग की सिफारिशें राज्यों को भेजी जा चुकी हैं और इन विशिष्ट सिफारिशों को राज्यों के ध्यान में लाने के लिये हम राज्यों के साथ समय-समय पर होने वाले सम्मेलनों के अवसरों का लाभ उठायेंगे।

विक्रय कर की सामान्य जांच आदि के बारे में, यह कहना ठीक नहीं है, कि कोई जांच नहीं हुई है जब कि कराधान जांच आयोग ने इस पर खूब विचार किया है। किन्तु स्पष्टतः जांच एक दृष्टिकोण विशेष से हुई है, करारोपण के सामान्य दृष्टिकोण से और करारोपण भार के सामान्य दृष्टिकोण से भी। विस्तृत प्रक्रिया और प्रशासन से सम्बन्धित कुछ मामले हैं, विशेषकर कर के प्रभावकारी प्रशासन के बारे में, जो कराधान जांच आयोग के निदेश निबन्धनों में अच्छी तरह नहीं आते थे। मेरा यह इरादा है और मैंने राज्यों के साथ यह मामला उठाया है कि बिक्री कर के विशेषज्ञों का एक छोटा दल विभिन्न राज्यों में भेजा जाए जो बिक्री कर की प्रणालियों का अध्ययन करे और उनमें सुधार करने में सहायता देने का प्रयत्न करे। सब राज्यों से उत्साहवर्द्धक उत्तर प्राप्त हुए हैं। मुझे राज्यों के कुछ अनुभवी अफसरों की सेवाएं भी प्राप्त हुई हैं, जिनमें से मैं इस दल के लिये विशेषज्ञ चुनूंगा। मुझे आशा है कि बहुत शीघ्र ही हम ऐसी एक विशेषज्ञ पार्टी भेज सकेंगे। कोई अधिक जांच की आवश्यकता होगी या नहीं, यह बात, इस विशेषज्ञ दल द्वारा की जाने वाली जांच के परिणाम पर निर्भर होगी।

राष्ट्रीय विकास परिषद् की एक बैठक में एक से अधिक राज्य मंत्रियों द्वारा, मुख्य मंत्री ने या वित्त मंत्री द्वारा, इसका समर्थन किया गया है। मैं समझता हूं कि यदि हम कपड़े जैसी एक आधारभूत वस्तु के संबंध में यह परिवर्तन कर सकें तो सम्भव है अन्य क्षेत्रों में

भी इसे लागू करना हमारे लिए सम्भव हो सकेगा। इस विषय में हमारे विचार अभी स्पष्ट नहीं है, और मेरे विचार में अभी से ही कोई अन्तिम निर्णय करना आवश्यक नहीं है। हम राज्यों की प्रतिक्रिया से और अपने वास्तविक अनुभव से लाभ उठायेंगे।

अब मैं झगड़े के मुख्य विषय अर्थात् अनुच्छेद 286(3) को लेता हूं। मेरे विचार में श्रीमती जयश्री ने वित्त मंत्री सम्मेलन, जो कि अक्तूबर, 1952 में संसद द्वारा अत्यावश्यक वस्तु अधिनियम, 1952 पारित किए जाने के बाद हुआ था, की कार्यवाही की ओर निर्देश किया है। उन्होंने मद्रास के मुख्यमंत्री के भाषण का उद्धरण दिया। मैं पढ़कर सुनाना चाहूंगा कि बम्बई के मुख्यमंत्री ने क्या कहा था :

"भारत जैसी स्थिति तथा परिस्थिति वाले देश में करारोपण में एकरूपता लाना सम्भव नहीं था। देश के कुछ भाग कृषि प्रधान हैं और कुछ उद्योग प्रधान हैं। जबकि कपड़ा सस्ता करने के लिए केन्द्र के लिये रुई पर से आयात शुल्क और कपड़े पर से उत्पादन शुल्क हटाना सम्भव नहीं था, तो फिर राज्यों से विक्रय कर हटाने के लिये क्यों कहा जाये? अत्यावश्यक वस्तु अधिनियम, 1952 की अनुसूची में जो मदें बढ़ाई गई हैं, उनमें से बहुत सी ऐसी हैं, जिन्हें अत्यावश्यक नहीं कहा जा सकता।"

अन्य वित्त मंत्रियों ने भी लगभग इसी तरह की बातें कही थीं। पश्चिम बंगाल के मुख्य मंत्री ने कहा था कि अत्यावश्यक वस्तु की परिभाषा करना कठिन था और राज्य सरकार को यह छूट प्राप्त होनी चाहिए कि वह जितना विक्रय कर आवश्यक समझे लगाए।

मैं उन की सम्मति का निर्देश कर रहा हूं, कार्यों का नहीं। इसलिए हमें स्वीकृत हलों के आधार पर चलना चाहिए, और इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने प्रवर समिति से कहा था कि इस विधेयक पर विचार करना, और इसके साथ-साथ राज्य सरकारों को इस सदन की राय से अवगत कराना हमारे लिये वांछनीय होगा। जहां तक वर्तमान विधेयक का संबंध है, इसमें किसी वाक्बद्धता का प्रश्न नहीं है बल्कि एक समझौते का प्रश्न है, जोकि कराधान जांच आयोग द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों पर आधारित है। एक माननीय सदस्य ने पूछा है कि ऐसा दृष्टिकोण क्यों अपनाया गया है। मैं उनका ध्यान कराधान जांच आयोग की रिपोर्ट के तृतीय खण्ड के पृष्ठ 50 से 55 तक की ओर दिलाता हूं। रिपोर्ट काफी लम्बी और जटिल है और इसमें से लम्बे उद्धरण दे कर मैं सदन का समय नहीं लूंगा। तात्पर्य यह है कि जहां तक आन्तरिक खपत का संबंध है, कराधान जांच आयोग की दृष्टि में राज्यों को कर लगाने के लिये स्वतंत्र कर देना चाहिए और हमें राज्य विधान मण्डलों की, जिन्हें राज्य अनुसूची में दिये गये विषयों के बारे में संसद के साथ समान क्षेत्राधिकार प्राप्त था, राय में विश्वास करना चाहिए। इस दृष्टिकोण को केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों दोनों ने पसन्द किया था और इसी के फलस्वरूप यह विधेयक प्रस्तुत

किया गया है। तथापि कम से कम मैं यह कहने के लिये तैयार हूं कि ऐसे विषयों के संबंध में, चाहे यह उन्मुक्ति का प्रश्न हो या साधारण करारोपण का या एकरूपता का प्रश्न हो, जिनके संबंध में बहुत से लोगों की निश्चित राय है, नये विचारों पर सदैव ध्यान देने के लिए प्रस्तुत रहना चाहिए। ऐसे विषयों का यह महत्व कभी कम नहीं होगा।

इसलिये मैंने इस सदन के और इस के सदस्यों की राय राज्य सरकारों तक पहुंचाने का काम अपने हाथ में लिया है। जब मुझे राष्ट्रीय विकास परिषद् की बैठकों के संबंध में उनसे मिलने का अवसर मिलेगा, जो वर्ष में एक बार से अधिक मिलता है, तो मैं उनसे इन विषयों पर चर्चा करूंगा। यह जानने के लिये कि क्या इन अत्यावश्यक वस्तुओं के बारे में काफी सहमति है या नहीं इस समय कोई अलग सम्मेलन करना आवश्यक नहीं है।

इस बीच में, उनके दृष्टिकोण से भी, जो अनुच्छेद 286(3) को बनाये रखने के लिये अनुरोध करते हैं, स्थिति ऐसी नहीं है कि उसमें सुधार ही न किया जा सके, क्योंकि उन वस्तुओं की सूची में, जो अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य के लिए विशेष महत्व की हैं, मदें बढ़ाई जा सकती हैं। मुझे अभी एक राज्य सरकार से एक पत्र प्राप्त हुआ है, जिसमें मुझसे अपीलें की गई हैं कि "वस्तु" जैसे सामान्य शब्द के स्थान पर "कच्चा माल" शब्द पुनः रख दिये जाएं। इससे केवल यह प्रकट होता है कि इस संबंध में उनकी क्या आशंकायें हैं। वे आशंकायें यह हैं कि कहीं अत्यावश्यक वस्तु अधिनियम की तरह संसद अपनी उदारता के कारण उन वस्तुओं की एक बहुत लम्बी सूची न बना दे जो अन्तर्राज्यिक व्यापार या वाणिज्य के लिये विशेष महत्व की हैं। इसलिये मैं कोई झूठी आशायें उत्पन्न नहीं करना चाहता हूं। तथापि मैं खाद्यान्न जैसी वस्तुओं के सूची में सम्मिलित किए जाने की सम्भाव्यता पर रोक भी नहीं लगाना चाहता हूं विशेषकर ऐसी स्थिति में जबकि उचित मूल्य की दुकानों के लिये या मूल्य नियंत्रण के लिये खाद्यान्नों का बड़े पैमाने पर लाना ले जाना आवश्यक है। ऐसी परिस्थितियां सरलता से उत्पन्न हो सकती हैं जिनमें यह सिद्ध करना कठिन नहीं होगा कि अन्तर्राज्यिक वाणिज्य और व्यापार में खाद्यान्नों का एक राज्य से दूसरे राज्य में ले जाना कितना महत्व रखता है। यदि ऐसा है तो मुझे इस संदेश को राज्य सरकारों तक पहुंचाने में कोई कठिनाई होने की आशा नहीं है। मंत्रिमंडल में मेरे कुछ साथियों का भी यही मत है। इसलिये मेरी यह राय है कि हम इस विषय को यहीं छोड़कर हमारे समक्ष जो विधान है इसे पारित करने के लिये कार्यवाही करें।

संशोधनों पर विचार करते समय एक-दो और विषय हमारे सामने आएंगे। शायद पंडित भार्गव ने अनुच्छेद 304 और समस्त भाग 13 की ओर निर्देश किया था। हमारा

विचार है कि विशेष रूप से भाग 13 की ओर निर्देश करना आवश्यक नहीं है। जहां तक अनुच्छेद 304 का संबंध है मैं इसका जो अभिप्राय समझता हूं वह पंडित भार्गव के बिल्कुल विपरीत है उनका कहना है कि अनुच्छेद 304 के खण्ड (ख) के अनुसार कर के अनुचित रूप से अत्याधिक स्तर का अर्थ वाणिज्य और व्यापार की स्वतंत्रता पर उचित निर्बन्धन लगाना हो सकता है। मैं उनका ध्यान अनुच्छेद 304 के उपखण्ड (क) की ओर दिलाता हूं जो विशेष रूप से कराधान के बारे में है। छोटा शीर्षक है "राज्यों के पारस्परिक व्यापार, वाणिज्य और समागम पर निर्बन्धन"। यह कराधान के बारे में है।

अतः मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि कर संबंधी सभी मामले उपखण्ड (क) में आ जाते हैं और उपखण्ड (ख) का संबंध कर संबंधी किसी मामले से नहीं है। वे तो केवल संविधान द्वारा कर पर आरोपित किए जाने वाले परिसीमन हैं। अतः हम अनुच्छेद 304 के अन्तर्गत किसी भी अन्य प्रकार का कर लगा सकते हैं।

यह पूछा गया था कि प्रस्तावित विधेयक का क्या रूप होगा? अभी से कुछ नहीं कहा जा सकता। विधेयक का क्या स्वरूप होना चाहिए इस पर चर्चा करने के लिये लोक सभा को काफी अवसर मिलेगा। कुछ भी हो, मेरा विचार है कि इस विधेयक को पारित किए जाने का समर्थन करने का निश्चय करने के लिये लोक सभा को विधेयक के उपबन्धों को जानना आवश्यक नहीं है। हमारे विचार निश्चित हैं, और हमने ब्यौरे के बारे में भी विचार किया है जैसे कि क्या पूंजीबद्ध और अन्य विक्रेताओं के लिये दरें अलग होनी चाहिए; विशेष और अन्य वसतुओं में क्या अन्तर होना चाहिए और संग्रह वितरण आदि का क्या ढंग होना चाहिए हमने इस विषय पर विचार किया है और मेरे विचार से वर्तमान प्रयोजन के लिये यह जानना कि संविधान का स्वरूप क्या होगा आवश्यक नहीं है।

मैंने एक माननीय सदस्य के इस सुझाव पर विचार किया है कि दो-तीन विधायकों को प्रस्तुत करने के बजाय उन सब को एक ही में मिला दिया जाये। स्पष्ट है कि इस से सुविधा होगी। अनुच्छेद 269 के प्रयोजनार्थ अंतर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य की परिभाषा के लिए एक कानून बनाया जा सकता है और फिर क्या वस्तुएं बाहर जा रही हैं अथवा उनका निर्यात किया जा रहा है की परिभाषा अर्थात् अनुच्छेद 286 के खण्ड (1) के प्रयोजनार्थ परिभाषा होनी चाहिए। अंतर्राज्यीय व्यापार और वाणिज्य के अन्तर्गत रखी गई मदों को हम निर्दिष्ट नहीं कर सकते हैं। इस संबंध में एक कानून बनाना सम्भव है। यह प्रारूपण और सुविधा का विषय है।

एकरूपता के इस सामान्य प्रश्न के संदर्भ में, हालांकि मैंने राज्य सरकारों के दृष्टिकोण का उल्लेख कर दिया है। मेरा स्वयं का विश्वास है कि घटनाक्रम अंततः राज्यों को लेवी की दरों को समान बनाने के लिए प्रेरित करेगा क्योंकि इस बारे में किसी न किसी राज्य

की कोई न कोई शिकायत रहती है। एक माननीय सदस्य ने एक उदाहरण दिया था। उत्तर प्रदेश में कुछ विक्रेता इससे प्रभावित हुए थे क्योंकि दिल्ली में कुछ दरें कम थीं। यह बात हर कहीं देखने को मिलती है। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बिक्री कर में औचित्य स्थापन परम्परा से आएगा न कि भावना अथवा किसी विशेष सिद्धांत से।

हमसे पूछा जाता है कि विभिन्न करों को रिकार्ड करने के लिए किस मशीनरी को प्रयुक्त किया जाता है। यह विषय हमारे केन्द्रीय राजस्व बोर्ड और हमारे आर्थिक विभागों तथा भारतीय रिजर्व बैंक के अनवरत अध्ययन का हिस्सा है। कराधान जांच आयोग द्वारा कराधान के बारे में बड़े पैमाने पर एक अध्ययन किया गया था। स्पष्टतः ही, जैसे-जैसे हमारे करों के ढांचे में बढ़ोतरी होती है तो उन करों को सदन के समक्ष न्यायोचित ठहराने के लिए हमें अधिक विस्तृत आंकड़ों की आवश्यकता होगी। दूसरे शब्दों में, जैसा कि मैंने पहले कहा था कि सदन इस बात से और अधिक सचेत होगा कि अतिरिक्त कराधान का बोझा किन पर पड़ रहा है। मुझे पता है कि यह भार वित्त मंत्रालय पर है। हम इस संबंध में एकत्र किए गए आंकड़ों को सुधारने का प्रयत्न करेंगे। मैं समझता हूं कि इस संबंध में माननीय सदस्यों को पेश आने वाली अधिकांश कठिनाइयों को मैंने स्पष्ट कर दिया है और इसलिए मैं अपने प्रस्ताव को सदन को अभिशासित करता हूं।*

*यह विधेयक बाद में पारित हुआ और संविधान (छठा संशोधन) अधिनियम, 1956 बना।

14

सार्वजनिक निगमों पर संसदीय नियंत्रण*

माननीय सदस्य** ने जो कुछ कहा है, सरकार का दृष्टिकोण तो उस का लगभग पूरा उत्तर होगा। मुझे ऐसा लगता है कि माननीय सदस्य ने दो तीन विभिन्न प्रश्नों को मिला दिया है। इनका भ्रम दूर करना आवश्यक है। पहला यह है कि विधान बनाए बिना कम्पनियां बना ली जाती हैं। उर्वरक जैसा सामान बनाने के लिये आपातकालीन कार्यवाही के रूप में ऐसा किया भी गया था। वह कोई अन्तिम निर्णय नहीं था और यह बात भी हमारे ध्यान में है कि समुचित समय पर या तो हम ऐसा विधान बनायें जिस से सरकार को व्यापार या उद्योग के संबंध में सरकारी निगम बनाने का अधिकार मिल सके और या हम कम्पनी विधि (संशोधन) विधेयक में, जो कि सदन के सामने है, ऐसी कम्पनियों के सम्बन्ध में जो पूर्णतया या मुख्यतः सरकार की हैं, एक अलग परिच्छेद जोड़ दिया जाये। हम यह मानते हैं और नियंत्रक और महालेखा परीक्षक को इस बात में बहुत कुछ तथ्य हैं—"यद्यपि हमें 'धोखा' शब्द पर आपत्ति है....."

मैं यह भी कहना चाहता हूं कि माननीय सदस्य की यह धारणा गलत है कि इन कम्पनियों में जो धन संचित निधि में से लगाया गया है, बिना विनियोग के लगाया गया है। संचित निधि में से कोई भी धन बिना विनियोग के नहीं लगाया जा सकता। इसलिये वास्तविक प्रश्न संचित निधि में से धन देने या संगठन के रूप का इतना नहीं है। बल्कि यह है: (क) नियंत्रक और महालेखापरीक्षक के अधिकार और (ख) इन संगठनों पर विशेषकर वित्तीय मामलों में कार्यपालिका तथा संसद का प्राधिकार अर्थात् वित्तीय नियंत्रण/नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक की स्थिति के संबंध में मुझे यह कहना है कि जिस विधान की बात हम सोच रहे हैं उसे हम रखेंगे या वह परिच्छेद शामिल करेंगे तो हम ऐसा उपबंध कर देंगे जिससे कि नियंत्रक और महालेखापरीक्षक उन कार्यों को कर

*लोक सभा विवाद, 10 दिसम्बर, 1953, कॉ० 1919—1928, 11 दिसम्बर, 1953, कॉ० 1977—1981।

**डा० लंका सुन्दरम।

सकेगा जो कि संविधान के अनुसार उसे करने चाहियें। जिन संस्थाओं या संगठनों की मालिक सरकार ही है उन के संबंध में निस्सन्देह बात यह है कि यह उपबन्ध सदा ही किया जायेगा कि नियंत्रक और महालेखापरीक्षक उन के लेखों की परीक्षा करेगा। उन कम्पनियों और निगमों के संबंध में सम्भावना यह है कि वे निगम नहीं वरन् कम्पनियां होंगी—जिन में सरकार का हिस्सा मात्र ही हो, सन्देह उत्पन्न होंगे। ऐसी कोई सीमा बतानी होगी कि जिस से किसी कम्पनी आदि को राज्य की ऐसी कम्पनी समझा जा सके कि नियंत्रक और महालेखापरीक्षक उसके संबंध में अपना कर्तव्य निभाए। मुझे इस में कोई सन्देह दिखाई नहीं देता कि समुचित समय पर सदन से कहा जाएगा कि इन मामलों पर विचार करें और नियंत्रक और महालेखा परीक्षक या लोक लेखा समिति के मन में जो शंकाएं हों, उन्हें संभवतः हम दूर कर सकेंगे।

दूसरा प्रश्न यह है: कार्यपालिका द्वारा इन निगमों पर कौनसा वित्तीय नियंत्रण रखा जाता है? निस्संदेह यहां अपने अधिकार का प्रयोग न करने की भावना है। अर्थात् कार्यपालिका दिन प्रतिदिन वित्तीय नियंत्रण नहीं करती जैसाकि अन्य वित्तीय मामलों पर किया जाता है। कार्यपालिका द्वारा अपने अधिकार का प्रयोग न करने या उसे निलम्बित करने के विभिन्न रूप हैं। परन्तु अनुभव के परिणामस्वरूप कार्यवाही के कुछ ढंग निकलते आते हैं और जहां हम उस निकाय को, कम्पनी हो या निगम, प्रशासन की सुविधा के लिये या लालफीताशाही समाप्त करने के लिये कुछ वित्तीय शक्तियां देते हैं, कुछ पूर्वोपाय कर लिये जाते हैं। ऐसा एक उपाय यह होता है कि किसी संयुक्त सचिव या सचिव को वित्तीय प्रतिनिधि के रूप में उस कम्पनी का संचालक बना दिया जाता है। इसलिये जब वह अपनी शक्तियों का प्रयोग करता है तो चाहे स्पष्ट रूप से यह नहीं कहा जाता कि जो भी होगा उस की रजामन्दी से होगा, व्यवहार रूप में होता यही है। परन्तु यदि उस की बात न मानी जाये तो वह यही बात वित्त मंत्रालय को बता सकता है और वित्त मंत्रालय निगम से इस संबंध में बातचीत कर सकता है और सरकार से ऐसा परिवर्तन करने को कह सकता है जिनके द्वारा ऐसी व्यवस्था हो जाये कि वित्त संबंधी परामर्श मान लिया जाये।

सरकार में वित्त मंत्रालय की स्थिति भी यही है संविधान में कोई ऐसा उपबन्ध नहीं है कि वित्त संबंधी औचित्य के निर्णय में वित्त मंत्री के निर्णय को अस्वीकार नहीं किया जाएगा। परन्तु साथ ही यह कभी नहीं हुआ है कि किसी वित्त मंत्री—या यह कहना चाहिये कि किसी आत्मसम्मानी वित्त मंत्री के निर्णय को ठुकरा दिया गया हो। इसका कारण यह है कि मंत्रिमंडल में विचार विमर्श के परिणामस्वरूप, मतभेद होने की दशा में, या तो वह ऐसे निर्णय को स्वीकार कर लेता है, जो किसी मूल सिद्धान्त के विरुद्ध न हो,

और या वह मंत्रिमंडल छोड़ देता है या उसे मंत्रिमंडल छोड़ देना चाहिये। जहां तक अनुच्छेद 77 के अधीन भारत सरकार के कार्यसंचालन नियमों का संबंध है, उन में यह व्यवस्था की गई है कि कोई भी विभाग, राजस्व तथा व्यय विभाग की अनुमति लिये बिना, ऐसा कोई आदेश नहीं देगा जिससे (क) ऐसा राजस्व छोड़ा जा रहा हो या ऐसा खर्च किया जा रहा हो, जिसके लिये विनियोग अधिनियम में कोई व्यवस्था न की गई हो, या (ख) कोई भूमि या राजस्व या रियायत या अनुदान, या खान या वन संबंधी अधिकार या जल शक्ति संबंधी अधिकार सौंपे जा रहे हों या ऐसी किसी रियायत के संबंध में किसी अन्य की भूमि आदि पर अधिकार या विशेषाधिकार दिये जा रहे हों या (ग) ऐसा आदेश जो किसी सेवा के पदों की संख्या की श्रेणी या सरकारी कर्मचारियों के वेतन या भत्ते या उन के किसी सेवा पद के संबंध में हो और जिससे वित्त संबंधी प्रभाव पड़ता हो, और या (घ) जिसका और कोई वित्तीय प्रभाव हो चाहे उसे नया खर्च करना पड़ता हो या नहीं।

तो ये तो बड़े ही व्यापक उपबन्ध हैं। यद्यपि कार्यसंचालन नियम राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 77 (3) के अन्तर्गत, मंत्रिमंडल के परामर्श के अधीन बनाये जाते हैं और इसका तात्पर्य यह है कि इनमें परिवर्तन किया जा सकता है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं किया जा सकता जब तक कि वित्त मंत्री यह बात स्वीकार न कर ले। और जैसा कि मैंने कहा इन निगमों में वित्त मंत्रालय का शक्तिशाली प्रतिनिधि रहता है।

और फिर आम तौर पर हम देखते हैं कि या तो कार्यपालिका आदेशों द्वारा या अधिनियम द्वारा यह उपबन्ध किया जाता है कि सरकार निगम को निर्देश देगी। यह बड़ी लाभकारी शक्ति है जिसके द्वारा प्रशासक तथा वित्त—दोनों के क्षेत्रों में प्राधिकार का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में मैं यह बता सकता हूं कि दामोदर घाटी निगम में, बड़े वेतन की कुछ नियुक्तियां करते समय यह निर्देश दिया गया था कि ऐसे पद पर, जिसका वेतन 2,000 रुपये प्रतिमास से अधिक हो, कोई भी नियुक्ति सरकार से अनुमति लिए बिना न की जाये। इस प्रकार का निर्देश सदा ही दिया जा सकता है।

ऐसा क्यों है कि कार्यपालिका अपनी शक्तियों का निलम्बन करने के लिये तैयार है? सरकारी धन के उचित उपयोग तथा समुचित ढंग से काम का होना—इन दोनों में संतुलन रखने की चेष्टा सदा ही की जाती है अर्थात् यह प्रबन्ध किया जाता है कि लाल-फीताशाही न रहे। किस समय इन दोनों में से एक पर इतना अधिक जोर दिया जाये कि दूसरे विकल्प के लिये स्थान न रहे, यह तो अपने विवेक तथा अनुभव की बात है। अभी तक इस संबंध में हमारे अनुभव का प्रारम्भ मात्र ही है। ज्यों ज्यों हमें और अनुभव प्राप्त होगा और इस अनुभव में नियंत्रक और महालेखापरीक्षक तथा लोक लेखा समिति की राय

शामिल है, और इस प्रकार की राय तथा इस प्रकार के विचार विनिमय से जो बातें हमें सूझेंगी और उन से हम जिन सिद्धान्तों पर पहुंचेंगे, उन के आधार पर हम इस बात का निर्णय और अच्छी तरह कर सकेंगे कि वित्तीय नियंत्रण का ढांचा कैसा हो। परन्तु मैं एक बात कहना चाहता हूं और वह यह है कि इस बात पर जोर देना अच्छा नहीं होगा कि विभागीयं कार्यपालन के क्षेत्रों में जो वित्तीय नियंत्रण होता है, वैसा ही सभी जगह हो, क्योंकि यदि हम ऐसा करने की चेष्टा करें तो हमारा उद्देश्य कभी पूरा नहीं होगा।

अब मैं संसद के नियंत्रण की बात करूंगा। माननीय सदस्य ने ब्रिटेन का हवाला दिया जहां तक मुझे मालूम हुआ है इन मामलों में लोक लेखा समिति का हाथ तो सदा रहता ही है, मैं नहीं कह सकता कि मैंने उनकी बात गलत समझी है या नहीं। जो भी हो मैं यह कहता हूं कि निगमों की सभी रिपोर्टें तथा हिसाब किताब संसद में प्रस्तुत किये जाते हैं और परिणामस्वरूप लोक लेखा समिति उनकी जांच कर सकती है। नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक का इन मामलों में सदा कोई हाथ नहीं रहता है। परन्तु जैसा कि माननीय सदस्य ने कहा है, ऐसा प्रस्ताव है कि लेखापरीक्षक के लिये एक अधिकारी नियुक्त किया जाये जिसका दर्जा नियंत्रक और महालेखापरीक्षक के बराबर होगा। इसलिये हम यह कह सकते हैं कि यह तो निश्चित है कि लेखा परीक्षा की जाती है।

मैं कहता हूं कि यह कभी नहीं हो सकता है कि लोक लेखा समिति का हाथ न रहे। फिर, माननीय सदस्य ने यह कहा कि यह प्रबन्ध संतोषजनक नहीं है क्योंकि लोक लेखा समिति तो किसी बात के हो चुकने पर ही उस के संबंध में निर्णय दे सकती है। मेरा उत्तर यह है कि स्वाभाविक तो यही है कि लोक लेखा समिति किसी बात के हो चुकने पर ही उस के संबंध में निर्णय दे। दूसरे शब्दों में कार्यपालिका द्वारा वित्तीय नियंत्रण के ढंग और विधानमंडल द्वारा वित्तीय नियंत्रण के ढंग में अंतर होना चाहिये। दोनों भिन्न-भिन्न बातें हैं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह है कि संसद संविधानीय रोक तथा संतुलन का प्रयोग करती है। परन्तु कार्यपालिका की स्थिति वैसी नहीं है।

जब धन का विनियोग होता है, तब संसद का संबंध आता है। इन विनियोगों का किस प्रकार उपयोग किया गया है, इस संबंध में जब लोक लेखा समिति अपना प्रतिवेदन देती है, तब संसद का संबंध आता है, और जब लोक लेखा समिति इस पर विचार करती है, तब उसके सामने सभी दस्तावेज प्रस्तुत करने पड़ते हैं। वह समिति किसी विशेष संबंधित फर्म या कम्पनी के सारे लेखे मांग सकती है। संविदाओं की सूचियां देने के संबंध में मेरे माननीय सहयोगी ने जो उत्तर दिया है, मैं समझता हूं उसको लेकर बात को अनावश्यक रूप से बढ़ाया गया है। संभव है, ऐसा कि प्रधानमंत्री ने कहा, यदि संसद यह कहे कि सभी संविदा सदन के सामने रखे जाएं, तो उसको यह मांग करने का

अधिकार प्राप्त है। परन्तु व्यवहारिकता की दृष्टि से संभव है ये चीजें आवश्यक न हों। दूसरे शब्दों में, वे सरकारी पदाधिकारी जिनके जिम्मे कुछ कार्य होते हैं, एक प्रकार से अपना सिर हथेली पर लेकर चलते हैं और यदि बाद में यह सिद्ध हो जाए कि उन्होंने अपने कर्तव्यों का उचित रूप से पालन नहीं किया है तो वह भारी मुसीबत में फंस सकते हैं। अतः मैं समझता हूं कि संसद जानकारी और उसकी अनुमति से और निगम बना कर लोक लेखा समिति के द्वारा जो कार्य किया गया है उससे संसद के अधिकार में कोई कमी नहीं होती। अब हमें चाहिये कि हम इस विवादास्पद विषय को विधान मण्डल द्वारा बनाये गये निगम के अति स्पष्ट और बहुत सुलझे हुए मामले तक ही सीमित रखें। अतः स्वयं संसद से अपने अधिकारों का कुछ कम प्रयोग करने के लिए कहा जाएगा अथवा उससे कम से कम इस बात को मानने के लिये कहा जायेगा कि कार्यपालिका अपने वित्तीय-नियंत्रणों के अधिकार का कम प्रयोग करें, और यदि ऐसी परिस्थिति होती है, तब अगर अनुभव यह सिद्ध करता है कि यह चीज उचित रूप से नहीं हो रही है, तो संभव है कि हमें अपनी मिश्रित अर्थव्यवस्था के सारे आधार में संशोधन करना पड़े। हो सकता है कि हम यह पायें कि हमारे कर्मचारीगण ऐसे कुछ मामलों को निबटाने में असमर्थ हैं। जो उनको सौंपे गये हैं।

माननीय सदस्य ने इस बात का हवाला दिया कि एक खाद्य-सचिव शिपयार्ड का प्रबन्ध संचालक अथवा उसका कोई उच्च अधिकारी नियुक्त किया गया है, और महासचिव को नौवहन निगम का सभापति नियुक्त किया गया है। उनको कदाचित यह याद नहीं है कि वह व्यक्ति वाणिज्य तथा उद्योग मंत्रालय में बहुत वर्षों तक था। दूसरे शब्दों में, वह नौवहन निगम के सभापति होने के लिए बहुत योग्य व्यक्ति था।

जहां तक इन वार्ताओं का संबंध है, माननीय सदस्य को भारी गलतफहमी है। मैं स्वयं इस बात को प्रमाणित कर सकता हूं कि तेल साफ करने के कारखानों अथवा इस्पात संबंधी होने वाली वार्ताओं से वित्तीय दृष्टिकोण से, मैं लगभग प्रत्येक मुख्य अवस्था पर संबंधित रहा हू। जहां तक इस्पात का संबंध है मंत्रिमण्डल की एक तदर्थ समिति है, जिसमें प्रधानमंत्री, उत्पादन मंत्री, वाणिज्य तथा उद्योग मंत्री, स्वयं मैं तथा एक या दो अन्य मंत्रीगण हैं, जो समय-समय पर सभी प्रारूपकारों के मुख्य पहलुओं पर विचार करते हैं और यदि हमने किसी पदाधिकारी को करार करने के लिये वार्ता करने हेतु भेजा, तो वह तार द्वारा हमारे अनुदेश मांगता था और ऐसे अनुदेश उसको प्राप्त होते थे।

अतः मेरे विचार से, इन करारों को अन्तिम रूप देने की इस आवश्यक क्रिया अथवा इन करारों का पहले प्रारूप तैयार करने और तब अन्तिम रूप देने के संबंध में संसद को किसी प्रकार की परेशानी नहीं होनी चाहिये। उचित समय पर इन करारों को विधान

मण्डल के सामने रखने के लिये हम सदैव उद्यत एवं उत्सुक रहते हैं। मैं समझता हूं कि तेल साफ करने के कारखानों से संबंधित करार विधान मण्डल के सामने रखे जा चुके हैं।

इसलिये मेरे विचार से संसद को इन समझौतों को अन्तिम रूप देने या पहले प्रारूप बनाकर फिर अन्तिम रूप देने की इस महत्वपूर्ण प्रक्रिया में किसी प्रकार का असंतोष महसूस नहीं करना चाहिये। हम उचित समय पर इन समझौतों को विधान मंडल के समक्ष रखने के लिए भी हमेशा तैयार और इच्छुक हैं। मेरा विश्वास है कि तेल शोधक कारखानों से संबंधित समझौते विधान मण्डल के समक्ष पहले ही रखे जा चुके हैं।

इसलिये, जहां तक सरकार का संबंध है, मेरा मुख्य मुद्दा यह है कि ऐसा कहने के लिये कम से कम एक तत्व तो "बकाये के रूप" में अवश्य रहना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि हमें अपने निर्णय पर दृढ़ रहना चाहिये और यदि हम दोषी पाये जायें तो उपचार किया जाये। उस स्थिति को किसी प्रकार की मशीन लगाकर कदापि ठीक नहीं किया जा सकता है।

अन्त में, माननीय सदस्य ने संसदीय समिति की स्थापना का उल्लेख किया है। यह बात तो पूरी तरह से संसद के अधिकार सीमा में है। यदि संसद यह चाहता है कि ऐसी समिति बनाई जाये तो ऐसी समिति अवश्य होनी चाहिये। परन्तु संसद के निश्चय किये जाने से पूर्व मैं कुछ उसके विचारार्थ रखना चाहूंगा। जैसाकि मैंने कहा है कि कहीं न कहीं तो सन्तुलन रखना पड़ेगा। हम चाहते हैं कि इस विशेष निकाय पर उसके अनुकूल ही उचित वित्तीय नियंत्रण हो—यदि यह वैधानिक नियंत्रण है तो यह कार्य विधानमंडल का होना चाहिये और यदि यह प्रशासनिक नियंत्रण है तो फिर यह कार्य कार्यपालिका का होना चाहिये। हम यह भी कह सकते हैं कि मंत्रियों की एक उपसमिति बनायी जाये जो समय-समय पर सिन्दरी का दौरा करे। यह कार्य कार्यपालिका के क्षेत्र का दूसरे प्रकार का कार्य है। जहां तक वैधानिक क्षेत्र का संबंध है, वित्तीय नियंत्रण के सारे उपाय के बारे में मेरा यह विचार है कि हमारे औद्योगिक विस्तार और विकास के इस चरण में इतनी दूर जाने का प्रयास करने तथा प्रशासन में इतना अधिक लीन हो जाने में खतरा है। मुझे ज्ञात है कि माननीय सांसद का इरादा इसमें रोज-रोज दखल देने का नहीं है, वास्तव में उनका उद्देश्य यही था कि चल रही गतिविधियों की सूचना उन्हें मिलती रहे। इस बात से मैं भी सहमत हूं। क्या यह आवश्यक है कि किसी निगम को कैसे चलाया जा रहा है, इस बात की सूचना संसद को दिन प्रतिदिन या प्रत्येक सत्र में दी जाये। क्या यह ठीक है कि इन सब की व्यवस्था करने के लिये पहले कार्यपालिका को सक्षम बनाया जाये और फिर उससे

उसी प्रकार जवाब तलब किया जाये जिस प्रकार संसद सदैव कार्यपालिका से जवाब तलब करती है? इस मामले पर निर्णय लेने के पहले इस विचार को संसद को सदैव ध्यान में रखना चाहिये।

सभापति महोदय, मेरे विचार से यह चर्चा दो दोषों से प्रभावित है, पहला यह कि सामान्य हित के अत्यन्त महत्वपूर्ण मामले के केवल एक पक्ष पर ही हम अपना ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। दूसरा, यह कि बहुत सी झूठी उपमायें दी गयी हैं।

जहां तक सामान्य हित का प्रश्न है वह राज्य सरकार के उद्यमों के कुशल संचालन से सम्बन्धित हैं। मेरे विचार से यदि हमने इस विषय पर पूरी चर्चा कर ली होती कि राज्य सरकार के उद्यमों की व्यवस्था कैसे की जाये तो वह ठीक होता।

इस सामान्य प्रश्न का यद्यपि सबसे महत्वपूर्ण पहलू संसदीय नियत्रण या मंत्रिमंडलीय नियंत्रण का प्रश्न है परन्तु यह मात्र एक प्रश्न है। इसलिये सरकारी प्रवक्ताओं के लिये उन मुद्दों पर उत्तर देना कुछ मुश्किल होगा जो वित्तीय नियंत्रण के लिये संसदीय या मंत्रिमंडलीय दायित्वों के निर्वहन की उपेक्षा व्यवस्थापना की कुशलता पर आधारित है।

दूसरी सामान्य बात मैं यह कहना चाहूंगा कि जहां तक मेरी जानकारी है, ब्रिटेन में राष्ट्रीयकृत उद्योगों के संबंध में चयन समिति ने जो सिफारिशें की थीं संसद ने इन पर अभी तक सहमति नहीं दी है। इसलिये मैं इस कथन पर कि उन्होंने बड़ी सफलतापूर्वक कार्य किया है तथा इसी प्रकार के अन्य कथन पर मैं आश्चर्यचकित हूं।

तीसरी बात मैं यह कहना चाहूंगा कि जहां तक नियंत्रक और महालेखापरीक्षक की टिप्पणियों का प्रश्न है, उन्होंने जिस मुद्दे को उठाया है उसका महत्व सीमित और अस्थायी है। कोई शब्दों के प्रयोग पर विरोध कर सकता है पर उन्होंने जिस मुद्दे को उठाया है वह वास्तव में बहुत महत्वपूर्ण है और जैसाकि सदन ने भी हमारे सहयोगी की टिप्पणियों से निष्कर्ष निकाला होगा कि हम इन मामलों के समाधान के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

जहां तक मामले को नियमित करने का प्रश्न है, मैंने पहले ही संकेत दिया है कि राज्य सरकार के निगमों पर नियंत्रण के लिये हमें या तो कम्पनी कानून में परिवर्तन करना होगा या कोई विधेयक लाना होगा। लेकिन चाहे जिस तरह से हो हम नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा उठायी गई समस्याओं का समाधान करेंगे।

लेखा परीक्षक के बारे में पहले से ही विद्यमान विभिन्न प्रावधानों अर्थात् नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को लेखा परीक्षण का अधिकार देने संबंधी प्रावधान को उद्धृत करके सदन का समय व्यर्थ नहीं करूंगा। औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम का संशोधन इसका नवीनतम उदाहरण है। राज्य वित्त निगम के बारे में, जैसा हमने पहले प्रावधान किया था,

हमने विशेषरूप से यह प्रावधान किया है कि नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक को लेखा परीक्षण का अधिकार होगा।

दूसरी बात मैं यह कहना चाहूंगा कि राज्य सरकार के उद्यमों और कार्यपालिका के व्यवस्थापन के सामान्य कार्यों में अन्तर को बढ़ा चढ़ाकर बताया गया है। प्रभाव में दोनों एक जैसे हैं। वे कार्यपालिका के दायित्वों का निर्वहन हैं। कुछ कारणवश आंशिक रूप से ऐतिहासिक कारणवश, रेलवे और डाक और तार जैसी बड़ी उपयोगी सेवाओं को कभी भी निगम नहीं बनाया गया। इसलिये वे निरंतर सदन की देख रेख में हैं। कुछ अन्य उद्देश्यों से भी, उदाहरण के लिये तथाकथित व्यापार प्रबन्धन के महोक लाभ, हम इस संगठन को निगमों या कम्पनियों के रूप में बनाने की चेष्टा कर रहे हैं। हमने इन दो स्वरूपों के बारे में अभी कोई निश्चय नहीं किया है, कि दोनों में से अच्छा कौन है या एक को चुनकर दूसरे को छोड़ दिया जाये। यह केवल सुविधा की बात है। जहां तक सरकार का संबंध है मेरे विचार से दोनों में ही लाभ है। इसलिये हो सकता है कि हमने जो कम्पनी कानून और राज्य सरकार के निगमों के लिये अलग से प्रावधान के बारे में कहा था, इन दोनों को ही संशोधन में शामिल करना होगा।

हमें कम्पनी के उस स्वरूप के पक्ष में होना चाहिये जिसमें गैर सरकारी हित भी शामिल हों। यह भागीदारी अलग-अलग तरह की हो सकती है। मैं कहना चाहता था कि सब सरकार की कार्यपालिका के कार्य का ही एक भाग है। मैं वास्तव में सेना के ऊपर हुए खर्च तथा सिन्दरी में हुए खर्च के महत्व में किसी प्रकार का अन्तर नहीं समझता। हम सेना पर लागत के रूप में नहीं, बल्कि प्रतिवर्ष 200 करोड़ रुपये खर्च कर रहे हैं। फिर भी संसद की इन कार्यों के जांच की कुछ निर्धारित सीमाएं हैं। यद्यपि संसद के पास प्रश्न पूछने के असीमित अधिकार हैं। जैसा कि माननीय सांसद ने सलाह दी थी कि राज्य सरकार के निगम और कम्पनियों के बारे में संसद इस बात का संकेत दे सकती है कि वह क्या सूचना चाहती है और किस प्रपत्र पर और हमें संसद द्वारा चाही गयी सूचनायें समय पर देने में अत्यन्त प्रसन्नता होगी। मेरा विचार है कि यह निश्चित तरीके से कुछ अवसरों पर ही हो, तथा यह कार्य संसद स्वयं करेगी। यह वार्षिक बजट के भाषण पर चर्चा के समय हो सकती है या इस पर अलग से चर्चा हो सकती है या इस पर प्रश्नोत्तर हो सकते हैं आदि-आदि।

यदि संसद यह इच्छा व्यक्त करती है कि इन निगमों के बजट उसके सामने आयें तो सदन को आवश्यक सूचना न दिये जाने का कोई कारण मुझे नजर नहीं आता। यह निगमों को निदेश जारी करने का मामला है। जो विधेयक हम लाना चाह रहे हैं उसमें यह हम सुनिश्चित करेंगे कि क्या यह गैर सरकारी कम्पनियों का मामला है। संशोधन में हमें

इस बात का प्रावधान करना चाहिए कि अन्य बातों के अतिरिक्त और कंपनी कानून के कुछ खंडों से छूट मिलने तथा इन कम्पनियों पर शुल्क लगाने के अतिरिक्त उनके पास आवश्यक सूचना देने वाला एक दूसरा निर्धारित विवरण होना चाहिये क्योंकि इसमें सार्वजनिक धन लगा हुआ है और नियंत्रक एवं महालेखापरीक्षक का लेखा परीक्षण आवश्यक होगा और हमेशा की तरह ये रिपोर्टें संसद में प्रस्तुत की जायेंगी तथा लोक लेखा समिति इनकी जांच करेगी। किसी भी प्रक्रिया में मुझे कोई बाधा नजर नहीं आती। दो रिपोर्टों में इस मामले का उल्लेख किया गया है अर्थात् सरकारी प्रशासन या प्रशासकीय कुशलता के सामान्य मुद्दे और राज्य सरकार के उद्यमों का संचालन। मैं फिर से सारी बात नहीं दोहराऊंगा। श्री गोड़वाला की रिपोर्ट के पृष्ठ संख्या 16 और 17 तथा श्री अप्पलबाई की रिपोर्ट के पृष्ठ संख्या 55 और 56 पर इस मामले का उल्लेख है। प्रश्न यह है कि क्या इस स्थिति में हमें इस तरह की समिति की आवश्यकता है। जैसा मैंने कल कहा था कि हमें थोड़ा इन्तजार करना चाहिये और देखना चाहिये कि हमें क्या रास्ता अपनाना है और हमें इससे क्या अनुभव प्राप्त होता है। हम जानते हैं कि व्यवहार में संसद के प्रश्न पूछने और सूचना प्राप्त करने के अधिकार की कोई सीमा नहीं है। समय आने पर हमें इन निगमों के कार्यों तथा लेखाओं की जांच के विशेष उद्देश्य के लिए लोक लेखा समिति तथा प्राक्कलन समिति के स्वरूपों से मिली-जुली समिति की स्थापना में कोई बाधा नहीं आयेगी। वास्तव में किसी मामले की जांच के लिए लोक लेखा समिति उप-समितियां स्थापित करती रही है। यह दूसरा उपाय भी अपनाया जा सकता था। इसलिये इस समय मेरा विचार है कि सरकार की राय में यह अनुचित नहीं बल्कि सलाह देने योग्य नहीं है। यदि हम इस मामले में ज्यादा जल्दी करते हैं तो इसमें नुकसान होने का अधिक खतरा है।

15

अध्यादेश जारी करना*

मुझे लगता है कि वाद-विवाद** जितना बढ़ चुका है उसमें परिस्थितियां इसे युक्ति संगत नहीं ठहरा सकती और इसीलिये मैंने आपसे ऐसा कहा है। मेरा तात्पर्य यह है कि इस मामले पर निर्णय तभी किया जा सकता है जब प्रत्येक मामले में यह पता लगा लिया जाये कि अनुच्छेद 123*** के अंतर्गत शक्तियों का प्रयोग युक्ति संगत था अथवा नहीं इस चर्चा के संबंध में मेरे दिमाग में यही बात आई थी। प्रश्न इसके पूर्णतः प्रासंगिक होने का नहीं, बल्कि प्रश्न यह है कि इस समय इस मुद्दे पर चर्चा समयोचित है न कि इस सत्र के अंत में जबकि हम गुणवत्ता के आधार पर इन अध्यादेशों के संबंध में उठने वाले अधिकांश मामलों पर चर्चा कर चुके होंगे। परन्तु मैं यह स्वीकार करता हूं कि ऐसे दो अध्यादेश हैं जो सभा में नहीं रखे जायेंगे और इसलिये मैं अपने भाषण में उन परिस्थितियों का उल्लेख करूंगा जिसमें दो अध्यादेश अधिनियमित किये गये। इसके साथ ही मैं ऐसी कुछ सामान्य बातों का जिक्र करूंगा जो माननीय सदस्यों ने कही हैं। उन्होंने जो कुछ कहा है कि वह अधिकांशतः संविधान के उपबंध की उपयुक्तता से संबंधित है। अब मुझे लगता है कि इसकी परिधि से बाहर कोई नहीं जा सकता है और सबको चाहिये कि वे संविधान को उसी रूप में स्वीकार करें। जहां तक इस प्रकार के उपबंध की वांछनीयता से संबंधित टिप्पणियों और इंग्लैंड में इस उपबंध के विद्यमान न होने का प्रश्न है, इस तरह का उपबंध किस प्रकार सापेक्ष समझा गया और संयुक्त राज्य अमरीका में इसका विद्यमान न होना—ये सब ऐसी बातें हैं जिनका मैं उत्तर नहीं दूंगा।

अब जहां तक वास्तविक उपबंध का सवाल है "आपातकाल" और "तुरन्त" शब्दों का असंहत प्रयोग किया गया है। संविधान के अनुच्छेद 123 में "तुरंत" शब्द का प्रयोग

---

* लोक सभा वाद-विवाद, 16 फरवरी, 1954, कॉ० 122-132

** डा० कृष्ण स्वामी और डा० लंका सुंदरम के नोटिस पर अध्यादेश जारी करने संबंधी विषय पर बोलते हुए।

*** यह संसद के सत्रावसान के समय अध्यादेश लागू करने की राष्ट्रपति की शक्ति से संबंधित है।

किया गया है और मैं अनुच्छेद 352* के अंतर्गत जारी आदेशों की ओर ध्यान दिलाने वाले माननीय सदस्यों का जो इससे पूर्व बोल रहे थे, आभारी हूं। संविधान के प्रवर्तन से पहले की स्थिति यह थी कि इस तरह के आदेशों के लिये भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 317 के अनुक्रमण में और भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 42 की नवीं अनुसूची के अनुसार पुनः उद्धृत रूप में भारत सरकार अधिनियम, 1919 की धारा 72 लागू होती जो कि संविधान के उपबंध के समरूप है, बिल्कुल प्रवर्तित नहीं हुई और संघ की स्थापना नहीं की गई। पुरानी धारा इस प्रकार थी "गवर्नर जनरल आपातकाल की स्थिति में शांति स्थापना और अच्छी सरकार कायम करने आदि हेतु अध्यादेश बना और लागू कर सकता है। अब मैं अनुच्छेद 123 की निम्नलिखित भाषा से इसकी तुलना करता हूं।

"उस समय को छोड़कर जब संसद के दोनों सदन सत्र में हैं, यदि किसी समय राष्ट्रपति का यह समाधान हो जाता है कि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं जिनके कारण तुरन्त कार्रवाई करना उसके लिये आवश्यक हो गया है तो वह ऐसे अध्यादेश प्रख्यापित कर सकेगा जो उसे उन परिस्थितियों में अपेक्षित प्रतीत हो।"

और फिर इसमें नियंत्रण और संतुलन की व्यवस्था है और वे परवर्ती खंडों में अंतर्विष्ट हैं। खंड (2) के अनुसारः—

"इस अनुच्छेद के अधीन प्रख्यापित अध्यादेश का वही बल और प्रभाव होगा जो संसद के अधिनियम का होता है, किन्तु प्रत्येक ऐसा अध्यादेशः—

(क) संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखा जायेगा और संसद के पुनः समवेत होने से छह सप्ताह की समाप्ति पर या यदि उस अवधि की समाप्ति से पहले दोनों सदन उसके अनुमोदन का संकल्प पारित कर देते हैं तो इनमें से दूसरे संकल्प के पारित होने पर प्रवर्तन में नहीं रहेगा; और

(ख) राष्ट्रपति द्वारा किसी भी समय वापस लिया जा सकेगा।"

इसके पश्चात् इसका स्पष्टीकरण दिया गया है और अंत में खंड (3) है जिसके अनुसारः—

"यदि और जहां तक उस अनुच्छेद के अधीन अध्यादेश कोई ऐसा उपबन्ध करता है जिसे अधिनियमित करने के लिए संसद इस संविधान के अधीन सक्षम नहीं है तो और वहां तक वह अध्यादेश शून्य होगा।"

---

*आपातकाल की घोषणा

अतः मुझे यह लगता है कि इसकी वैधता सिद्ध करने के लिये इसे न्यायालय के समक्ष भी रखा जा सकता है। अब कुल मिलाकर यह प्रतीत होता है कि अतः सत्रावधि के दौरान कई ऐसे अवसर आ सकते हैं जब राष्ट्रपति को लोकहित में अनुरूप व्यवहार करना पड़े और यदि वह ऐसा नहीं करता तो इसका कुप्रभाव लोकहित पर पड़ेगा। अतः हमें पुनः इस निर्णय की ओर ध्यान देना होगा कि वे कौन सी सामान्य परिस्थितियां थीं जिनके कारण राष्ट्रपति को अध्यादेश जारी करना पड़ा। अतः मुझे यह लगता है कि जब तक किसी मामले पर गुणावगुण के आधार पर विचार न किया जाये तब तक केवल उन आंकड़ों पर कि कौन सा अध्यादेश लागू किया गया यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि राष्ट्रपति अध्यादेश जारी करने का आदी है अथवा कार्यकारी शासन उसे ऐसी सलाह देने का आदी है।

अब मैं अनुच्छेद 269 पढ़ता हूं। इसमें यह कहा गया है कि "संघ द्वारा उद्ग्रहीत और संग्रहीत शुल्क और कर परन्तु जिनके संग्रहण का दायित्व राज्यों को सौंपा गया है रेल, समुद्र अथवा वायु मार्ग से ले जाये जाने वाले माल पर सीमा कर हैं, तदनन्तर खंड (2) के अनुसार शुद्ध आगम उन राज्यों को सौंपे जायेंगे जिनके भीतर वह शुल्क या कर उस वर्ष में उद्ग्रणीय हैं। मेरे विचार से यह डा० लंका सुन्दरम की इस टिप्पणी को अमान्य ठहराती है कि हमारे लिये पूरक मांग रखना अथवा संसद में अन्य प्रस्ताव रखना संभव होगा। अब, जहां तक व्यय का संबंध है, हम इसे वहन नहीं करते हैं, इसे उत्तर प्रदेश सरकार वहन करती है और कर प्राप्तियां भी संघ की संचित निधि में जमा नहीं होती बल्कि उत्तर प्रदेश की संचित निधि में जाती है।

कर लगाने के संबंध में कानून का जिक्र किया गया था। मैं समझता हूं कि माननीय सदस्य इस तर्क का पहले ही उत्तर दे चुके हैं। जहां तक कानूनी स्थिति का संबंध है अध्यादेश द्वारा कोई कर लगाने अथवा अध्यादेश द्वारा कोई अन्य मामला तय करने में कोई अंतर नहीं है। यह चाहे अध्यादेश हो अथवा संसद द्वारा पारित कानून, कानून तो कानून ही है।

जहां तक पूर्वोदाहरणों का प्रश्न है, अध्यादेश द्वारा कर बढ़ाये जाने के कम से कम छह उदाहरण हैं, इंडियन पोस्ट आफिस एमेंडमेंट आर्डिनेंस, 1935 लागू किया गया था। यह पुरानी बात है। इसके बाद आय पर भारतीय कर (स्रोत से कटौती) अध्यादेश, 1935, और अधिक आय कर, अध्यादेश, 1943 और इस संसद के काल में वस्त्र पर अतिरिक्त उत्पाद शुल्क, 1953 लागू किया गया। इसके बाद संविधान के लागू होने से ठीक पहले उत्तर प्रदेश यात्री सीमा कर अध्यादेश, 1950 लागू हुआ जिसे हरिद्वार कुंभ मेला

अध्यादेश कहा गया। यह किसी राज्य सरकार द्वारा अध्यादेश के माध्यम से कर लागू करने का भी उदाहरण है।

मैं यह कहना चाहूंगा कि प्रत्येक मामला और निश्चित रूप से वस्त्र पर उत्पाद शुल्क का मामला संसद के समक्ष पेश किया गया। जहां तक मुझे जानकारी है मुझे नहीं लगता कि निश्चित प्रयोजन हेतु और कुछ निश्चित परिस्थितियों में अध्यादेश द्वारा कर लागू करने की राष्ट्रपति की शक्ति पर कोई आपत्ति उठायी गई थी।

अब यह तो सामान्य कानूनी स्थिति है। जहां तक इस मामले के तथ्यों विशेष रूप से कुंभ मेला सीमा कर लागू करने का संबंध है, तत्संबंधी तथ्य इस प्रकार हैं। अक्तूबर 1953 के अंत में हमें उत्तर प्रदेश सरकार से एक सूचना प्राप्त हुई जिसमें कुंभ मेला के लिये अपेक्षित व्यय के अनुमान के आधार पर कई प्रस्ताव रखे गये थे। यह बताया गया कि चूंकि नदी ने अपना रुख बदल दिया है मेले के लिये नये स्थल का विकास करना पड़ेगा अथवा स्थल पर पहुंचने के लिये अलग-अलग रास्ते बनाये जायेंगे और इसका पूरा खर्चा विगत व्यय से बहुत अधिक होगा। अतः पहला प्रस्ताव यह था कि इस व्यय का एक हिस्सा वहन करने के लिये केन्द्र को उसे अनुदान देना चाहिये।

दूसरा प्रस्ताव यह था कि राज्य को पुराने तीर्थ कर से प्राप्त राशि का हिस्सा जिसका उपयोग इसी प्रयोजन हेतु किया जाता है बढ़ाने की अनुमति दी जाये। यह उल्लेख किया गया कि प्राप्त राशि लगभग 2 अथवा $2^1/_2$ लाख रुपये होगी जो कि वर्तमान प्रयोजन हेतु अपर्याप्त होगी, अतः उन्होंने यह सुझाव दिया कि 1950 से पहले हरिद्वार कर की तरह एक टर्मिनल कर लगाया जाये और यह संगणना की कि वे इस प्रकार 15 लाख रुपये तक एकत्र कर सकेंगे।

इन प्रस्तावों के गुणावगुणों के बारे में पत्र व्यवहार करने में बहुत अधिक समय लगा। वित्त मंत्रालय की यह राय थी कि केन्द्र के लिए अनुदान देना उचित नहीं होगा। फिर, उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से पुनः अभ्यावेदन भेजे गये जिनका उत्तर देना पड़ा। तब हमने इंगित किया था कि सीमा कर के बारे में भी उत्तर प्रदेश सरकार के पास उपलब्ध संसाधनों को देखते हुए 12 या 13 लाख रुपयों की अतिरिक्त धनराशि उगाहनी आवश्यक नहीं लगती है। उनके द्वारा विभिन्न माध्यमों से इस मामले को फिर से उठाया गया था और दिसम्बर के अंत में जब सदन स्थगित हुआ था अथवा सत्रावसान हुआ था तब यह निर्णय लिया गया कि हमें उत्तर प्रदेश सरकार के प्रस्ताव के उस हिस्से को विशेषतया इस तथ्य को देखते हुए स्वीकार कर लेना चाहिए जिसमें सीमा कर को बढ़ाने की बात कही गई है। क्योंकि हमने उनके द्वारा मांगे गए अनुदान के लिए इनकार कर दिया था।

अब आप कहेंगे कि यह सब प्रशासनिक देरी के कारण हुआ। निश्चय ही यह बात थी लेकिन मुझे नहीं लगता कि सरकार के एक सौ एक कार्यों एवं संसदीय कार्यों में संलग्न रहने के बावजूद कोई यह सोचे कि इस कर को लागू करने संबंधी विधेयक सदन के समक्ष लाने हेतु कार्रवाई किया जाना संभव था। जो कुछ घटित हुआ, यह उसका बिना लीपा-पोती का विवरण है।

वित्त मंत्री ऐसी किसी धारणा को स्वीकार नहीं कर रहे हैं कि सभा इस न्यून कर जो कि विशेष उद्देश्य से पिछले वर्ष लगाया गया था, के मामले में कड़ाई बरतेगी। संभवतः माननीय सदस्य यह कह सकते हैं कि वित्त मंत्री लापरवाही का जिम्मा उत्तर प्रदेश सरकार के कंधों पर डाल रहे हैं। वे यह कहेंगे कि सारी कार्यपालिका एक ही है क्योंकि इसे भी वही दल संचालित कर रहा है। उत्तर प्रदेश सरकार यह अनुमान नहीं लगा सकी कि दो सरकारों के बीच पत्र व्यवहार में कई महीने लग जायेंगे, अतः उन्हें इसके लिये अगस्त के अंत से पत्र व्यवहार करना चाहिए था न कि अक्तूबर के अंत में। मैं इस आरोप का उत्तर देने की स्थिति में नहीं हूं। ये प्रस्ताव पहले क्यों नहीं भेजे जा सके। यह बे ही भली-भांति जानते होंगे। हो सकता है कि इंजीनियरों ने बदलती परिस्थितियों में, अर्थात् नदी का रुख बदलने से कुंभ मेले में आवश्यक कार्य के स्वरूप के बारे में सलाह न दी हो।

मैं उत्तर प्रदेश सरकार का बचाव करने की स्थिति में नहीं हूं। मैं तो बस यही कह सकता हूं कि हमें 30 अक्तूबर को यह सूचना प्राप्त हुई कि हमने वित्त मंत्रालय में सावधानीपूर्वक यह भार वहन करने से इंकार कर दिया और किसी भी मामले में हमने आसानी से यह नहीं माना कि जब तक हमे यकीन न हो, जनता पर कर लगा दिया जाये। अतः यदि हमें इस बात का समाधान करने में कुछ महीने लग जायें कि जनता पर कर लगाना आवश्यक है अथवा नहीं तो मेरे विचार से यह कोई दण्डनीय अपराध नहीं है। इस मामले में यही बात हुई है।

अन्य अध्यादेशों के मामले में भी मेरे पास ब्यौरा मौजूद है परन्तु जैसा कि आपने कहा कि यह अवसर अध्यदेशों के गुणावगुणों पर विचार करने का नहीं है। मैं बरसी लाइट रेलवे कानून का जिक्र करना चाहूंगा। इस मामले में इंग्लैंड में पंजीकृत कंपनी, बरसी लाइट रेलवे कम्पनी को दिसम्बर, 1952 में एक वर्ष का नोटिस दिया जिसमें जनवरी 1954 में भारत सरकार की इस कंपनी को खरीदने की इच्छा प्रकट की गई थी। कामगारों के हितों की रक्षा करने के लिये सरकार ने कम्पनी को इस बात के लिये राजी कर लिया कि कंपनी सरकार को समुचित धनराशि अदा करेगी ताकि कंपनी के कर्मचारियों को उनकी सेवावधि का उपदान और अवकाश वेतन प्रदान किया जा सके। यद्यपि कम्पनी ने आवश्यक राशि का भुगतान करने की इच्छा व्यक्त की थी परन्तु हमें पता चला कि

इंग्लैंड के कानून के अनुसार हमारे कानून के अनुसार नहीं— वह कम्पनी ऐसा करने के लिए कानूनी रूप से सक्षम नहीं थी क्योंकि 1 जनवरी, 1954 को इस उद्योग को खरीदने पर कम्पनी का कारोबार समाप्त हो जाना था और इसलिए यह खतरा पैदा हो गया था कि कम्पनी द्वारा किये गये इस निराधार भुगतान का अपने यहां के श्रमिकों के हितों की रक्षा के उद्देश्य से ब्रिटेन में कम्पनी के शेयरधारियों द्वारा विरोध किया जायेगा। और मुझे पता है कि इस सम्बन्ध में देश के उस क्षेत्र के सांसद अत्यधिक चिंतित थे, ऐसी स्थिति में हमने यही बेहतर समझा कि इस संबंध में एक अध्यादेश जारी किया जाये और ऐसी स्थिति में जबकि इस उद्योग का 1 जनवरी, 1954 को अधिग्रहण किया जाना था, इसके लिए अध्यादेश जारी करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रह गया था। फिर यह तर्क भी दिया जा सकता था कि इंग्लैंड के काननू के अनुसार कम्पनी के सम्भावित कानूनी अधिकारों की जांच पहले क्यों नहीं की जा सकी थी। मेरे पास इसके अतिरिक्त कोई अन्य उत्तर नहीं था कि प्रत्येक मंत्रालय में इसी विधि से ऐसे विषयों पर विचार किया जाता है जब कोई निर्णय लिया जाता है तो कोई न कोई दूसरा मुद्दा उठा लेता है। तत्पश्चात् कम्पनी के साथ बातचीत होती है और उन्हें अनेक प्रस्ताव दिये जाते हैं। उनके द्वारा कुछ प्रस्ताव स्वीकृत कर लिये जाते हैं तथा कुछ अस्वीकृत कर दिये जाते हैं। निश्चित अवधि के दौरान कुछ बातों का निर्धारण किया जाता है और इस मामले में यह निर्धारित किया गया था कि उनके द्वारा अपने कोष से हमारे मजदूरों को उपदान का भुगतान किया जाये। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं यह कार्य दिसम्बर के अंत में अथवा मध्य में हुआ और हमें इस बात का पता लगाने में थोड़ा समय लगा कि इस सम्बन्ध में कानूनी स्थिति क्या है। इसलिए इस मामले में भी मेरे विचार से इस विषय से संबंधित कोई भी निष्पक्ष विचारक इस निष्कर्ष पर ही पहुंचेगा कि सम्भवतः यह अध्यादेश न्यायसंगत था।

महोदय, इसलिये मैं कहता हूं कि जब तक कि किसी को प्रत्येक मामले की विस्तृत जानकारी न हो तब तक कोई परिणाम निकालना वास्तव में संभव नहीं है और यह कि वास्तविक कठिनाई कार्यपालिका द्वारा सदन की उपेक्षा करने की कतिपय कोई इच्छा नहीं है अपितु कार्यपालिका द्वारा विकसित होती प्रत्येक परिस्थिति का अनुमान न लगा पाना है। इस सम्बन्ध में प्रशासनिक विलम्ब तथा भावी स्थितियों का अनुमान लगाने से संबंधित कमियां हैं। संभवतः आप कह सकते हैं कि ये दूरदर्शिता से संबंधित कमियां हैं। मेरे विचार से विश्व की सभी कार्यपालिकाओं में इस प्रकार की कमियां हैं। कभी-कभी हम यह कह सकते हैं कि हमें इस बात का विश्वास नहीं है कि हमारी योजना कार्यान्वित हो सकेगी अथवा नहीं अथवा हमारी राष्ट्रीय योजना लागू हो सकेगी अथवा नहीं तो इस विचार के पीछे हमारे मस्तिष्क में यही पृष्ठभूमि होती है। यह एक बहुत बड़ा दोष है। कोई भी स्पष्ट रूप से यह नहीं कह सकता है कि यह दोष कहां है अथवा विलम्ब होने के क्या

कारण हैं। परन्तु मैं इस बात से सहमत हूं कि सभा के सदस्यों के समक्ष प्रशासकीय विलम्ब का अथवा दूरदर्शिता की कमी का प्रश्न नहीं है फिर भी जिन-जिन मामलों में ऐसी बातें हो सकती हैं उस सम्बन्ध में सदस्य सरकार पर आरोप लगा सकते हैं। परन्तु मुझे यह लगता है कि यह कार्यपालिका को अप्रत्यक्ष रूप से बदनीयत कहने का मामला है तथा मैं इसका खण्डन करता हूं। मेरे विचार से हर मामले में निर्णय बड़ी ईमानदारी और पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद करने पड़ते हैं क्योंकि इस समय कार्यपालिका भी इस बात से अवगत है कि विधान मंडल ही अध्यादेश जारी करता है और मैं सदन को यह विश्वास दिला सकता हूं कि कोई अध्यादेश पर्याप्त विचार-विमर्श के बाद ही जारी किया जाता है। इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि इस चर्चा का उद्देश्य अप्रत्यक्ष रूप से यह कहना है कि कार्यपालिका अक्षम है। मेरे विचार से इस मामले को, इस बात पर चर्चा के बजाय कि कोई अध्यादेश उचित है या नहीं, अथवा इस बात पर चर्चा करना और भी बुरा है कि क्या कार्यपालिका को अध्यादेश जारी करने की आदत है, किसी और तरह से भी प्रस्तुत किया जा सकता है।

अन्तिम बात यह है कि माननीय सदस्यों ने कहा है कि संसद के लिए यह उचित होगा कि वह भारत के गणतंत्र बनने के बाद से अब तक जारी किये गये सभी अध्यादेशों के ऊपर निर्णय देने के लिए एक समिति बनाये। मुझे एक सांसद ने स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से अब तक के जारी किये गए सभी अध्यादेशों को प्रस्तुत करने की चुनौती दी थी। मेरे लिए उस आदेश का पालन करना संभव नहीं है। मेरे पास वे सभी अध्यादेश हैं जिन्हें पिछली अन्तर्सत्रावधि में जारी किया गया था। किन्तु मुझे ऐसा लगता है कि इस कार्य से सदन का अधिकांश समय ही बर्बाद होगा। यह कार्य इस प्रकार का होगा जिसका उद्देश्य शव परीक्षण जैसा होगा जो घटना के काफी बाद की जाती है। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन अध्यादेशों को कानून बनाने में—कुम्भ मेला जैसे थोड़े से मामलों में अथवा कम से कम ऐसे अधिकांश मामलों में उनके औचित्य पर अथवा, कार्यपालिका की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा धारा 123 के अंतर्गत निहित अपनी शक्तियों का उपयोग किये जाने पर निर्णय देने के लिए—संसद के पास पर्याप्त अवसर होते हैं। इस विशेष अध्यादेश के सम्बन्ध में जैसा कि मैं कह चुका हूं कि विधान मंडल के समक्ष इस पर चर्चा करने के लिये कोई अवसर नहीं था क्योंकि उत्तर प्रदेश सरकार के अनुसार मेला दिसम्बर' में किसी भी समय आरम्भ किया जाना था।

हम यथाशीघ्र अर्थात् 7 जनवरी से इस अध्यादेश को जारी करके प्रभावी बना सकेंगे। जो बात मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि उत्तर प्रदेश सरकार ने अपने पहले पत्र में 15 मार्च की तारीख दी थी, जब हमने यह स्वीकार किया था कि संसद में आवश्यक विधेयक पारित करने के लिए कार्य मंत्रणा समिति से परामर्श करने का पर्याप्त

समय था। इसलिए यह स्पष्ट है कि इस अध्यादेश के संबन्ध में, जिसका समय 15 मार्च को समाप्त होता था। हमने जानबूझ कर सदन को अंधेरे में रखने का कोई प्रयास नहीं किया था। संयोगवश मेला 15 मार्च को समाप्त हो रहा था और किसी ने—संभवतः आप ही ने 15 फरवरी से ही सत्र प्रारंभ होने की तिथि निर्धारित कर दी थी जिससे कि समय केवल 4 सप्ताह का रह जाये न कि 6 सप्ताह का। यदि ऐसी स्थिति न रही होती तो इस विधेयक को सदन के समक्ष लाकर उसका निर्णय सुनने में मुझसे अधिक प्रसन्नता किसी और को नहीं होती। मुझे बस यही कहना था।

16

आंध्र राज्य विधेयक*

श्रीमान आपकी अनुमति से मैं वाद विवाद** में इस समय ही बोलना चाहता हूं जिससे कि मैं सदन को परिसम्पत्तियों तथा दायित्व की बांट के संबंध में इस विधेयक के उपबंधों पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाल सकूं और इस विधेयक में तुंगभद्रा परियोजना के संबंध में जो उपबंध हैं उसके संबंध में भी अपने विचार प्रकट कर सकूं।

मैं प्रारम्भ में ही यह कहना चाहता हूं कि भारत सरकार ने इस उलझे हुए और नाजुक मामले पर मद्रास तथा मैसूर के विधान मंडलों में प्रकट किये गये विभिन्न विचारों पर बड़ी सावधानी से विचार किया है। उसने उन विभिन्न प्राधिकारियों की रिपोर्टों में दी गई सिफारिशों, जिन्होंने पहले इस समस्या पर विचार किया है, को भी ध्यान में रखा है। सरकार ने न्यायमूर्ति श्री वांचू की रिपोर्ट में की गई सिफारिशों को तो विशेषकर ध्यान में रखा है। माननीय सदस्यों ने अब तक वाद विवाद में जो विचार प्रकट किये हैं मैंने उन पर भी सावधानीपूर्वक विचार किया है। मुझे यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि भारत संघ में नए राज्यों की स्थापना से उत्पन्न होने वाली समस्याओं पर 1947 में देश तथा कुछ प्रांतों के विभाजन से सम्बद्ध प्रश्नों की तुलना में विभिन्न दृष्टिकोण से विचार करना होगा। 1947 के विभाजन का प्रश्न बिल्कुल ही भिन्न था और वह दो अलग तथा स्वतंत्र राज्यों से सम्बद्ध था। भारत संघ में बनने वाले नये राज्यों के केन्द्र के साथ वैसे ही संबंध होंगे जैसे कि अन्य राज्यों के हैं और वे अपने विकास के लिये भिन्न प्रकार की सहायता की आशा केन्द्र से ही रखेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि इस समस्या को निपटाते समय हम 1936 में सिंध प्रांत के निर्माण का दृष्टांत अपने सामने रखें न कि 1947 में देश के विभाजन के उदाहरण को देखें।

---

*लोक सभा वाद विवाद, 17 अगस्त, 1953 कॉ० 904—914

**डा० काटजू (गृह और राज्यों के मंत्री) द्वारा 13 अगस्त, 1953 को प्रस्ताव रखा गया। 'आंध्र राज्य की स्थापना मैसूर राज्य के क्षेत्र में विस्तार करने और मद्रास राज्य के क्षेत्र को कम करने तथा इससे संबंधित मामलों का उपबंध करने वाले विधेयक पर विचार किया जाये"।

मैं एक बात और कहना चाहता हूं जोकि मेरे विचार में काफी महत्व रखती है। यह तो ठीक है कि परिसम्पत्तियों तथा दायित्व के बंटवारे में न्याय तथा साम्य का ध्यान रखना चाहिए। परन्तु साथ ही यह बात भी याद रखनी चाहिए कि बंटवारा तो उन परिसम्पत्तियों तथा दायित्व का होना है जोकि बंटवारे के समय विद्यमान हों। इस प्रयोजन के लिये यह सोचने या इस बात की जांच करने में कोई लाभ नहीं और न ऐसा करना व्यवहार है कि पहले इस प्रति के प्रशासन में क्या हुआ है, और वर्तमान मद्रास राज्य के दो भागों के आर्थिक विकास के लिये कहां तक राजस्व का प्रयोग किया गया है और रक्षित निधि में से कहां तक खर्च किया गया है। इस प्रकार की जांच भ्रममूलक ही होगी। इस बात की भी कठिनाई होगी कि यह जांच कितने काल के लिये की जाये—हमें वह कालावधि निश्चित करनी होगी—और यह भी कठिनाई होगी कि पुराने राज्य के प्रशासन की जिम्मेदारी जिन लोगों पर है, वे उत्तर देने के लिये यहां उपस्थित नहीं हैं। दोनों राज्यों के बीच अच्छे पड़ौसियों जैसे संबंध रहने चाहिएं और इन संबंधों के लिये यह जरूरी है कि ऐसी भावना की गुंजाइश ही न रहने दी जाये कि उनमें से किसी पर भी कोई भारी वित्तीय बोझ इसलिये पड़ रहा है कि भूतकाल में कोई कार्यवाही की गई या नहीं की गई। मैं यह बात विशेष कर इसलिये कह रहा हूं कि लोगों में प्रस्तुत राज्य के कुछ क्षेत्रों की तथा कथित अपेक्षा के संबंध में विचार प्रकट किये गये हैं और यह कहा गया है कि परिसम्पत्तियों तथा दायित्व के बंटवारे के समय इस बात को ध्यान में रखने की आवश्यकता है। मेरा अपना विचार यह है कि इस बात का ध्यान रखना परिसम्पत्तियों तथा दायित्व के बंटवारे के समय उतना जरूरी नहीं है जितना कि भविष्य में नये राज्यों को विकास के लिये सहायता की मात्रा निश्चित करते समय है। उस समय इस बात को कोई महत्व नहीं रहता जबकि जैसे मद्रास का मामला है, हम चालू परिसम्पत्तियों का उतना बंटवारा नहीं कर रहे जितना कि सम्भवतया दायित्व का। उदाहरण के तौर पर यदि वर्तमान सरकार के पास बहुत बड़ी संचित नगद निधियां बांटने के लिये होती किन्तु कोई ऋण न होता तो कहा जा सकता था कि इन सम्पत्तियों का एक बहुत बड़ा अंश उस राज्य के हाथ में रहना चाहिए जिसे अभी बहुत कुछ विकास कार्य करना है। किन्तु वास्तव में अनेक निश्चित तथा अचल सम्पत्तियों एवं सरकार द्वारा दिये गये ऋणों को बकाया राशियों के अतिरिक्त राज्य की तुरन्त बंट सकने योग्य रकमें (तरल सम्पत्तियों) तो बहुत ही कम होंगी; किन्तु जनता तथा केन्द्रीय सरकार का भारी ऋण राज्य की ओर निकलेगा जिस के दायित्व का निश्चय करना है।

इस बात में कुछ और भी आलोचना हुई है कि बिना पूरी जानकारी के हमें संपत्तियों एवं दायित्वों के बंटवारे की बात नहीं सोचनी चाहिए। जहां तक वर्तमान विधेयक का

प्रश्न है, इसमें केवल वे साधारण सिद्धान्त हैं जिनके आधार पर बंटवारा होगा। सरकार का काम लगातार चला करता है अतः दोनों राज्यों में होने वाले कार्यों में बाधा पड़ने के बिना सभी संपत्तियों और दायित्वों का पूरा-पूरा मूल्यांकन करना असंभव होगा। किन्तु जहां तक वित्तीय संपत्तियों और दायित्यों से संबंधित वास्तवित बंटवारे का प्रश्न है सितम्बर 1953 को आलेखित लेखा के आकड़ों के आधार पर ही उसे आवंटित किया जायेगा। सदन को ज्ञात है कि इस प्रकार का लेखा नियंत्रक महालेखा परीक्षक ही रखा करते हैं, और इसी लेखा ब्यौरे से हम यह सभी जानकारी प्राप्त करेंगे जो आवंटन के लिये आवश्यक है।

अतएव मैं इस बात को बतलाने की आवश्यकता नहीं समझता कि साधारण सिद्धान्तों के निर्धारण में केन्द्र किन्हीं गुप्त आंकड़ों का सहारा नहीं ले रहा है। और न केन्द्र पर वर्तमान सरकार द्वारा प्रस्तुत किये गये किसी विशेष दृष्टिकोण का ही प्रभाव पड़ा है।

अब मैं, संक्षिप्त में उन मूल्य आधारों की व्याख्या करूंगा जिनके अनुसार प्रस्तुत विधेयक सम्पत्तियों एवं दायित्यों का बंटवारा करना चाहता है। सड़क, मकान, अचल जायदाद, विविध परियोजनायें, आदि जैसी भौतिक सम्पत्तियां किसी न किसी राज्य के क्षेत्र में होंगी, और उनके साथ अन्य सम्बद्ध चल सम्पत्तियां भी होंगी। यह तो, निस्संदेह रूप से अनिवार्य बात है। साधारणयता, ये सम्पत्तियां, उन एक दो अपवादों के अनुसार जिनकी ओर मैं बाद में निर्देश करूंगा, क्षेत्रीय आधार पर आवंटित होंगी। कृषकों, स्थानीय निकायों, आदि को वर्तमान सरकार द्वारा दिये गये ऋण के रूप में बकाया राशियां जैसी कई वित्तीय सम्पत्तियां भी राज्य बनाने वाले क्षेत्र के साथ सीधा संबंध रखेंगी, और ये बकाया राशियां उसी राज्य को मिलेंगी जहां यह क्षेत्र स्थित हों। इस प्रश्न पर भी कई ऐसे विचार प्रगट किये गये हैं जो दोनों राज्यों में संपदाओं के परिणाम के संबंध में किसी कल्पनात्मक सूचना पर आधारित है। ज्योंही इस बात का पता चलेगा कि आंकड़े वास्तविक नहीं हैं, त्योंही यह दलील बदल जायेगी। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अपूर्ण तथा अपरिपक्व आंकड़ों से साधारण सिद्धांत निकालना कितना खतरे का काम है। इस मिली-जुली सरकार को नगद रुपया जैसी कई अन्य सम्पत्तियां भी होंगी जिन्हें क्षेत्रीय आधार पर बांटा नहीं जा सकता। ऐसी सम्पत्तियों के विषय में विधेयक में इस प्रकार बताया गया है कि दोनों राज्यों के क्षेत्रों तथा मैसूर को स्थानांतरित किये गये क्षेत्र में रहने वाले लोगों की संख्या के अनुपात से ही आवंटन होगा। इस समय मैं इस आवंटन का और कोई आधार नहीं सोच सकता। मैं पहले भी बतला चुका हूं कि इस बात का हिसाब लगाना तो असंभव सा होगा कि भूतकाल में ये सम्पत्तियां किस तरह बनाई गईं और मुझे

इसके लिए सबसे अधिक न्यायपूर्ण प्रणाली यही दीख रही है कि जनसंख्या के आधार पर ही इन सम्पत्तियों का बंटवारा होना चाहिए। यद्यपि यह प्रणाली किसी हद तक अपरिमार्जित कही जा सकती है। ये सम्पत्तियां इस अर्थ में लोगों को मिल्कियत कही जा सकती हैं क्योंकि इन्हें किसी विशिष्ट अभिप्राय के लिये अलग नहीं किया गया था। अतः यह अतार्किक नहीं होगा यदि इन सम्पत्तियों को इस समानुपात में बांटा जाये जिस अनुपात में वर्तमान राज्य की जनसंख्या दो नये राज्यों तथा मैसूर के बीच बांटी जा रही है।

यों तो बंटवारे को इस योजना में दो रूप भेद हो सकते हैं जहां तक केन्द्रीय निधियों का, जो सारे राज्य के काम में लाने के लिए अभिप्रेत हैं किन्तु जिन्हें रक्षित भंडार के रूप में रखा गया है, प्रश्न है, उनके बंटवारे के लिए क्षेत्रीय बंटवारा कोई भी मापदण्ड नहीं हो सकता। अतः यह उपबंधित हुआ है कि उन्हें उसी भौतिक अनुपात में विभाजित किया जाना चाहिए। जिस अनुपात में इन तीनों राज्यों ने क्रमशः विभाजन से पहले के तीन वित्तीय वर्षों में निधियों में से भंडारों की मांग की थी, और मुख्यालयों के कार्यालयों की वस्तु सूचियां इस अभिप्राय के लिये अलग रखी जानी चाहिए। इसी प्रकार हम जहां तक भी व्यवहार्य हो सके सरकारी प्रेस को आंध्र तथा शेष मद्रास के बीच, भौतिक रूप से बांटने की भी व्यवस्था कर रहे हैं। यह भी याद रखा जाना चाहिए कि जहां तक भण्डारों का प्रश्न है, हम अप्रयुक्त सामान का, जिसमें लेखन सामग्री तथा कुछ अन्य बिजली का सामान है, निपटारा कर रहे हैं। तुंगभद्रा परियोजना जैसे विशिष्ट अभिप्रायों के लिये दिये गये सामानों का उल्लेख तक इस विभाजन में नहीं आता।

स्थान के आधार पर सम्पत्तियों के बंटवारे के संबंध में मुझे एक और आवश्यक बात का उल्लेख करना होगा। सितम्बर के अंत में, इस मिले-जुले राज्य के पास खाद्यान्न की बड़ी-बड़ी राशियां होंगी, और कृषिसारों की भी राशियां होंगी जिनमें से कुछ एक मुख्यालयों में होंगी और कुछ एक राज्य के विविध भागों के केन्द्रों में होगी। इन भंडारों को स्थान स्थिति से कदाचित इन सम्बद्ध क्षेत्रों की आवश्यकताओं का पता नहीं चल सकता। अतः इसके परिणामस्वरूप पश्चात्वर्ती पुनः वितरण की समस्यायें पैदा हो सकती हैं। अतः हमारा यह विचार है कि इन भंडारों को संभाला जाये, यानी, केन्द्र ही इन्हें अटकल से 30 सितम्बर को अपने जिम्मे ले और उस अर्थोपाय आवास को घटाये जो भंडारों के मूल्यानुसार वर्तमान सरकार को दिया जा चुका है। अतः इन तीनों में से, जिनके क्षेत्रों में ये भंडार पड़े हैं, प्रत्येक सरकार इन भंडारों को नियुक्त तिथि को केन्द्रीय सरकार की ओर से अपने पास रखेगी। इसके पश्चात् इन भंडारों का नई सरकारों के नाम स्थानांतरित किया गया समझा जायेगा, और अन्य खर्चे सहित उनकी ये राशियां उनके

हिस्से में से घटाई जायेंगी। इसके परिणामस्वरूप अन्य राज्यों के नाम इन भंडारों का स्थानांतरण केन्द्रीय सरकार की ओर से नकद बिक्री समझा जायेगा और साधारण क्रम से उनसे धन प्राप्त किया जायेगा। इस सारे का यही सार है कि चूंकि केन्द्र द्वारा ही इस बात को वित्तीय सहायता मिली है, अतः ये सभी सम्पत्तियां केन्द्र की मिल्कियत हैं।

अब मैं दायित्वों के बटवारे पर आऊंगा। मोटे तौर पर इन्हें चार श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है: (1) मद्रास सरकार द्वारा इकट्ठे किये गये ऋण, (2) मद्रास सरकार ने केन्द्र से समय-समय पर ऋण लिये हैं, जिनमें मद्रास को 1937 में दिया गया प्राक्स्वायत्तता ऋण का बकाया भी है, किन्तु जिसमें से यह अर्थोपाय आवास, जिसकी ओर मैंने अभी निर्देश किया, घटाया जा चुका है; (3) अपने कर्मचारियों के प्रति सरकार के दायिव भी हैं—जैसे कि भविष्य निधि की बकाया राशि, और (4) स्थानीय समितियों आदि से जमा कराई गई अथवा ली गई धन राशियों के दिये गये ठेकों अथवा प्रत्याभूतियों से पैदा होने वाले दायित्व जो तीसरी पार्टियों के प्रति हैं। जहां तक पहली दो श्रेणियों अर्थात् केन्द्र द्वारा संग्रह कराये गये ऋणों, और उस केन्द्र से लिये गये ऋणों का प्रश्न है, प्रस्तुत विधेयक में यह उपबंधित हुआ है कि क्रमशः अलग-अलग क्षेत्रों में स्थापित सम्पत्तियों के पूंजी मूल्य के अनुपात से ही दायित्वों का वितरण होना चाहिए। इस प्रयोजन के लिये वही पूंजी व्यय लिया जायेगा जो लेखा में आ चुका है। विशद रूप से, इस आधार पर दायित्वों के आवंटन का कारण इस प्रकार है। जब भी ऋण लिये गये, पूंजी प्रयोजनार्थ लिये गये, यद्यपि संविधानिक रूप से राज्य के राजस्व पर ही उनका बोझ पड़ता रहा। यदि यह माना जाये कि चालू राजस्वों को राज्य के साधारण दैनिक प्रशासन पर व्यय किया गया और अतिरिक्त राशि को पूंजी के काम में लगाया गया, तब तो जनता अथवा केन्द्रीय सरकार से ऋण पर ली गई बाकी राशि को पूंजी व्यय के उस भाग की ही वित्तीय सहायता के हित दिया गया माना जाना चाहिए, जिसे राजस्व से पूरा नहीं किया जा सका। संक्षिप्त एवं पूर्ण रूप से यह कहना कठिन है कि किसी विशेष परियोजना पर कितना ऋण व्यय किया गया, किन्तु हमारे विचार में, यदि सारे राज्य को लिया जाये तो इस बात में कोई भी अन्यायपूर्णता नहीं होगी कि इस प्रकार के ऋणों से प्राप्त की गई पूंजी सम्पत्तियों पर उनके पुस्तक मूल्य के अनुपात में ही ऋण के दायित्व का भी आवंटन हो। सरकारी कर्मचारियों की भविष्य निधि को लौटाने का दायित्व उसी सरकार पर होगा जिसमें वे कर्मचारी स्थायी रूप से काम कर रहे हों, और प्रस्तुत विधेयक इस बात को भी उपबंधित करता है। यह स्पष्ट है कि इस समय की निवृत्ति वेतन की अदायगी, और विभाजन के दिनांक तक मिले-जुले राज्य के अधीन सेवा के निवृत्ति वेतन की अदायगी का दायित्व इन तीनों राज्यों पर है जिनके बीच यह मिला-जुला राज्य बटा जा रहा है। इस दायित्व को सौंपने का एकमात्र उपलब्ध आधार जनसंख्या है, और विधेयक

में इस आवंटन का भी उपबंध रखा गया है। जहां तक काम में लगे सरकारी कर्मचारी का प्रश्न है, उसका निवृत्ति वेतन उसे उसी प्रकार से मिलेगा जिसके साथ वह स्थायी रूप से बंधा हो। निवृत्त होने पर उसकी उसी सरकार से निवृत्ति वेतन मिला करेगा, और उसकी वह अदायगी इन तीनों साझे की सरकारों के हिसाब में से काटी जायेगी।

जहां तक प्रत्याभूतियों आदि, एवं स्थानीय निधियों तथा स्थानीय समितियों की संचित निधियों के दायित्व का प्रश्न है, इन्हें क्षेत्रीय आधार पर आवंटित किया जाने का विचार किया जा रहा है। यह तो स्पष्ट है कि जिस सरकार के नियंत्रण में यह क्षेत्र हो, वही उस के दायित्व संभाले। वे साहूकारों तथा राज्य के बीच एक निरन्तर प्रशासकीय एवं वित्तीय संबंध का प्रतिनिधित्व करते हैं, किसी बाहरी अधिकारी को सुविधाजनक रूप से उनके स्थान में नहीं रखा जा सकता, और स्थानीय समितियों तथा कृषकों को दिये गये उगाऊ धन के रूप में जो भी संपत्तियां हैं, उनके संबंध में भी यही बात चरितार्थ होती है, क्योंकि और किसी प्रकार का विभाजन उस तेजी पर अपना प्रभाव डालेगा, जिस तेजी से सम्बद्ध सरकार द्वारा इस प्रकार की धन प्राप्तियां होंगी। दायित्वों के आवंटन के संबंध में तो मैं तीन विशिष्ट उपबंधों का उल्लेख करना चाहता हूं। प्रथम जहां तक बाजार से संग्रह किये गये ऋणों को निपटाने के दायित्व का संबंध है, और जहां तक इन ऋणों के दिये जाने का प्रश्न है, शेष मद्रास की सरकार को इस काम के लिये पूरी तरह से उत्तरदायी बनाया गया है, किन्तु इस ऋण में आंध्र तथा मैसूर का जो भी अंश है, वह उन ही राज्यों द्वारा इस तरह लौटाया जायेगा कि वे मद्रास सरकार को, जब भी बन्ध पत्र स्वामी को धन देने का दायित्व सामने आये, एक अंश दान देंगे और इस तरह का व्यवहार पूंजी तथा चालू ब्याज की अदायगी के संबंध में लागू होगा। सरकार इसलिये इस तरह का उपबंध बनाना आवश्यक समझती है, क्योंकि यदि बन्ध पत्र स्वामी एक से अधिक सरकार से धन प्राप्ति की आशा करें तो बहुत ही अवांछनीय बात होगी और वर्तमान ऋणों का नवीकरण तथा भिन्न सरकारों से नई ताजी प्रत्याभूतियों का जारी कराना अव्यवहार्य है। दूसरी बात यह है कि जहां तक तुंगभद्रा परियोजना से संबद्ध ऋण का प्रश्न है, उस का आवंटन उन दो राज्यों के बीच के भावी करार पर होगा। यद्यपि मैसूर में स्थानान्तरित तथा आंध्र राज्य में सम्मिलित क्षेत्रों में स्थापित परियोजना के उस भाग के पूंजी व्यय से सम्बद्ध प्रारंभिक दायित्व उन दो राज्यों पर ही है अथवा; यदि कोई भी करार नहीं हो सके तो दो वर्ष की अवधि में ही राष्ट्रपति के आदेश द्वारा यह आवंटन कराया जायेगा। इस बात की कोई भी आवश्यकता नहीं कि मैं इस उपबंध पर बहुत देर तक व्याख्या करता रहूं, क्योंकि इस परियोजना को पूरा किए जाने तथा उसके रखरखाव से पैदा होने वाली वित्तीय एवं अन्य समस्यायें केन्द्र तथा संबंधित सरकारों के बीच बहस का एक विषय बनेगी। अभी तो प्रस्तुत विधेयक का यही उद्देश्य है कि निर्धारित तारीख की इस परियोजना पर दोनों संपत्ति

एवं दायित्व का मढ़ा जाने वाली दायित्व ऋण आवंटन को नियमबद्ध करने वाले साधारण सिद्धान्तों के अनुसार मूलतः राज्यों पर ही रखा जाये, किन्तु संबद्ध राज्यों के बीच करार के आधार पर अथवा उसकी अनुपस्थिति में राष्ट्रपति के आदेश द्वारा यद्यपि वह (राष्ट्रपति) आवश्यक आदेश देने से पहले प्रत्यक्षतः सभी बातों पर विचार करेंगे अनुवर्ती पुनः आवंटन होगा, और राष्ट्रपति इस विषय में उपलब्ध प्राविधिक एवं विशारदों के परामर्श प्राप्त कर सकेंगे।

तीसरी बात यह है कि आंध्र और मद्रास के बीच दायित्वों का जो आवंटन होगा वह मद्रास नगर में स्थित मकानों से संबंधित समायोजन के अनुसार होगा। अब हमने न्यायमूर्ति श्री वांचू की ये सिफारिशें स्वीकार की हैं कि इन मकानों के चले जाने से जो घाटा होगा उसकी क्षतिपूर्ति के लिये आंध्र के दायित्व से 230.4 लाख रुपये मद्रास के नाम पर स्थानान्तरित होने चाहियें। मुझे पता चल रहा है कि तमिलनाडु में रहने वाले हमारे मित्रों और आंध्रवासी मित्रों के बीच इस विषय पर मतवैभिन्य हैं, क्योंकि तमिलनाडु वालों का यह तकाजा है कि इस प्रकार का समायोजन अन्यायपूर्ण होगा, और आंध्र वाले इस बात पर जोर दे रहे हैं कि यह राशि अपर्याप्त है। तो इन दो भिन्न मतों के बीच हम यही सबसे बढ़िया हल समझते हैं कि न्यायमूर्ति श्री वांचू की सुविचारित सिफारिशों को स्वीकार किया जाये। हमें इस बात का भी आश्वासन प्राप्त है कि स्वयं यह सिफारिश बहुत ही न्यायपूर्ण थी। उसमें इस उपबन्ध को स्पष्ट रूप से उचित ठहराया गया था कि जिस नये राज्य को भविष्य में एक नई राजधानी बनानी पड़े उसे इस काम के लिये कोई सहायता दी जानी चाहिये। यद्यपि इस बात पर काफी विवाद हो सकता है कि कितनी तथा किस रूप में सहायता दी जानी चाहिये। समूचे रूप से मेरा विश्वास है कि सभी बातों को विचार में रखते हुए सदन सहमत होगा कि प्रस्तावित आन्ध्र राज्य को ऋण के बारे में जो छूट दी गई है वह उस राज्य तथा शेष के मद्रास राज्य के लिये न्यायपूर्ण है। प्रत्येक अवस्था में हमें स्मरण रहना चाहिये कि जहां तक ऋण का संबंध है, वास्तविक तथा विचारणीय बात यह है कि इस कार्यवाही के फलस्वरूप ऋण संबंधी व्यय कितना आता है इसकी तुलना में यदि आर्थिक विकास के लिये केन्द्र से राज्य को कोई सहायता मिल सके तो यह पूंजी के रूप में ही हो सकती है जो मैं समझता हूं कि कहीं अधिक महत्वपूर्ण बात है। मैंने मोटे रूप से यह स्पष्ट कर दिया है कि किस आधार पर इस विधेयक में आस्तियों तथा दायित्वों को दोनों राज्यों में बांटने की चेष्टा की गई है। मुझे यह सुझाव पूर्णतः अव्यवहारिक जान पड़ता है कि पहले तो विद्यमान राज्य को पूर्णतः विघटित कर दिया जाये तथा बाद में किसी संयुक्त परिवार के विभाजन अथवा सहभागिता के विघटन के समान आस्तियों तथा दायित्वों का बंटवारा कर दिया जाये। मान लीजिये कि आस्तियों तथा दायित्वों को मूल्य के आधार पर लिया जाता है फिर

भी ऐसा अकेला तरीका कोई नहीं है जिससे इन्हें तीनों राज्यों में ठीक-ठाक अनुपात से बांटा जा सकता है। राज्य के विभाजन के संबंध में निरन्तर व्यावहारिक दृष्टिकोण से कार्यवाही करनी होगी तथा इस संबंध में सैद्धांतिक, वाणिज्यिक या विचार मात्र के आधार पर अपनाना संभव नहीं है। मैंने अपने भाषण को इस प्रकार के दृष्टिकोण की त्रुटियों पर तथा इस बात की आवश्यकता पर जोर देते हुए आरंभ किया था कि ऐसा समझौता हो जिससे बाद में कोई कटुता न रह जाये तथा साथ ही जो न्यायपूर्ण भी हो। भारत सरकार को निश्चित रूप से यह विश्वास है कि बांट की जिस योजना का विधेयक में उल्लेख किया गया है। वह तीनों संबंधित राज्यों के लिये न्यायपूर्ण है। इस कारण सरकार समझती है कि इस प्रश्न की जांच करने के लिये कोई आयोग नियुक्त करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा। इससे अधिक न्यायपूर्ण हल होने के स्थान पर और विवाद उठ खड़ा होगा। व्यक्तिगत रूप से मैं नहीं समझ पाता कि इस प्रकार के आयोग को क्या निर्देश पद दिये जा सकते हैं। अपने विकास के इस क्रम पर अग्रसर होने के बारे में बहुत कुछ कहा जा सकता है परन्तु हमें पीछे की ओर जाने के बारे में नहीं सोचना चाहिये। उस क्षेत्र के विकास का दायित्व भारत सरकार पर भी उतना ही है जितना कि शेष के सारे देश पर। मेरा सुझाव है कि सदन बंटवारे से पैदा हुए सवालों पर विचार करते समय इन बातों को सामने रखे। मैं केन्द्र में ऐसी किसी सरकार के होने का विचार भी नहीं कर सकता जो विद्यमान मद्रास राज्य के विभाजन के फलस्वरूप बने तीन राज्यों में आने वाले क्षेत्रों के भावी विकास की ओर अपनी नीति के बनाने की ओर ध्यान न दे। मुझे कोई संदेह नहीं कि जिस राज्य को भी ऐसी सहायता की आवश्यकता होगी, केन्द्रीय सरकार उसके बारे में सहानुभूति से विचार करेगी। मैं समझता हूं कि वर्तमान आवश्यकताओं का पिछली वास्तविक या काल्पनिक शिकायतों के संबंध जोड़ने से कुछ भी लाभ नहीं होगा।

एक बात और मैं यह कहना चाहता हूं कि सदन यह विचार न ले जाये कि राज्यों पर सभी बातें केन्द्र द्वारा थोपी गई हैं। हमने बंटवारे की एक योजना बनाई है जो हमारे विचार से सभी राज्यों से न्याय करती है, परन्तु जहां तक राज्यों का अपना संबंध है, वे आपस में किसी भी मामले के संबंध में समझौता कर सकते हैं। सदन इस बात पर भी ध्यान दे कि विधेयक में एक उपबंध ऐसा भी रखा गया है जिसमें राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया कि यदि इस विधेयक में उल्लिखित किसी सिद्धांत के लागू करने से न्यायपूर्ण बटवारा न हो तो उसे ठीक किया जा सके। मुझे सदन को इस आश्वासन के देने की विशेष आवश्यकता नहीं है कि यदि विधेयक में प्रस्तावित योजना के लागू करने से हुई किसी कठिनाई को सिद्ध किया जा सके तो उस अधिकार को संबंधित राज्य के परामर्श से प्रयोग में लाया जायेगा।

अन्त में मैं तीनों संबंधित राज्यों का ध्यान उन शब्दों की ओर दिलाना चाहता हूं जो "थिरुवल्लुवर" ने "थिरूवकरूल" में कहे हैं तथा जिनका अर्थ यह है कि "किसी ऐसे व्यक्ति को जिससे तुम्हारा मतभेद हो चुका है, घृणा से परे मत हटाओ। रुष्ट व्यक्ति तुम्हारे पास बिना किसी कारण के चले आयेंगे।"

17

वक्तव्य*

वित्त मंत्री पद से त्यागपत्र

अध्यक्ष महोदय, पिछले कुछ समय से मेरा त्यागपत्र विचाराधीन था। कल राष्ट्रपति के कार्यालय ने एक विज्ञप्ति जारी की कि राष्ट्रपति ने कृपा पूर्वक मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लिया है। अपने त्यागपत्र के स्पष्टीकरण के सम्बन्ध में वक्तव्य देना मैं आवश्यक समझता हूं और इसलिये लोक सभा के प्रक्रिया नियम के नियम 218 के अनुसार मैं वक्तव्य देता हूं।

मैं इसलिये त्यागपत्र दे रहा हूं कि बम्बई नगर को महाराष्ट्र से अलग करने के सरकार के निश्चय की, जो राज्य पुनर्गठन विधेयक 1956 में निहित है, जिम्मेदारी में मैं भागी नहीं बनना चाहता और क्योंकि मैं सामान्यतः उस तरीके पर विरोध प्रकट करना चाहता हूं, जिससे प्रधानमंत्री ने इस मामले को, जो विशेषतः मेरे निर्वाचन क्षेत्र कोलाबा के लिये तथा सामान्यतः महाराष्ट्र और समस्त भारत के लिये इतना महत्वपूर्ण है, निबटाया है।

मेरा विरोध विशेषतः इन चीजों से है:

(1) भारत सरकार बम्बई सरकार को नवम्बर, 1955 और जनवरी, 1956 के पुलिस कांडों की जिनमें 80 व्यक्ति मारे गये तथा 450 घायल हुए अदालती जांच कराने के लिये तैयार नहीं कर सकी या तैयार नहीं करना चाहा;

(2) प्रधानमंत्री ने जून के प्रारम्भ में जबकि राज्य पुनर्गठन विधेयक लोक सभा के सामने उपस्थित था और एक प्रवर समिति को सौंपा गया था, बम्बई के भविष्य पर जो वक्तव्य दिया वह अनुचित था। पहले मामले के बारे में, मैंने जांच करने का बहुत आग्रह किया था किन्तु असफलता मिली। दूसरे मामले के बारे में, मैंने प्रधानमंत्री से कोई बातचीत नहीं की, क्योंकि इस घटना के बाद बातचीत करना व्यर्थ होता। इसलिये जिस

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 25 जुलाई, 1956, कॉ॰ 813—824

दिन प्रधानमंत्री कांग्रेस महासमिति की बैठक के बाद, बम्बई से लौटे तो मैंने उनसे अपने विचाराधीन त्यागपत्र की स्वीकार करने के लिए कहा। उनके सुझाव पर मैंने यह स्वीकार कर लिया कि उनके विदेश यात्रा से लौटने तक मेरा त्यागपत्र विलम्बित रहे।

मई, 1950 में मैंने प्रधानमंत्री के बार-बार कहने पर वित्त मंत्री का पद स्वीकार किया था। सभा को संभवतः यह जानने में कुछ दिलचस्पी हो कि मैंने 1946 में यदि केवल इसी प्रकार की प्रार्थना इस आधार पर अस्वीकृत कर दी थी कि न तो प्रशिक्षण और न परम्परा से राजनीतिज्ञ का काम करने की क्षमता मुझ में नहीं है। प्रधानमंत्री का प्रस्ताव स्वीकार करने से पूर्व मैंने उन्हें चेतावनी दी थी कि जहां सिद्धांत का प्रश्न होगा वहां मेरे साथ उनका निभाव होना कठिन हो सकता है और यदि सिद्धांत की बातों पर बड़ा मतभेद हुआ तो मैं त्यागपत्र दे दूंगा। यदि उन्हें याद हो तो उन्होंने उत्तर दिया था कि "उस स्थिति में त्यागपत्र देने वाले केवल आप ही नहीं होंगे"। यद्यपि इस प्रश्न पर हमने कभी स्पष्ट रूप से बातचीत नहीं की मेरा यह कथन और उनका आश्वासन देश की उन्नति के लिये प्रगतिशील आर्थिक नीतियां अपनाने में तथा देश के आर्थिक विकास की योजनाओं को प्रारम्भ करने में हमारे बीच एक अव्यक्त संधि का काम देता रहा है। यह तो वही बता सकेंगे कि मेरे कार्य अथवा सहयोग से वह संतुष्ट रहे अथवा नहीं। परन्तु अपनी ओर से इस समय मैं यह कह देना चाहता हूं कि मुझे अपने कर्त्तव्य पूरे करने में उनका पूर्ण सहयोग मिलता रहा है। उनके निष्कलंक सौजन्य तथा असीम धैर्य का तो कहना ही क्या। इसमें मतभेद भी होते थे और कभी-कभी वित्तीय नियंत्रण कम करने के सम्बन्ध में इन मतभेदों में उग्रता भी आ जाती थी। परन्तु अब तक हम व्यक्तिगत बातचीत के द्वारा उनको आपस में निबटा लेते थे।

मैं कभी भी कांग्रेस का सदस्य नहीं रहा तथा मैं समझता हूं कि किसी दल से मेरा सम्बन्ध न होने के कारण मैं अपना वित्त मंत्री का काम अधिक अच्छी तरह कर पाया हूं। अगर मेरे कार्य-काल में चुनाव न आ गये होते और यदि वित्त मंत्री के लिये लोक सभा का सदस्य बनना आवश्यक नहीं होता तो यह स्थिति, जिसमें, मैं एक वित्तीय मामले से भिन्न और जो सावंदेशिक नहीं है, उस पर इस्तीफा दे रहा हूं, पैदा नहीं होती क्योंकि मंत्रिमंडल में अपने साथियों से मेरा गंभीर मतभेद नहीं था और वित्त मंत्रालय से सम्बन्धित सब मामलों में प्रधानमंत्री मुझे सहयोग देते रहे हैं। मैं यह स्पष्ट कर देना उचित समझता हूं कि राज्य पुनर्गठन आयोग के प्रतिवेदन के अतिरिक्त, गत कई मास से मैं प्रधानमंत्री से कह रहा था कि मैं अगले चुनावों में खड़ा नहीं हूंगा। तथा यह मेरी पक्की राय है कि अब वह समय आ गया है जब किसी कांग्रेसी को ही वित्त मंत्रालय संभालना चाहिये। मंत्रिमंडल के अन्य सम्बद्ध सदस्यों को वित्त मंत्रालय की समस्याओं तथा विशेषतया द्वितीय

पंचवर्षीय योजना के लिये संसाधन जुटाने की समस्याओं से अवगत कराने की दृष्टि से ही, मेरे परामर्श पर प्रधानमंत्री ने संसाधन समिति बनाई है।

लोक सभा में कोलाबा जिले के प्रतिनिधि के रूप में तथा बम्बई के एक प्रतिनिधि के रूप में मेरे लिये राजनीति से दूर केवल एक वित्तीय विशेषज्ञ रहना कठिन हो गया। उस निर्वाचन क्षेत्र और राज्य ने मुझे समय-समय पर स्थानीय समस्याओं में रुचि लेने को कहा तथा मैं समस्त देश के प्रति जिम्मेदारियां निभाते हुए वैसा कर सका हूं। वे मामले कोई बहुत गम्भीर सैद्धांतिक मामले नहीं थे। किन्तु मैं उनमें से नहीं हूं जो यह समझते हैं कि केन्द्रीय सरकार के मंत्रियों को केवल अपनी केन्द्रीय जिम्मेदारियों से ही सम्बन्ध रखना चाहिए तथा अपने क्षेत्र तथा राज्य के कार्यों से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए परन्तु फिर भी मैं यह दावा कर सकता हूं कि प्रधानमंत्री के अतिरिक्त, मेरे किसी दल विशेष से सम्बद्ध न होने के कारण तथा वित्त मंत्रालय के प्राविधिक काम के कारण अपने अन्य किसी साथी की अपेक्षा मैंने स्थानीय मामलों से कम वास्ता रखा है।

बम्बई को महाराष्ट्र से अलग रखने के सरकारी निर्णय के मामले में मैं अपने को, अलग नहीं रख सका क्योंकि मेरे विचार से नये संशोधन के साथ यह निर्णय न केवल महाराष्ट्र के लोगों के लिए अनुचित तथा अन्यायपूर्ण है, बल्कि देश हित के विरुद्ध भी है। इसके औचित्य में एक भी दलील नहीं दी जा सकती। मुझे आशा है कि इस पर विस्तार से बातचीत करने का मुझे अवसर मिलेगा। महोदय, मुझे आशा है कि राज्य पुनर्गठन आयोग विधेयक पर की जाने वाली आम चर्चा के दौरान, जिसकी प्रवर समिति ने सूचना दी; आप मुझे बोलने का अवसर देंगे।

गैर-दलीय वित्तीय विशेषज्ञ के तौर पर अपना कार्य करते हुए इस मामले में भी मैंने जब तक कोई कठोर निर्णय नहीं उठाया जब तक मुझे पूर्ण विश्वास नहीं हो गया कि घोषित निर्णय कोलाबा तथा महाराष्ट्र की जनता को स्वीकार्य नहीं है तथा इससे उनके आर्थिक विनाश की संभावना है। मैं बम्बई नगर के सम्बन्ध में आने वाली कठिनाइयों को जानता था तथा कांग्रेस भक्त महाराष्ट्री नेता कहां तक साथ निभा सकते हैं और उन्होंने वृहत्तर द्विभाषी बम्बई अर्थात सौराष्ट्र और विदर्भ दोनों को मिलाकर राज्य की स्वीकृति प्राप्त करने संबंधी प्रयास में मेरे प्रभाव का उपयोग किया, जो कि मेरे विचार से एकमात्र वास्तविक द्विभाषी राज्य व्यवस्था थी। दुर्भाग्यवश इसे पहले कांग्रेस कार्यकारी समिति ने, फिर गुजरात और बम्बई प्रदेश कांग्रेस समितियों ने और अन्ततः महाराष्ट्र प्रदेश कांग्रेस समिति ने इसे रद्द कर दिया था। यद्यपि मेरा दृढ़ विश्वास है कि महाराष्ट्र और गुजरात की जनता अब भी इस प्रकार के हल को स्वीकार करेगी, फिर भी मुझे डर है कि वर्तमान नेतृत्व में यह हल संभव नहीं है।

गत जनवरी में बम्बई के संबंध में प्रधानमंत्री द्वारा घोषणा किये जाने से पहले ही मैंने उन्हें तथा मंत्रिमंडल को अपने इस विचार से अवगत करा दिया था कि यदि वृहत्तर द्विभाषी बम्बई राज्य की स्थापना संभव नहीं है तो गुजरात और महाराष्ट्र जिसमें बम्बई शामिल हो की पृथक-पृथक राज्य के तौर पर स्थापित करना ही एकमात्र विकल्प है। बम्बई शहर को महाराष्ट्र से अलग रखना आर्थिक एवं राजनीति की दृष्टि से एक गंभीर गलती तो होगी ही, यह महाराष्ट्र के प्रति भी अन्याय होगा।

गत जनवरी में किये गये सरकारी निर्णय का जिसे संपूर्ण मंत्रिमंडल की बैठक द्वारा नहीं लिया गया था, का मैंने तब तक विरोध नहीं किया जब तक मुझे महाराष्ट्र प्रदेश कांग्रेस समिति की प्रतिक्रिया की जानकारी नहीं हो गई तथा संतोष नहीं हो गया कि महाराष्ट्र की जनता और विशेष रूप से मेरे निर्वाचन क्षेत्र की जनता इसके विरुद्ध है। इस जानकारी के पश्चात मैंने अपना त्यागपत्र प्रधानमंत्री को सौंप दिया। उसके उत्तर में उन्होंने लिखा कि हिंसा को निरुत्साहित करने के लिये सभी कार्य करने चाहिये तथा बड़े द्विभाषी राज्य जैसे दक्षिण प्रदेश, पूर्व प्रदेश आदि बनने चाहियें लगभग उसी समय मेरे कुछ मित्रों ने कहा कि जब तक संसद इस पर विचार नहीं कर लेती हमें मामले को और आगे बढ़ाना चाहिए। इसी आधार पर मैंने गत जनवरी में अपने त्यागपत्र पर अधिक जोर नहीं दिया।

यद्यपि जो राज्य पुनर्गठन आयोग विधेयक पुरःस्थापित किया गया है मेरे विचार से उसमें कोई बेहतर परिवर्तन नहीं किया गया था फिर भी मैं संयुक्त प्रवर समिति के प्रतिवेदन की प्रतीक्षा करता रहा। परन्तु प्रधानमंत्री ने गत जून में बम्बई में जो घोषणा की वह असाधारण थी और पूर्वाग्रह ग्रस्त थी। उनका यह कहना कि वह सरकार के निर्णयों की घोषणा करने में स्वतंत्र हैं, वैसा नहीं है क्योंकि वह निर्णय सरकार का नहीं था। इस पर मंत्रिमंडल में न तो विचार ही किया गया और न ही उसे परिचालित किया गया। मंत्रिमंडल में इस विषय में रुचि रखने वाले मेरे जैसे सदस्यों से निजी तौर पर भी कोई परामर्श नहीं किया गया था। मंत्रिमंडल की बैठक का भी कोई रिकार्ड नहीं है। मंत्रिमंडल के सदस्यों को आज भी उस तथाकथित निर्णय की कोई अधिकृत प्रति उपलब्ध नहीं है।

यह एक उदाहरण है कि किस प्रकार बलपूर्वक, और असंविधानिक रूप में निर्णय किये गये हैं तथा उनकी मंत्रिमंडल के नाम से राज्य पुनर्गठन के मामले में प्रधानमंत्री सहित कतिपय अनधिकृत मंत्रिमंडल के सदस्यों द्वारा घोषणा की गई है। आन्ध्र को तमिलनाडु से अलग करने का निर्णय प्रधानमंत्री ने स्वयं किया तथा इसकी घोषणा भी स्वयं की। गत जनवरी में बम्बई को केन्द्रीय प्रशासित रखने की घोषणा पर भी मंत्रिमंडल का परामर्श नहीं लिया गया। जिसने पहले बम्बई को एक नगर राज्य बनाने का निर्णय

किया था। महाराष्ट्रीय नेता भी इससे सहमत नहीं थे क्योंकि उनका प्रस्ताव इन शर्तों पर आधारित था कि (1) बम्बई नगर महाराष्ट्र की राजधानी रहे और (2) बाद में प्रधानमंत्री के विवेकानुसार बम्बई को महाराष्ट्र में मिलाने की व्यवस्था की जाये। यह सच है कि सीमा सम्बन्धी मामलों को सुलझाने के लिये एक समिति बनाई गई थी। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं था कि वह समिति मंत्रिमंडल के स्थान पर बम्बई नगर अथवा महाराष्ट्र के सम्बन्ध में निर्णय करे। जो भी हो, मुझे यह शिकायत है कि इस विशिष्ट निर्णय के बारे में मुझसे परामर्श नहीं किया गया। यद्यपि मंत्री के नाते और उस क्षेत्र से तथा वहां के चुनावों से सम्बन्धित होने के कारण मेरी विशेष रुचि को देखते हुए कम से कम सामान्य शिष्टाचार के नाते मुझसे परामर्श किया जाना चाहिए था। प्रधानमंत्री और तीन सदस्यीय समिति के सदस्यों ने अपने आप ऐसे अधिकार जो मंत्रिमंडल ने उन्हें नहीं दिए थे, ले लिये।

प्रधानमंत्री तथा गृह मंत्री द्वारा नवम्बर, 1955 और जनवरी, 1956 के बम्बई गोलीकांड की जांच करने की मेरी प्रार्थना की अस्वीकृति और भी उपेक्षापूर्ण तथा सौजन्यहीन थी। मेरा यह मानना है कि इस मामले को दबाकर नागरिक स्वतंत्रताओं को सुरक्षित रखने के अपने सिद्धान्तों के प्रति वह सत्यवान सिद्ध नहीं हो रहे हैं। चूंकि बाद में प्रधानमंत्री ने कहा है कि बम्बई शहर के मामले पर अभी पुनः विचार नहीं किया जा सकता क्योंकि बम्बई ने दुर्व्यवहार किया है, वह यह नहीं कह सकते हैं कि यह मामला सिर्फ बम्बई सरकार से ही सम्बद्ध है। उनका यह मत कि ऐसी जांच से जन भावनायें और भड़केंगी, सही नहीं है क्योंकि सत्य से कटुता नहीं फैलती। प्रथम दृष्टया साक्ष्यों के साथ यह आरोप लगाया गया है कि पुलिस ने गोली चलाने में संयम नहीं रखा तथा अपनी कानूनी शक्तियों का उल्लंघन किया। इसके प्रमाण हैं कि मुख्यमंत्री ने देखते ही गोली चलाने तथा जान से मारने के उद्देश्य से आदेश दिया था तथा जिस समय गोली चलाने की हिदायत थी, उससे ठीक पहले अश्रुगैस का प्रयोग किया गया जिससे स्त्रियां तथा बच्चे घर से बाहर निकल आये तथा पुलिस ने टामीगन आदि से उनको मारने के इरादे से ही 2,500 गोली चलाईं जिसके परिणामस्वरूप 80 व्यक्ति मारे गये तथा 450 घायल हुए, यह कि पत्थरों और तेजाबी बल्बों से घायल पुलिस की बात अमहत्वपूर्ण थी और गोलीकांड का समय अलग था। सत्ता पक्ष ने होशियारपुर में हुए लाठी चार्ज की जांच के आदेश तो देना उचित समझा किन्तु बम्बई गोलीकांड की जांच के आदेश देने से बिल्कुल मना कर दिया। मैं यह मानता हूं कि यह महाराष्ट्र के विरुद्ध विद्वेष की भावना के कारण ही किया गया है और मैं अपने को इससे सम्बद्ध नहीं करना चाहता। इनमें से कई मामलों पर मैंने प्रधानमंत्री का ध्यान आकर्षित किया और उन्हें सूचित किया कि जिस प्रकार से इन मामलों में उन्होंने उदासीनता दिखाई है उससे मैं बिल्कुल असन्तुष्ट हूं। मैंने

उन्हें बताया था कि अपने आप को सभ्य कहलाने वाले किसी भी अन्य देश में इस प्रकार के हत्याकांड की अदालती जांच कानून के अनुसार अनिवार्य होती। अब भी जब कई मामलों में "कोरोनर" ने यह निर्णय दिया है कि नवम्बर, 1955 का गोलीकांड न्यायोचित नहीं था, पुलिस की जांच करने की कोई मंशा नहीं है क्योंकि उन्हीं की वजह से मौतें हुई हैं।

इन मामलों का नामतः एक अंतरंग मंडली द्वारा मंत्रिमंडल के अधिकारों को ग्रहण कर लेना और बम्बई की पुलिस को बेलगाम छोड़कर नागरिक स्वतंत्रता का हनन होने देना, बम्बई नगर के झगड़े से परे सामान्य जनता के हित पर प्रभाव पड़ता है। हिंसा केवल न्याय और तर्कसंगत व्यवहार से समाप्त की जा सकती है। बम्बई के बारे में निर्णय के लिये जिम्मेदार बहुत से लोगों की आक्रमक अहिंसा, हिंसा की अपेक्षा देश की एकता को ज्यादा नष्ट करने वाली है। हिंसा को कोई भी समझदार व्यक्ति बर्दाश्त नहीं करेगा उसे दृढ़ता से रोका जाना चाहिए, परन्तु पाशविकता से नहीं, विशेषतया तब जब सैकड़ों निर्दोष नागरिकों को उसका शिकार होना पड़े।

18

राज्य पुनर्गठन विधेयक*

आज की चर्चा** के विषय के सम्बन्ध में मैं निम्न बातें उठाना चाहता हूं और यदि मुझे समय दिया जाये तो मैं उन्हें स्पष्ट करने का प्रयास करूंगा। मेरा व्यक्तिगत रूप से प्रधानमंत्री जी से कोई विद्वेष नहीं है। मेरे वक्तव्य के संबंधित वाक्य में भी इस बात का उल्लेख नहीं हुआ है। यदि आप मुझे अनुमति दें तो मैं उसे पुनः पढ़ता हूं।

"कि शासन दल ने जब बम्बई गोलीकांड की जांच करने से स्पष्ट रूप से इन्कार कर दिया था तो जहां तक मैं समझता हूं उन्हें होशियारपुर लाठी चार्ज की जांच के आदेश देने के मामले को उचित समझना चाहिये था—इस बात में महाराष्ट्र के प्रति विद्वेष दिखाई देता है जिसे मैं स्वयं मानने से इन्कार करता हूं।

यहां आप देखेंगे कि इस बात में प्रधानमंत्री का कोई व्यक्तिगत संदर्भ नहीं आया है और वास्तव में जब कांग्रेस पार्टी ने होशियारपुर काण्ड की जांच के आदेश देने का निर्णय लिया था उस समय प्रधानमंत्री जी देश से बाहर थे। एक प्रकार से उनकी यह एक अपील थी कि वे होशियारपुर लाठी चार्ज मामले के बारे में लिए गए निर्णय को ध्यान में रखते हुए उक्त मामले पर पुनर्विचार करें। लेकिन मैं इतना अवश्य कहूंगा कि मेरा विश्वास है कि कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं में महाराष्ट्रीय लोगों के प्रति कुछ विद्वेष है और मैंने इसी तथ्य के प्रति कुछ सप्ताह पहले प्रधानमंत्री जी का ध्यान आकर्षित किया था। मैं भी यह समझता हूं कि कुछ प्रमाण जो जांच करने पर ही स्पष्ट हो पाएंगे, उन्हें सौंपे गए हैं और अब यह उनका काम है कि वे यह सत्यापित कराएं कि इन आरोपों में कुछ सच्चाई है या नहीं। किसी भी प्रकार से मैं यह नहीं मान सकता कि हमारे विगत संबंधों को ध्यान में रखते हुए ऐसा कोई क्यों समझेगा कि मैं प्रधानमंत्री जी पर आरोप लगाना

---

*लोक सभा वाद-विवाद, 30 जुलाई, 1956 कालम 1415-1430; 1 अगस्त, 1956 का० 1773-1780; 3 अगस्त, 1956, का० का, 2814-2818, 2821-2822

**पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त द्वारा 26 जुलाई, 1956 को प्रस्तुत किया गया विचारार्थ प्रस्ताव भारत के राज्यों के पुनर्गठन की व्यवस्था करने और इससे संबद्ध मामलों से संबंधित विधेयक।

चाहता था। मैं यह अच्छी तरह जानता हूं कि संवैधानिक रूप से वह किसी के प्रति आरोप लगाने में अक्षम है। लेकिन बदली हुई परिस्थितियों में अन्य लोगों में इस प्रकार की गलतफहमी पर जो राजा से भी अधिक निष्ठावान हैं, आश्चर्य नहीं" किया जाना चाहिए।

मूल हिन्दी में:

"भला गर्दिश फलक की चैन देती है किसे इन्शा
गनीमत यह है कि हम सूरत यहां दो चार बैठे हैं।"

बुरे दिनों में कौन साथ दे सकता है, यह तो मात्र सांत्वना है कि मुझ जैसे कुछ व्यक्ति यहां हैं।

मुझे यह शिकायत है कि बम्बई के बारे में दो महत्वपूर्ण निर्णय मंत्रिमंडल की पूर्व सहमति के बिना लिये गये थे। मैंने ऐसा नहीं कहा कि विचार-विमर्श अबाध रूप से चलता रहा। 3 जून का वक्तव्य सरकारी निर्णय नहीं था। जहां तक मेरी जानकारी है वह श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक में दिया गया वक्तव्य था और इस बारे में मंत्रिमंडल के किसी भी सदस्य से परामर्श नहीं किया गया था तथा निश्चित रूप से मुझसे तो कोई परामर्श नहीं किया गया था। मैं अपने वक्तव्य में पहले ही बता चुका हूं कि इस तथ्य को बाद में मंत्रिमंडल के समक्ष नहीं लाया गया यद्यपि मैं नहीं जानता कि प्रधानमंत्री जी के बम्बई से लौटने के बाद कैबिनेट की कितनी बैठकें हुई थीं। प्रधान मंत्री के बम्बई से लौटने के बाद मंत्रिमंडल की सम्भवतः लगभग एक दर्जन बैठकें हुई थी। संयुक्त समिति उक्त वक्तव्य पर जिसे उसने कभी नहीं देखा अपनी टिप्पणी देने में काफी विश्वसनीय और उदार रही है। यह केवल अगले दिन मेरे अनुरोध पर पहली बार प्रधानमंत्री द्वारा दिए गए वक्तव्य का मूल पाठ दिखाया गया।

इसमें मेरे विचार से सत्य बात यह है कि संयुक्त समिति की वही स्थिति है जो सभा की है। मैं नहीं जानता कि उनके पास सभा से ज्यादा विशेषाधिकार हैं। खैर मुझे यह बात विशेष निर्णय के बारे में उठानी पड़ी।

मुख्य बात तो यह है कि यह निर्णय सरकार का निर्णय नहीं था। मैं इस मुद्दे को इतना अधिक नहीं उठाता लेकिन मैं समझता हूं कि इस निर्णय से महाराष्ट्र की स्थिति बदतर हो जाती है यद्यपि बम्बई को एक "सिटी स्टेट" का दर्जा दे दिया गया है—और यही निर्णय अन्तिम निर्णय था जो मुझे मंत्रिमंडलीय मंत्री के रूप में लेना पड़ा। क्योंकि एक "सिटी स्टेट" के दर्जे के रूप में बम्बई को इस निर्णय के लिए 5 वर्ष तक प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है कि इसे महाराष्ट्र में सम्मिलित किया जाये अथवा नहीं। इसके

अतिरिक्त संविधान द्वारा उपलब्ध कराई गई कानूनी लोकतांत्रिक प्रक्रिया के अनुरूप इसे साधारण बहुमत से महाराष्ट्र में सम्मिलित करने का निर्णय लिया जा सकता है। जहां तक मैं समझता हूं कि प्रस्तावित फार्मूले में यदि श्री जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तिगत आश्वासन से समर्पित कानूनी प्रावधान को ऐसा कहा जाता है तो उस फार्मूले को निश्चित लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से कार्यकारी आदेश द्वारा निर्धारित करना पड़ेगा। मैं नहीं समझता कि अधिनियम के उपबन्धों में कोई संशोधन किया जा रहा है। ऐसा असंभव नहीं है कि उक्त मामले का निर्णय कांग्रेस पार्टी पर छोड़ दिया जाये। बहुमत के बारे में किसी अनुचित शर्त के विरुद्ध संवैधानिक प्रक्रिया की कोई गारन्टी नहीं है। अर्थात दो तिहाई बहुमत से संविधान द्वारा उपलब्ध कराए गए सादे बहुमत से अत्यधिक बदतर साबित होगा। इसे हम संविधान को विकृत करने के सिवा क्या कहेंगे। महाराष्ट्र की आकांक्षाओं को पूरा करने के प्रयास में इन पांच वर्षों के दौरान बम्बई सिटी में तनाव, जैसा कि कई वक्ताओं ने कहा है, बढ़ता जाएगा। बम्बई के नीतिवादी और पलायनवादी अपने धन के बोरे खोल देंगे और मेरा अनुमान है कि आर्थिक परिस्थितियों के दबाव में एक या दो लाख महाराष्ट्रवासियों को बम्बई छोड़ना पड़ेगा। यह तथ्य बिल्कुल निराधार नहीं है। माननीय सदस्यों ने इसमें सम्मिलित सरकारी कर्मचारियों के आंकड़े दिए हैं। इससे 30,000 लोगों के प्रभावित होने की संभावना है। मेरे पास यहां कुछ ऐसे ही आंकड़े हैं। मेरे पास ऐसा विवरण है कि उनमें से कितने सचिवालय में हैं और कितने अन्य कार्यालयों में हैं। यह बिल्कुल सही है कि जिस सीमा तक महाराष्ट्र सरकार के कार्यालयों को बम्बई सिटी में रहने की अनुमति रहेगी, हम नहीं जानते कि उन्हें कब तक अनुमति होगी, उस सीमा तक यह समस्या कम हो जाएगी। मेरा भी विश्वास है कि प्रधानमंत्री जी का यह विचार है, सामान्यतया संबंधित लोग विशेषकर थाना, कोलाबा और रत्नगिरि जिलों के लोगों को परेशानी नहीं होगी। यद्यपि सरकारी कर्मचारियों के बारे में कुछ सावधानी बरती जा सकती है—बम्बई में बहुतायत में सरकारी कर्मचारी महाराष्ट्रवासी हैं। सेवा तो उनका बैज है—अर्द्धसरकारी कर्मचारी, निगम और राज्य के अन्य कर्मचारी। मेरा यह विश्वास नहीं है कि सरकार को कोई ऐसा अधिकार है कि वह गैर-सरकारी गैर-महाराष्ट्रवासी नियोजकों को महाराष्ट्रवासी कर्मचारियों के प्रति असहानुभूतिक रवैया अपनाने से रोके। इस रवैये से प्रभावित होने वाले लोगों की संख्या बताना बिल्कुल असंभव है। इस तथ्य को गैर-महाराष्ट्रवासी नेताओं ने भी माना है और गैर-सरकारी रूप से मैं प्रधानमंत्री जी को ऐसे जाने माने व्यक्ति का नाम बता सकता हूं जो इस रवैये पर कुछ रोशनी डाल सकते हैं। इसलिए मुझे तो लगता है कि बम्बई सिटी में अगामी कुछ वर्ष महाराष्ट्रवासियों के आर्थिक पतन से भरे हुए हैं। यह बम्बई सिटी के लिए बड़ी बुरी बात है। मैं समझता हूं कि नए महाराष्ट्र राज्य के लिए भी यह बुरी बात होगी। राज्य की हर तरफ से एक दुखद शुरूआत है। लेकिन इस

स्थिति से पुनर्वास की गंभीर समस्या पैदा हो जाएगी क्योंकि यहां संबंधित संसाधनों तथा समर्थ नेताओं का अभाव है।

यदि महाराष्ट्र वर्तमान बम्बई राज्य का मुख्य उत्तरवर्ती राज्य बनता है तो मैं नहीं समझता कि इसे बम्बई सिटी के प्राकृतिक अतिरेकों से क्यों वंचित रखा जाये। लेकिन संयुक्त समिति ने उन लोगों को वंचित कर दिया है जिनके पास पहले से ही कुछ नहीं है। मैं औद्योगिक वित्त निगम की बात बताता हूं। औद्योगिक रूप से पिछड़े हुए क्षेत्र को अपने औद्योगिकीकरण के लिए और अधिक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

माननीय मंत्री जी ने औचित्य की बात की थी, अथवा मैं उन शब्दों को भूल रहा हूं। उन्होंने समझौते की भावना की बात की थी। मैं देखता हूं कि जहां तक गुजरात के नेताओं का संबंध है—मैं पुनः बताता हूं कि जनता के बीच कोई झगड़ा नहीं है। जो उन्होंने 10 वर्ष पहले नियत किया था उसके लिए वे पूरी तरह सुरक्षित हैं—यानि एक महागुजरात और इसके अतिरिक्त एक नया पत्तन जिस पर करोड़ों रुपये खर्च हो चुके हैं। उन्हें केवल इतना और करना है कि आबू को वापस लेना है जो कि निश्चित रूप से राजस्थान का हिस्सा है। उन्होंने धीरे-धीरे पार्टी और सरकार को इस बात के लिए सम्मत किया कि वे महाराष्ट्र को अपने एक मात्र बड़े पत्तन पर से उसके प्राकृतिक अधिकार से वंचित कर दे। केवल पत्तन पर ही नहीं बल्कि पत्तन शहर भी क्योंकि हम सभी जानते हैं कि पत्तन का एक पृथक अस्तित्व है। सभी गोदी मजदूर महाराष्ट्र के हैं, बंबई के पूंजीपतियों द्वारा इन्हें तिरस्कृत भाव से "घाटी" कहा जाता है। 3 जून की घोषणा की एक मात्र विशेषता तथा इसकी पुनरीक्षा का प्रावधान यह है कि इससे बम्बई सिटी के बारे में पाखण्डी और कपटपूर्ण तर्क समाप्त हो जाते हैं। उक्त तर्कों को सरकार ने तो नहीं माना लेकिन भारत के हितों के लिए समर्पित अन्य लोगों ने माना जिन्हें कि सदस्य ने राष्ट्रीय सम्पन्नता का मुख्य स्रोत कहा। इससे निश्चय ही कलकत्ता व अन्य बड़े शहरों में संतोष पैदा होगा क्योंकि इनमें से प्रत्येक शहर अपनी प्रादेशिक शक्तियों द्वारा शासित होने के बावजूद भारत के हितों की रक्षा कर रहा है और राष्ट्र के हितों की बेहतर तरीके से रक्षा करने के कारण इन्हें इनको मूल राज्य से अलग करने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ी है।

जैसा कि मेरे माननीय मित्र, उज्जैन के श्री राधेलाल व्यास ने कहा कि यदि कोई इन पांच वर्षों में विलय की सम्भावना के बारे में विचार करेगा तो वह इन भ्रांतियों की कोई चिन्ता नहीं करेगा। अब तक बम्बई राज्य के प्रभारी इस शहर को भारत का नहीं बल्कि उसे अपना यानि कि गुजरातियों, महाराष्ट्रियों और कन्नाडियों का ही समझते थे केवल कुछ माह पूर्व इस बात को लेकर हिंसक विरोध किया गया था कि बम्बई की योजना बड़ी और विस्तृत नहीं है क्योंकि बम्बई अपने संसाधन, आयकर आदि खुद जुटा पाता है, जैसे

बम्बई शेष भारत के विरुद्ध यह सब जुटाता था। विभाजन के पश्चात्, अब यही दल इस बात को मानते हैं कि बम्बई सारे राष्ट्र का है। बम्बई को महाराष्ट्र से अलग करने से उन सब सिद्धांतों का उल्लंघन होता है जो सरकार द्वारा मान्य हैं अथवा उसने उनका प्रतिपादन किया है। क्षेत्रीय अनियमितताओं को दूर करना, यानि अच्छी बस्ती से संलग्न गन्दी बस्ती, अमीर लोगों के क्षेत्र से लगे गरीबों का क्षेत्र—उदाहरणतः आन्ध्र के तटीय क्षेत्र के साथ लगता रायलसीमा का क्षेत्र आदि आदि। साथ ही साथ यह मूलभूत सम्बन्ध और शहर तथा इसके पृष्ठ प्रदेश के बीच आदान-प्रदान की अवहेलना करता है। यह गरीबों की अमीरों द्वारा शोषण के विरुद्ध गरीबों की सहायता के सिद्धान्त की उपेक्षा करता है और आश्चर्य की बात यह है कि इन चर्चाओं में समाज में समाजवादी ढांचों का बिल्कुल जिक्र नहीं होता है। यह सरकार के पूंजीवादी ढंग से पूंजी जुटाने को भी स्वीकार करता हैं। वास्तव में पूंजी का संचय गरीबों की बचत और श्रम से होता है। पूंजी संचय का वास्तविक स्त्रोत ग्रामीण क्षेत्र है, किसान है। पूंजीपति पूंजी के इस्तेमाल के लिये एक धूर्ततापूर्ण साधन भर है। अतः शहरों का पृष्ठ प्रदेशों से पृथक रहना नैतिक रूप से अनुचित और आर्थिक रूप से अव्यवहारिक है। सभी शहर ऐसी व्यवस्था को अपनाने के लिये इसी कारणवश आतुर रहेंगे क्योंकि उन्हें वित्तीय अधिशेष मिलते हैं।

मेरे ख्याल से स्थानीय विकल्प के इस प्रश्न पर ध्यानपूर्वक विचार किया जाना चाहिये। सभी तरह के विकल्प प्रचलित हैं—जैसे कि केन्द्र के पास यह विकल्प है कि वह किसी भी क्षेत्र को उचित केन्द्रीय प्रयोजकों के लिये अपने अधीन कर सकता है। किसी तहसील या जिले के सामने राज्य बनने का विकल्प नहीं रखा जा सकता है। हम व्यवहारिक राज्यों की बात करते हैं। अतः कोई भी आदमी उस क्षेत्रफल तथा जनसंख्या के प्रारूप की परिकल्पना कर सकता है जो राज्य के योग्य हो। इसलिये, जो छोटे या सीमावर्ती क्षेत्र हैं उनसे यह पूछा जा सकता है कि वे सीमा के उस पार रहना चाहेंगे या इस पार। उनके सामने यही एक विकल्प है और जैसा कि मैंने बताया है कि जहां तक शहर का संबंध है, शहर के सामने अपने पृष्ठ प्रदेश से अलग होने का कोई विकल्प नहीं रह जाता चाहे इसकी जनसंख्या कितनी भी हो। हां, केवल एक विकल्प है और वह यह है कि केन्द्रीय सरकार न्यायोचित केन्द्रीय प्रयोजनों को देखते हुए शहर को अपने अधिकार क्षेत्र में ले सकती है। यह बात आपातकालीन प्रावधानों पर लागू नहीं होती और फिर संविधान के अनुसार आपातकालीन प्रावधानों को खण्डों में लागू नहीं किया जा सकता है। आप शहर को अपने अधिकार में नहीं ले सकते। यदि आप ऐसा करना चाहते हों तो आप राज्य को ही अधिकार में ले लें। वरना शहर व इसका पृष्ठ प्रदेश कस्बा और देश सभी एक भौगोलिक सत्व होना चाहिए।

एक माननीय सदस्य, (श्री दाभी) हैं जिनके लिये भूगोल कोई मायने ही नहीं रखता।

यदि भूगोल उनके लिये बेकार की वस्तु है तो इस राज्य सीमा पुनर्गठन विधेयक का भी उनके लिये कोई महत्व नहीं होना चाहिए और मुझे समझ नहीं आता कि वह इस चर्चा में भाग ही क्यों ले रहे हैं। वह वास्तव में उपनिवेशी प्रवृत्ति वाले हैं। वह बिल्कुल उसी प्रकार से सोचते हैं जिस प्रकार पुर्तगाली गोवा के संबंध में सोचा करते थे जिनके लिये भूगोल का कोई महत्व नहीं है। पुर्तगाली गोवा को पुर्तगाल का एक प्रदेश, एक महानगरीय राज्य मानते हैं। इस बात का हम अंतर्राष्ट्रीय मंच पर जोरदार विरोध कर रहे हैं। हम इस बात को राष्ट्रीय हित में कैसे स्वीकार कर सकते हैं।

यह स्पष्ट है कि महाराष्ट्र के अनुशासित व समर्पित नेताओं को आगामी पांच वर्षों के लिये कनिष्ठ वर्ग का ही माना जायेगा। यह बात बम्बई में धन लोलुपों के घर कर गई है कि वे बम्बई में अव्यवस्था पैदा कर देंगे। उसे खुले तौर पर नहीं कहा गया है। ऐसा कभी नहीं किया जाता है। हम यहां एक दैत्य का सामना कर रहे हैं। गुपचुप रूप से यह अफवाहें चल रही हैं कि यदि बम्बई महाराष्ट्रियों के हाथों में पड़ गया तो वे यहां अव्यवस्था फैलायेंगे, विकेन्द्रीकरण करेंगे। यदि कांग्रेस अध्यक्ष "विकेन्द्रीकरण" शब्द का प्रयोग करते हैं तो इससे कोई नहीं चौंकता, लेकिन यदि एक विशिष्ट महाराष्ट्री अर्थशास्त्री इस शब्द का प्रयोग करते हैं तो खलबली-सी मच जाती है। अतः महाराष्ट्र के मंत्रीगणों को इस बात का ध्यान रखना चाहिये। मैं समझता हूं कि इस कारण से विनीत, और विश्वस्त रूप से यह कठिन कार्य करेंगे। अचेतनावश, यद्यपि नेक इरादों से वे अलग-अलग विकास बोर्डों के आधुनिक प्रारूप पर बंटे रहेंगे। ऐसा लगता है जैसे कि उनके भाग्य में बम्बई शहर को कभी न पाना लिखा हो।

उन्हें बम्बई शहर पर अकेले ही शासन करने की इजाजत नहीं है। उन्होंने साझेदारी में शासन किया है। लेकिन किसी इकाई की साझेदारी में बहुल साझेदार को उसके भौगोलिक क्षेत्र की सम्पत्ति पर अधिकार नहीं होना चाहिए क्योंकि न्यायशील अल्प साझेदार मौजूद नहीं रहता। मुझे लगता है जिस सांप्रदाय ने देश के स्वतंत्रता संग्राम में गत 300 वर्षों के दौरान एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, और आधुनिक युग के दो प्रमुख शासक पैदा किये उसके साथ यह एक प्रकार से अन्याय होगा। मैं वर्ष 1937 से महाराष्ट्र के मंत्रियों की बात नहीं कर रहा हूं अपितु मैं स्याजीराव गायकवाड़ और माधवराज सिंधिया का उल्लेख कर रहा हूं। जब जब तक अंग्रेजों को कुट और करीन, लीबिया और इटली के लिये मराठों की जरूरत नहीं पड़ी तब तक वे उन्हें युद्धप्रिय जाति नहीं समझते थे। ग्रह मंत्री उन्हें मूर्ख और अन्यायपूर्ण समझते हैं।

उन्होंने कहा कि मराठा शौर्यपूर्ण और गुजराती बुद्धिमान। मैं यह नहीं कहता कि गुजराती शौर्यपूर्ण नहीं है। मैं मज़ाक नहीं कर रहा। प्रत्येक क्षेत्र में कुछ लोग योद्धा होते

हैं और गुजरात में कठियावाड़ का बहुत ही बढ़िया शौर्यपूर्ण इतिहास है। मैं यह भी नहीं कहता कि प्रत्येक मराठा शौर्यपूर्ण है बल्कि केवल कुछ जिले ऐसे हैं जैसे कि सतारा ज़िला और मेरे निर्वाचन क्षेत्र के दक्षिण में कोलाबा, जहां मेरा जन्म हुआ था।

गृह मंत्री ने अभिप्रेतार्थ रूप से महाराष्ट्रियों को बुद्धिहीन बताया है। मैं इस बात को समझ सकता हूं। महाराष्ट्र से बुद्धिमत्ता तभी विदा हो गई थी जब कि महाराष्ट्री बाह्मणों के कुछ विशेष परिवार 250 वर्ष पूर्व रत्नागिरी में देवरूख से चले गये। हाल ही में महाराष्ट्र के नेताओं में शौर्य का एक प्रमुख भाग विवेक, नजर आया है। किन्तु हमारा संविधान भेदभाव में विश्वास नहीं करता और अयोग्यता की परिकल्पना नहीं की जानी चाहिए। केन्द्र के पास संवैधानिक रूप से हस्तक्षेप करने का केवल एक रास्ता है और वह है, अयोग्यता का आधार्त वह जो कि एक आपातकालीन उपाय के तौर पर होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, बम्बई शहर अब महाराष्ट्र को मिले इस तर्क को मैं समझ सकता हूं किन्तु महाराष्ट्रीय मंत्रिमंडल के कार्यनिष्पादन को देखते हुए हमें इस मामले पर पुनर्विचार करना चाहिए। मैं इस बात को समझ सकता हूं। यद्यपि यह भेदभाव है, किन्तु यह एक गंभीर भेदभाव नहीं है। संविधान में चाहे कुछ भी लिखा हो हम कह सकते हैं कि संविधान की भावना निश्चित रूप से केन्द्र के राज्य सीमाओं को अपने में मिलाने के विरुद्ध है जब तक कि कोई विशेष केन्द्रीय हित की बात न हो जैसे कि सीमाओं की रक्षा या देश के लिये राजधानी का प्रावधान करना। यदि कभी देश कठिनाइयों का सामना कर रहा हो तो वे लोग जिन्होंने महाराष्ट्र को बम्बई शहर न देने के लिये सरकार को फुसलाया, वही लोग शायद तब कालाबाजारी और मुनाफाखोरी में संलग्न रहेंगे। सरकार महाराष्ट्र, विशेषकर सतारा और दक्षिणी कोलाबा में आम आदमी को और अधिक सहायता की अपेक्षा करेगी। मैं आश्वासन दे सकता हूं कि उनके दिलों में कितनी ही वेदना क्यों न हो, वह जरूर सहायता करेंगे।

खैर, बम्बई के बाद अब, मैं राजनीतिक स्वार्थों के शिकार हुए, बेलगांव शहर तथा बेलगांव की कुछ तहसीलों का उल्लेख करूंगा। 70 प्रतिशत का नियम मैं समझता हूं, पूरी तरह गलत बात है। जबकि एक द्विभाषीय राज्य का विभाजन करना हो। जबकि सारे देश की सीमाओं को पुनर्गठित किया जा रहा है, उस समय शासकीय सुविधाओं के लिये बड़ी इकाइयों पर निर्भर करना मूर्खता है और हमारा फर्ज है कि लोगों की असुविधाओं को घटा कर कम से कम किया जाये और निश्चय ही सीमांकण के काम से थोड़ी-बहुत असुविधा व कष्ट तो होता ही है। इसलिए, ग्रामों को इकाइयों की शक्ल देनी चाहिए और मैं इन सिफारिशों का पूर्ण समर्थन करता हूं कि यह मामला यहां पर एक उचित रूप से गठित सीमा समिति द्वारा यहां पर घोषित किये जाने वाले साधारण सिद्धांतों के अनुसार तय किया जाना चाहिए।

अल्पसंख्यकों के सुरक्षोपायों की बात की गई है। कई जगह यह लागू नहीं होते वे इस पांच लाख की जनसंख्या के 15 प्रतिशत भी नहीं हैं और, इसलिये यह सुरक्षा प्रबन्ध उन पर लागू नहीं होते। फिर भी यह शंका व्यक्त की जा रही है, और मैं भी मानता हूं, कि जब तक यह संविधि के दायरे में नहीं आते, यह अवास्तविक सिद्ध हो सकते हैं। अब, मैं यह बताना चाहता हूं—और यहां मैं, महाराष्ट्रीय नेताओं की तरफ से बोलूंगा क्योंकि उन्होंने मुझसे कहा—कि महाराष्ट्रीय नेता ऐसी बात को समान रूप से मानेंगे, दूसरे शब्दों में, वे अकालकोट और दक्षिणी मुधोल तालुकों और यदि आवश्यकता हो तो पूरी सीमा को कन्नडियों को देने पर सहमत हो जायेंगे।

यहां एक विशेष कारण है और वह यह है कि हिन्दी तथा मराठी सीमा पर कुछ भी हुआ हो, जहां तक भारतीय आर्य और द्राविडी भाषाओं से संबंधित सीमाओं का प्रश्न है हमें इस संबंध में यथासंभव स्पष्ट होना होगा। इस विषय में मैं यह कहना चाहूंगा कि गोवा के उत्तर में बोली जाने वाली कोंकणी मराठी से बहुत मिलती जुलती है। दूसरे शब्दों में, मैं, कन्नड़ बोलने वालों को चुनौती देता हूं कि वे उस आदमी जो कन्नड़ न जानता हो, अपितु मराठी जानता हो, के साथ बैठकर गोवा रेडियो सुने, और निश्चित रूप से कन्नड़ भाषी को केवल कन्नड़ ही आनी चाहिए मराठी नहीं और वे गोवा रेडियो जो कहता है, उसे समझने की कोशिश करें। यकीन मानिये यह भारतीय—आर्य भाषा है। यदि आवश्यकता हो तो आप यह जानने के लिये कि कोंकणी वास्तव में क्या है एक छोटी सी समिति को नियुक्त कर सकते हैं। मैं यह नहीं कहता कि यह मराठी का ही एक रूप है क्योंकि ऐसा कहने से कोंकणी-भाषी क्रुद्ध हो सकते हैं लेकिन मैं यह कहूंगा कि इसका मराठी से समीप का संबंध है, यह एक भारतीय-आर्य भाषा है। यदि आप इन सभी तथ्यों को एकसाथ देखें तो पायेंगे कि 70 प्रतिशत का नियम इन सभी क्षेत्रों पर लागू होता है। मैं कन्नड़-भाषी लोगों के विरुद्ध नहीं बोल रहा किन्तु मुझे सत्य ही बोलना चाहिये और मैं वह सभी क्षेत्र देने को तैयार हूं जिनका उनके द्वारा गलती से स्थानांतरण किया गया है। जैसा मैंने कहा कि कन्नड़-भाषी लोग 30 प्रतिशत से कम हैं, इन क्षेत्रों में 30 प्रतिशत से थोड़ा कम हैं।

मैं बेलगांव शहर के बारे में और अधिक बता सकता हूं। इसकी भाषा मराठी रही है। सैंकड़ों सालों से यहां की म्यूनिसिपल कमेटी की रिपोर्ट मराठी भाषा में तैयार होती रही है। इसकी 54 प्रतिशत जनसंख्या मराठी भाषी है जब कि कन्नड़ भाषी जनसंख्या 24 से 30 प्रतिशत है। बेलगांव शहर के छात्रों ने प्रधान मंत्री जी से एक दयनीय अपील की है कि इस मामले पर पुनर्विचार करें। वे बेरोजगार हो जायेंगे। उन लड़कों का क्या होगा जो कालेजों से मराठी भाषा के माध्यम से अपनी शिक्षा पूरी करके निकल रहे हैं उन्हें रोजगार कहां मिलेगा? यह ठीक है कि यह कहा जाता है कि सारा भारत उनका है लेकिन बंबई

के अलावा उन्हें काम पर कौन लेना चाहता है। पुनः यह बात आती है कि बेलगांव के छात्रों के लिए पुनर्वास की समस्या हो जाएगी। इसके बाद क्षेत्रीय विकास का सवाल आता है।

आज कन्नड़ अधिकारी सामुदायिक परियोजनाओं और कन्नड़ भाषा में राष्ट्रीय विस्तार सेवा के बारे में बात करने हेतु इस क्षेत्र का दौरा करने जा रहे हैं। जो कुछ वे कहते हैं, उनका एक शब्द वहां के लोगों की समझ में नहीं आता और जब कि पड़ोसी कोल्हापुर में मराठी भाषी अधिकारी है जो कि उनकी सभी आवश्यकताओं को पूरा कर सकते हैं। आप उन लोगों की संख्या क्यों बढ़ाते हो जिन्हें परेशानी होगी और फिर उस परेशानी को बनाये रखने का प्रयास करते हो। अब यह आपके हाथ में है कि आप इस संबंध में स्पष्ट भूमिका निभाएं। किसी को कोई क्षति नहीं होगी। वे अधिक समृद्ध क्षेत्र नहीं हैं। वहां सूपा के अलावा अन्यत्र कोई खनिज भण्डार नहीं है। मैं समझता हूं कि सूपा में कुछ बाक्साइट के भण्डार हैं लेकिन अन्य क्षेत्र अधिक समृद्ध नहीं हैं, वे तो अभावग्रस्त क्षेत्र हैं। खानपुर की जनसंख्या 50,000 है, यह भी एक अभावग्रस्त तहसील है। इसलिए भू-भाग के लिए इतना उन्माद क्यों? मेरे समझ में यह बात कभी नहीं आ सकती। सारे भारतवर्ष में अब समूचा भू-भाग एक दायित्व है न कि परिसम्पत्ति क्योंकि आपको इसके विकास पर खर्च करना पड़ता है।

इसलिए इन क्षेत्रीय विकास बोर्डों और क्षेत्रीय परिषदों से, जो राज्यपाल की विशेष जिम्मेवारी है, कोई सहायता मिलने वाली नहीं है। ये तो बात अरुचिकर स्थानीय समस्याओं को राज्यपाल पर डाल रहे हैं इसका सबसे अच्छा हल तो यह होगा कि योजना आयोग को इन सभी क्षेत्रीय विषमताओं का अध्ययन करने की जिम्मेवारी सौंपी जाये। यही बात हमने राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में भी उठाई है। योजना आयोग ही एक ऐसा उपयुक्त निकाय है क्योंकि इसकी किसी से विशेष संबद्धता नहीं है। इसके साथ साथ हरेक के प्रति निष्पक्ष रवैया है और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इसके पास सभी प्रकार की क्षेत्रीय समस्याओं का अध्ययन करने की व्यवस्था है। इसका इस क्षेत्र में अपना अच्छा रिकार्ड रहा है। उदाहरण के लिए इसका डिप्टी चेयरमैन उक्त समस्या का समाधान निकालने में सक्षम है, मैं तो कहूंगा तुंगभद्रा विवाद का भी एक यही अच्छा समाधान होगा। जो स्थानीय समस्याओं से भिज्ञ हैं वे जानते हैं कि दोनों पार्टियों को राजी करना कितना मुश्किल काम है।

अब तो मैं समझता हूं कि देश अन्याय का विरोध करने वालों के बजाए इन्हीं सब गलतियों से विघटित हुआ है। पेरिस के चिड़ियाघर में एक नोटिस लगा हुआ है जिसमें कहा गया "यह जानवर दुर्दम्य है आक्रमण करने पर यह अपनी रक्षा के लिए झपटता है"

और इसी प्रकार का आरोप सच बोलने वाले हर व्यक्ति पर लगाया जाता है। मै संकीर्ण विचारधारा का व्यक्ति नहीं हूं। मैंने अपनी जिन्दगी के गत 15 वर्ष हर तरह से देश की सेवा में लगाए हैं जिसको माननीय सदस्यों ने अनदेखा करने का निश्चय कर लिया है क्योंकि मैं एक स्पष्ट वक्ता हूं। मैं भाषाई व्यक्ति नहीं हूं। मैं भाषाओं से प्यार करता हूं। मैं 17 भाषाएं नहीं जानता लेकिन मैं 17 भाषाओं को जानना चाहता हूं। मैं प्रत्येक भाषा से प्यार करता हूं। मेरी लाइब्रेरी में जितनी गुजराती पुस्तकें हैं इतनी ही मराठी पुस्तकें भी हैं।

अब मेरे पास अधिक समय नहीं है। मैं केवल एक बात और उठाना चाहता हूं और यह बात सामान्य रूप से हिंसा के बारे में है। मैं बंबई सिटी के दुर्व्यवहार की बात नहीं कर रहा हूं। लेकिन मैंने देखा कि आपने एक सदस्य को हिंसा का मामला उठाने की अनुमति दी क्योंकि उन्होंने कहा था कि हिंसा और अभित्रास के अलावा किसी भी विषय पर चर्चा नहीं की जा सकती। उन्होंने तो यहां तक कहा कि मेस वक्तव्य हिंसा भड़काने वाला था। लगता है कि वह अन्य लोगों को अपने ही नजरिए से परख रहे हैं। (मूल हिन्दी में) "दिल है उनका तप्त कराल, मानों जैसा शीशा लाल" (मूल अंग्रेजी में)।

मैं तो कहता हूं कि हिंसा बुरी है लेकिन अन्यायपूर्ण अहिंसा के बाद हुई विधिवत हिंसा उससे भी बुरी है और इससे सर्वनाश का मार्ग प्रशस्त होता है। मैं अपनी बात एक उदाहरण देकर समाप्त करता हूं। मैं इस ओर प्रधान मंत्री जी का ध्यान आकर्षित करना चाहूंगा। यह उदाहरण अहसान बिन दानिश द्वारा लिखित "एक शिकारी से" से लिया गया है।

(मूल हिन्दी में) ऐ अनीसे दश्त ऐ मेरे बहादुर हम मआश,
शेरनी फिर दुनाली से गिरा दो जिन्दह वाश
मगर भेड़िए हों सीख हों, चीते हों या खूंखार शेर
दस्तेवादी तक बहादुर हैं नशिस्तां तक दिलेर.
यह कभी आबादियों में आकर गुर्राते नहीं,
यह किसानों और मजदूरों का हक खाते नहीं
इनसे बढ़कर दरिन्दे हैं शको दिल गुर्खू,
चूस लेते हैं जो मजदूरों को यह रग का लहू
उनसे बढ़कर वे दरिन्दे हैं कि जालिम वरमाला,
घोंट देते हैं अदालत मे सदाकत का गला,
इनसे बढ़कर वे दरिन्दे हैं बशक्ले रहबर,
दिन दहाड़े लूट लेते हैं जो बेवाओं के घर

गृह मंत्री द्वारा कल दिए गए वक्तव्य मेरे विचार से गलत हैं,* मैं समझता हूं कि मुझे उनमें सुधार करना चाहिये।

उन्होंने कहा कि सभी अवस्थाओं में पूरी तौर पर परामर्श किया था। अर्थात इस संबंध में 14 बैठकें हुईं और 9 महीने तक विचार विमर्श चला, अब केबिनेट मंत्रियों के उत्तरदायित्व पर इन मामलों का कोई खास असर नहीं पड़ता। मैं स्पष्ट रूप से बताना चाहता हूं कि जब मंत्रिपरिषद ने 10 या 11 तारीख को यह निर्णय किया था कि बंबई को एक अलग नगर राज्य बनाया जाये और जब 16 तारीख को प्रधान मंत्री ने घोषित किया कि बंबई को केन्द्र द्वारा प्रशासित होना चाहिये तो उस बीच मंत्रिपरिषद की कोई बैठक नहीं हुई जिसमें कि पहले लिए निर्णय को बदला गया हो और मंत्रिपरिषद की किसी समिति को ऐसा निर्णय लेने का कोई अधिकार भी नहीं दिया गया। इसलिए घोषणा के बाद मंत्रिपरिषद को बताया गया था या नहीं, इस पर चर्चा करना व्यर्थ है। दूसरी बात यह है कि प्रधान मंत्री को अपने सहयोगियों से परामर्श किए बिना 3 जून वाली घोषणा नहीं करनी चाहिये थी। ऐसी बात नहीं कि मुझे प्रधान मंत्री के नेतृत्व पर विश्वास नहीं है। यदि वे अकेले होते और यदि निर्णय उन पर छोड़ दिया जाता तो भी मैं कहता हूं कि वे हर मामले पर निर्णय ले सकते हैं लेकिन हम पाश्चात्य लोकतांत्रिक पद्धति पर कार्य कर रहे हैं। मैं समझता हूं कि इस पद्धति को बनाए रखने का दायित्व संसद पर है। हमारे प्रधान मंत्री संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति की भांति नहीं हैं जो सचिवों की बात सुनकर स्वयं निर्णय ले सकते हैं। इसलिए यह कहना वास्तव में उचित नहीं है कि सभी अवस्थाओं पर मंत्रिपरिषद के सहयोगियों के साथ पूर्ण रूपेण परामर्श किया गया था और उसके बाद प्रधान मंत्री ने स्वयं अथवा एक-दो सहयोगियों के साथ यह निर्णय लिया था। जैसा कि मैंने कहा अगर यह अकेले प्रधान मंत्री का ही मामला होता तो मुझे इससे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन यह प्रवृत्ति निश्चयभावी हो सकती है। जहां तक मेरी जानकारी है कई राज्यों में ऐसा होता है। मैं समझता हूं कि लोकतंत्र के लिए यह प्रवृति एकदम गलत है क्योंकि अन्य व्यक्ति जिन्हें यह कार्य सौंपा गया है, प्रधान मंत्री की तरह बड़े व्यक्ति नहीं हैं। मेरा विचार है कि मंत्रिपरिषद की क्षमता या अधिकार को प्रत्येक अवस्था पर कम किया जा रहा है। इसलिए मैं इस बात को इतना महत्व देता हूं।

फिर गृह मंत्री ने कहा, मैं अपनी याददाश्त के आधार पर नहीं बोल रहा भाषण मेरे सम्मुख है, कि मैंने 10 जनवरी को मंत्रिपरिषद की बैठक में तीन राज्यों के सूत्र पर सहमत होने के बाद त्यागपत्र दिया था। यह सही नहीं है। गृह मंत्री कहते हैं कि:—

---

* 1 अगस्त, 1956 को चर्चा में हस्तक्षेप करते हुए।

"श्री देशमुख को भी यह अच्छा नहीं लगा और यहां तक कि उन्होंने उक्त प्रस्ताव के प्रकाशन के बाद अपना इस्तीफा दे दिया।"

यह प्रस्ताव प्रकाशित नहीं किया गया। जो प्रस्ताव प्रकाशित किया गया था वह यह था कि बंबई को केन्द्रीय प्रशासित होना चाहिये। यदि मैंने उनकी बात को समझा है तो वह यह है कि उन्होंने कहा कि मैंने उप समिति की बैठकों में भाग लिया था। यहां पुनः मैं समझता हूं कि वे अनजाने में गलत आशय ले रहे हैं। मैंने समिति की कुछ बैठकों में भाग अवश्य लिया था। ये बैठकें बेलगांव शहर, आदिलाबाद आदि के सीमा संबंधी विवादों के बारे में हुई थीं। मैंने समिति की किसी ऐसी बैठक में भाग नहीं लिया जिसमें बंबई पर चर्चा हुई हो। इस मामले की प्रासंगिकता यही है कि एक समय मैं मानता था कि एस० आर० सी० (राज्य पुनर्गठन आयोग) द्वारा प्रस्तावित सामान्य फार्मूला 70 प्रतिशत उचित था। इसीलिए मैंने अपने भाषण में कहा था कि जनता की तकलीफों को कम करने के लिए एक सीमा आयोग बनाना चाहिये और यही कारण है कि मैंने इस प्रस्ताव का समर्थन किया था क्योंकि यह आयोग उचित प्रक्रिया के अनुसार कार्य कर सकेगा। यदि इस प्रकार के मसले पैदा होते रहे तो यह कहना कि जोनल परिषदें उन्हें निपटा लेंगी यह तो कोई उत्तर नहीं है क्योंकि वहां तो विवाद बना रहेगा। क्योंकि जोनल परिषदें इस मसले को उपयुक्त प्रक्रिया के अनुसार सही तरीके से नहीं निपटा पायेंगी। जब कि सीमा आयोग को इस संबंध में अधिक अधिकार प्राप्त रहेंगे।

ठीक है उक्त घटनाओं को लेकर अब मैं मुश्किल में हूं। मैं प्रधान मंत्री के साथ हुए पत्र व्यवहार को सभा पटल पर रखना चाहता हूं। मैं समझता हूं कि मेरा अपना इस्तीफा भी कोई गोपनीय नहीं है और मैं नहीं समझता कि इसे सभा पटल पर रखने के लिए प्रधान मंत्री की अनुमति लेने की आवश्यकता है। इसे निजी अथवा गोपनीय अंकित नहीं किया गया है। जो भी हो यह मेरा इस्तीफा है। इसलिए जो कुछ मैंने कहा उसके प्रमाण के रूप में अपना इस्तीफा सभा पटल पर रखना चाहता हूं। प्रधान मंत्री द्वारा 16 तारीख की बंबई के केन्द्र द्वारा प्रशासित होने की घोषणा के बाद मैंने 22 जनवरी को त्याग पत्र दे दिया था।

अब सवाल यह पैदा होता है कि मैंने 6 दिन तक प्रतीक्षा क्यों न की। मुझे नहीं मालूम कि महाराष्ट्र के नेताओं ने गृह मंत्री अथवा प्रधान मंत्री से 11 जनवरी से 16 जनवरी के बीच क्या बातचीत की। उन्होंने मुझे नहीं बताया। वार्ता के बाद वे मुझसे नहीं मिले। वे गृह मंत्री से मिलने से पहले मुझे मिले लेकिन उसके बाद नहीं मिले। इसी से मैंने अनुमान लगाया था कि उन्होंने कदाचित केन्द्रीय प्रशासित बंबई का प्रस्ताव मान लिया

होगा। इसके पश्चात वित्त मंत्री होने के नाते मेरे लिए ऐसी कोई बात नहीं रहती कि मैं इसमें कोई अड़चन पैदा करूं। लेकिन जब महाराष्ट्र कांग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी समिति ने इस बात का खण्डन किया कि वे इस प्रस्ताव से सहमत हैं और वे उनका इस्तीफा तक मांगने लगे तो मैंने अनुमान लगाया कि जो कुछ उन्होंने प्रस्ताव किया वह उनके महाराष्ट्र प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सहयोगियों को स्वीकार नहीं है। महाराष्ट्र की जनता को भी यह निर्णय न के बराबर स्वीकार्य था। इससे मैंने निष्कर्ष निकाला कि उनके नेता उनकी मांगों को पूरा करने अथवा उनके हितों की रक्षा करने में असफल रहे। अतः मेरा विचार है कि अपने कार्य में असफल होने वाले नेताओं को अपने स्थान रिक्त कर देने चाहियें और अच्छे लोगों के लिए राह छोड़ देनी चाहिये। मुझे ऐसा करने में कोई गलत नहीं लगता।

अब प्रश्न यह है कि मैंने अपने त्यागपत्र पर आग्रह क्यों नहीं किया। यह प्रधान मंत्री जी के जवाब से स्पष्ट हो जाएगा लेकिन मैं इसे सभापटल पर नहीं रख सकता। इस संबंध में मैंने एक साधारण बात कही थी कि इससे एक बड़े द्विभाषी राज्यों दक्षिण प्रदेश आदि के निर्माण की आशा बंधती थी और जैसा कि आप जानते हैं मैं अपनी इस बात से कभी पीछे नहीं हटा कि बंबई का सबसे अच्छा समाधान इसे एक बड़ा द्विभाषीय प्रदेश बनाया जाना है। इसलिए मैंने कुछ ठहरना उचित समझा। किसी भी तरह से, जब हिंसा भड़क उठी थी मैंने प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य समझा कि वह ऐसा कोई कार्य न करे जिससे लोग और उत्तेजित हो जाएं। इसलिए मैंने ठहरना ही उचित समझा। इसके पश्चात कुछ संसद सदस्य मेरे पास आए। मैं किसी के नाम का उल्लेख नहीं करूंगा लेकिन मैं नहीं समझता था कि मेरे द्वारा उनके नाम का उल्लेख करने में वे मेरा इतना प्रतिरोध करेंगे। यह सही है कि श्री फिरोज गांधी और श्री देवकांत बरुआ मेरे पास आए थे और उन्होंने कहा: इस मसले का समाधान अब संसद में होगा। आपको इतनी जल्दी क्यों है? आपको याद होना चाहिये कि यह जनवरी का महीना है और संसद सत्र फरवरी में शुरू होगा। मेरी भी अपनी कुछ जिम्मेवारी थी। मैंने बजट तैयार किया था। मुझे इसे पेश करना था। मुझे कराधान उपाय पारित करने थे। फिर अन्य कई महत्वपूर्ण वैधानिक मामले थे। योजना को अन्तिम रूप दिया जाना था। अपने विनम्र शब्दों में मैंने अपने त्यागपत्र पर जोर देने के बजाय देश की सेवा करना अपना कर्तव्य समझा। मुझे नहीं लगता कि इसमें कोई गलत बात थी। मेरा यह दावा है कि उन तीन या चार महीनों में मैंने पिछले पांच वर्षों की तुलना में ज्यादा परिश्रम किया। मुझे आशा है— यद्यपि बहुत धूमिल आशा है कि कोई सदस्य किसी कीमत पर इस बात को स्वीकार करेगा कि मैंने अपने त्यागपत्र को रोक कर देश के लिए कोई मूल्यवान कार्य किया है, लेकिन मेरा त्यागपत्र कभी वापस नहीं लिया गया था। जैसा कि मैंने कहा कि इन सब कारणों से मैंने इसको स्वीकार करने पर जोर नहीं दिया।

मैं सदन के पटल पर एक और पत्र रखना चाहूंगा, लेकिन उसे केवल प्रधानमंत्री जी की अनुमति से ही सभा पटल पर रखा जा सकता है, लेकिन मैं उसमें से कुछ अंश पढ़ना चाहूंगा। इसके ऊपर "गोपनीय" अथवा "निजी" की अपेक्षा "व्यक्तिगत" लिखा हुआ है। इसके अनुसार—जब मैंने पाया कि अप्रैल माह के अन्त तक परिस्थितियां बेहतर नहीं हुई, तो मैंने पुनः त्यागपत्र देने की पेशकश की—

> "मेरे विचार से आपके सहायता देने के दृष्टिकोण को देखते हुए जिसके प्रति आप इतने अधिक उत्सुक हैं, आपका त्यागपत्र देना ज्यादा सहायक नहीं होगा। इस विधेयक को प्रवर समिति के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है, समिति से वापस आने के बाद इसे अंतिम रूप दिया जाएगा। मैं चाहूंगा कि आप तब तक प्रतीक्षा करें।"

और यही मैंने किया। मैंने तब तक प्रतीक्षा की। परन्तु बाद के प्रारम्भ में मैंने पाया कि प्रधानमंत्री जी ने एक वक्तव्य दिया था, मेरे विचार में जिसके कारण संयुक्त समिति के कार्य का कोई भी महत्व नहीं रह गया था। दूसरे शब्दों में, जैसा कि श्री कृपलानी जी ने भी कहा है—बहुमत वाली पार्टी के सदस्यों ने, जो संयुक्त समिति में भी थे, पाया कि प्रधानमंत्री जी के वक्तव्य देने के बाद, अब इस बारे में और कार्यवाही करना उनके लिए उचित नहीं था। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं कि अगर इससे उस उद्देश्य की पूर्ति होती, जो मैं चाहता था, तो मैं अपने त्यागपत्र के लिए जोर न देता, लेकिन मेरा विचार है कि इससे महाराष्ट्र को एक और भी बुरी स्थिति में डाल दिया गया। बम्बई को एक नगर राज्य बनाए जाने पर भी वह उतनी बुरी स्थिति में न पड़ता। माननीय गृह मंत्री ने कहा कि यह उनकी समझ से परे है। मैं इसके लिए कुछ नहीं कर सकता, परन्तु मेरे विचार में पांच वर्ष की अवधि एक वर्ष या दो वर्ष या तीन वर्ष की अपेक्षा एक लम्बी अवधि होती है। यह अंकगणित का सीधा सादा नियम है। केन्द्र द्वारा प्रशासित क्षेत्र होने पर भी यह पूर्णतः संसद की इच्छा पर निर्भर करता है कि इस अवधि के बाद वह केन्द्रीय प्रशासन को समाप्त कर देने का अधिनियम पारित करें या नहीं। उन्होंने इसमें कार्यकारी घोषणा की शर्त और जोड़ दी कि संसद बम्बई के नागरिकों की इच्छा जाने बिना यह कदम नहीं उठाएगी, लेकिन इसके लिए मतदान नहीं होगा, केवल उनकी आम राय का पता लगाया जाएगा। मैं नहीं जानता कि आम राय का आकलन कैसे किया जाएगा? यहां पर भी मैंने सोचा कि संसद द्वारा सारे मामले पर विचार किये जाने की तुलना में यह अपेक्षाकृत ज्यादा खराब स्थिति थी। लोगों की आम राय जानने के साथ समस्या यह है कि कोई भी नहीं जानता कि इसका किस प्रकार पता लगाया गया है। क्या आज कोई भी अपने दिल पर हाथ रखकर यह कह सकता है कि बम्बई के निवासी बम्बई शहर को महाराष्ट्र से

पृथक करना चाहते हैं? इसका क्या प्रमाण है? प्रमाण तो केवल यही है कि 44 प्रतिशत जनता चाहती है कि बम्बई नगर महाराष्ट्र को दिया जाए, पांच या सात प्रतिशत कोंकणी जनता की भी यही राय होगी। जैसा कि एक माननीय सदस्य ने कहा है कि यहां पर पांच लाख तमिल क्लर्क हैं, वे भी बम्बई नगर को महाराष्ट्र को देने के बारे में आपत्ति क्यों करेंगे? उनके जीविकोपार्जन के साधन पर तो कोई भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। वे तमिल को वहां सरकारी भाषा के रूप में प्रयोग नहीं कर सकते हैं। उन्हें इस उद्देश्य हेतु गुजराती अथवा कोंकणी अथवा मराठी सीखनी पड़ेगी। अतः इससे कोई अन्तर नहीं पड़ेगा कि वे स्वयं अथवा उनके बच्चे मराठी सीखते हैं या गुजराती। हमने इस नियम पर इतना अधिक नहीं सोचा है। हम अल्पसंख्यकों को किसी भी प्रकार की सुरक्षा देने को तैयार हैं। अगर बम्बई में गुजराती, मराठी हो सकते हैं, तो उन्हें इस बात की स्वतंत्रता है। बम्बई में व्यापार आदि के लिए गुजराती भाषा बहुत महत्वपूर्ण है। मैं चाहता हूं कि बम्बई नगर में हर बच्चे को गुजराती भाषा पढ़ना अनिवार्य होना चाहिए, क्योंकि इससे उसे व्यापार को समझने में आसानी होगी और उसमें बहादुरी के साथ-साथ विवेक भी पैदा होगा। इसलिए, मेरा विचार है कि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जो यह साबित कर सके कि बम्बई नगर पृथक रहना चाहता है। अगर ऐसा है, तो आप इसके लिए विकल्प का प्रावधान क्यों रखते हैं?

मेरा विचार है कि प्रधानमंत्री के वक्तव्य के कारण स्थिति और बिगड़ गई है और यह वक्तव्य मंत्रिमंडल के और मुझसे जिसने उस समय अपना त्यागपत्र देने का प्रस्ताव किया था, परामर्श से नहीं किया गया था। कम से कम मंत्रिमण्डल की बैठक में अथवा मंत्रिमण्डलीय समिति की बैठक में इस मामले पर विचार नहीं किया गया था। मुझसे संयुक्त समिति द्वारा घोषणा किए जाने तक चुप रहने को कहा गया था, लेकिन न तो मुझसे परामर्श किया गया और न मुझसे यह पूछा गया कि क्या यह तुम्हारी इच्छानुरूप है, "अथवा" क्या यह आपके लिए सहायक होगा। मेरा कोई बहुत ज्यादा महत्व नहीं है। मेरी हमेशा से यह मान्यता रही है कि कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं है, जिसके बिना कोई काम न चल सके। मेरा यही विश्वास रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक उच्चाधिकारी को इस प्रकार कार्य करना चाहिए ताकि उसकी अनुपस्थिति बाद में न अखरे और मैंने ऐसा ही किया और मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी अनुपस्थिति से काम रुकेगा नहीं। मेरे महत्व को पहले ही समाप्त कर दिया गया है।

इसी कारण मैंने इसको इतना महत्व दिया है, यह पत्र व्यवहार कार्यवाही वृत्तान्त में सम्मिलित किया जाएगा या नहीं, यह आपके विवेक पर निर्भर करता है। यदि आप इस बात पर विश्वास कर लें कि इसे उस पत्र से उद्धृत किया गया है, तो मैं प्रधानमंत्री के पत्र को पटल पर रखने के लिए उत्सुक नहीं हूं। किन्तु यदि आप कहते हैं कि मैं जाली पत्र

से यह उद्धृत कर रहा हूं, तो मुझे अवश्य ही इसे सभा पटल पर रखना चाहिए, क्योंकि उसमें उनके हस्ताक्षर हैं। अतः मुझे क्या करना चाहिए, इस बारे में कृपया आप अपनी व्यवस्था दें।

इसके बाद मैं यह कहने का साहस करता हूं कि प्रधानमंत्री इस पत्र व्यवहार को प्रकाशित करने की मुझे अनुमति दें।

केवल एक छोटी सी बात है, मैंने दस मिनट बोलने को कहा था, मैं समझता हूं मैंने ग्यारह मिनट पहले ही ले लिए हैं। माननीय गृह मंत्री ने कहा कि प्रत्येक सदस्य की तरह मैं भी राज्य पुनर्गठन विधेयक से सहमत हूं और इसीलिए मेरे खिलाफ एक तरह का विबन्धन है। मेरी समझ में यह नहीं आता कि मेरे विरुद्ध किस प्रकार विबंधन हो सकता है, जबकि 22 जनवरी से मेरा त्यागपत्र विचाराधीन है, और 24 अप्रैल को प्रधानमंत्री ने यह कहा, "कृपया प्रतीक्षा कीजिये और देखिये कि संसद क्या करती है?" जब संसद सदस्य मेरे पास आते हैं और कहते हैं, "कृपया प्रतीक्षा कीजिये और देखिये, हो सकता है, हम इस मतभेद को दूर करने में सफल हो जायें।" मुझे राज्य पुनर्गठन विधेयक पुरःस्थापित किये जाने की सही तारीख इस समय याद नहीं है। इसके बारे में पता लगाने का समय मेरे पास नहीं है। मगर मेरे विचार से इसे अप्रैल के अन्त में पुरःस्थापित किया गया था।

जब राज्य पुनर्गठन विधेयक पुरःस्थापित किया गया था, मैंने प्रधानमंत्री से कहा था कि "चूंकि आप अब कोई परिवर्तन नहीं कर रहे हैं, अतः कृपया आप मुझे इस विधेयक के विरोध में बोलने और इसके विरुद्ध मत देने की अनुमति दें और यदि इस कारण आप समझते हैं कि मैं मंत्रिमंडल में नहीं रह पाऊंगा, तो मैं पूर्णरूपेण इस बात से सहमत हूं।" यह पत्र 20 अप्रैल का है, जिसका उत्तर इस दूसरे पत्र में दिया गया है.....इससे स्पष्ट होता है कि मेरे विरुद्ध कोई विबन्धन नहीं है।

*इस अवस्था में अनुग्रहपूर्वक वाद-विवाद में भाग लेने की अनुमति देने के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं, मैंने पहले दिन कुछ विलम्ब से व्यक्तिगत स्पष्टीकरण दिया था। मैंने अगले दिन सीमा आयोग के विचार का प्रबल समर्थन किया था। मैं इस बारे में अत्याधिक आश्वस्त हूं कि इस सभा के लिए 101 विवादों के संबंध में ईमानदारी से निर्णय लेना संभव नहीं होगा। मैं नहीं समझता कि सभा द्वारा एक बार निर्णय दे देने के बाद इस मामले के बारे में क्षेत्रीय परिषदों के लिए निर्णय लेना संभव होगा। जब तक विवाद रहेगा, लोगों के मन में यह आशंका रहेगी कि विवादों को क्षेत्रीय परिषदें निपटा

*3 अगस्त, 1956 को वाद-विवाद में भाग लेते हुए।

रही हैं अथवा सीमा आयोग। परन्तु यदि उनका निपटान क्षेत्रीय परिषदों द्वारा किया जाता है, तब मुझे डर है कि उनके लिए अवान्छित परम्परा कायम हो जायेगी, क्योंकि उन्हें और भी अन्य महत्वपूर्ण काम निपटाने होते हैं। इसके अलावा, मैं यह नहीं मानता हूं कि उनके पास ऐसी प्रक्रिया होगी, जिससे वे इस विवाद को व्यवस्थित रूप से निपटा सकें। दूसरी ओर, सीमा आयोग उचित रूप से प्राधिकृत और सुसज्जित संस्था है। इसे किसी से भी सम्पर्क करने के लिये आवश्यक शक्तियां दी जायेंगी और मेरे विचार से इस कार्य के लिये निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार इन मामलों से निपटकर जब यह अपने निष्कर्ष प्रकाशित करेगा तो उस की कुछ अनौपचारिक पवित्रता भी होगी। इसलिये मुझे पूरी आशा है कि सदन इस बारे में संबद्ध संशोधन को जो सीमा आयोग के कार्यों संबंधी शर्तों का भी उल्लेख करता है, स्वीकृति दे देगा।

अभी पिछले दिन अपने भाषण के दौरान मैंने भी कहा था कि मैं सदैव वृहत द्विभाषी बम्बई राज्य का प्रबल समर्थक रहा हूं। तब से मैंने जो कुछ भी सुना इससे मेरा विचार और भी दृढ़ हो गया। मैं अब यह महसूस कर सकता हूं कि सदन में इस प्रस्ताव को प्रबल समर्थन प्राप्त है। यह व्यक्तिगत निर्णय का मामला है। यह गलत भी हो सकता है। मुझे ऐसा ही लगता है कि लोग वृहत द्विभाषी बम्बई राज्य के पक्ष में हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि सिद्धांत रूप से मैं बहुभाषी राज्य के विरुद्ध हूं। परतु जब हम इस विषय पर चर्चा कर रहे हैं तो हमें संकीर्णतावाद, प्रांतीयता तथा भाषायी कट्टरता जैसे निंदात्मक शब्दों से बचना चाहिये। अपने फायदे के लिये दोनों ही दल इन शब्दों का प्रयोग करते हैं। यदि आपको आरंभिक लाभ हो रहा हो तो आप बेशक दूसरे दल के खिलाफ उसका प्रयोग कर सकते हैं। हमें उन मामलों पर थोड़ा और निष्पक्षता से विचार करना होगा।

मैं इस बात से पूरी तरह सहमत हूं कि दक्षिण के राज्यों को आवश्यक रूप से एकभाषी होना पड़ा है क्योंकि बौद्धिक वर्ग में अंग्रेजी अब मानवाभिव्यक्ति का वैसा माध्यम नहीं रह गयी है जैसा पहले देश में हुआ करती थी। हमें संविधान द्वारा व्यस्क मताधिकार दिया गया है और हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में अभी तक व्यापक आधार पर प्रतिष्ठित नहीं हो पायी है, इसलिये मैं समझता हूं कि उन राज्यों को छोड़कर जहां दो या अधिक भाषायें एक जैसी हैं जैसे तमिल और मलयालम, राजनीतिज्ञों और प्रशासकों की दृष्टि में बहुभाषी राज्य हर हाल में अधिक सुविधाजनक हैं। यह फैसला करना तो तमिल और मलयाली लोगों पर है। मैं तो शहरी व्यक्ति हूं। मेरे मित्र श्री बी० पी० नायर ने मुझे मलयालम भाषा के उत्तम इतिहास के बारे में बताया था। उनके पिता ने शायद 'दरबार तमिल' से सुंदर इतिहास की रचना की है। और, मैं किसी को बलात् आपस में जोड़ना नहीं चाहता जिसे वे स्वयं न चाहते हों।

दक्षिण में एकभाषी राज्यों की सार्वभौमिक सुविधा है, और इसका मैं सैद्धांतिक अपवाद के रूप में उल्लेख भर कर रहा हूं।

यह तर्क इन सीमावर्ती स्थानों पर उतना संगत नहीं है जहां दो हिन्दू आर्य भाषायें मिलती हैं उदाहरण के लिये मराठी और गुजराती या मराठी और हिंदी। दुर्भाग्य से इस समय किसी द्विभाषी राज्य की संभावना नहीं है क्योंकि जिन स्थानों पर मराठी-हिन्दी दोनों बोली जाती थी वे क्षेत्र बंट गये हैं। वे पहले के मध्यम प्रदेश में मिल रही थीं। लेकिन हम गुजराती और मराठी की सीमाओं के बारे में बात कर रहे हैं जो काफी समानता रखती है। यद्यपि उनके वर्ण बिल्कुल एक जैसे नहीं हैं लेकिन यदि कोई गुजराती जानता है वह मराठी के वर्णों को और यदि कोई मराठी जानता है वह गुजराती के वर्णों को आसानी से पढ़ सकता है जो हिंदी के वर्णों जैसे ही हैं। इसलिये अन्य बातों के अलावा इस भाषायी दृष्टिकोण से वृहत द्विभाषी बम्बई राज्य पूर्णतः तर्कसंगत है। मैं इस बात से सहमत हूं कि भाषाओं के साथ आर्थिक हित नहीं जुड़ा है क्योंकि क्षेत्रानुसार भाषा बदल जाती है। संयुक्त महाराष्ट्र की मांग भाषायी मांग न होकर आर्थिक और क्षेत्र संबंधी मांग थी। राज्य क्षेत्र की तीन क्षेत्रीय पट्टियां यह सोचती रहीं कि हर एक की कोई न कोई आर्थिक परेशानी है। वे उचित थीं या अनुचित हम इस पर विचार नहीं करेंगे न ही यह मेरी बात के लिये जरूरी है। ऐसा लोगों का दृढ़ विश्वास था कि किसी भी भाषा के बोलने वाले ही इस की स्वीकृति देंगे कि व्यवस्था कैसी है जिससे उनके आर्थिक हितों की और वृद्धि हो सके।

मेरा विश्वास है कि वृहत द्विभाषी मुंबई राज्य के हित को उस प्रदेश का संविधान बाधित नहीं करेगा क्योंकि बम्बई शहर अपनी अतिरिक्त आय से अन्य भागों को भी प्रोत्साहित कर रहा है। जैसा कि पिछले दिन गृह मंत्री ने कहा था कि वित्त आयोग को बम्बई से होने वाली अतिरिक्त आय को विशेष प्रकार से वितरित या उसका आवंटन करना होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन जैसा मैंने कहा कि हम स्वाभाविक रूप से बढ़ने वाली अतिरिक्त आय को अधिक अच्छा समझते हैं जिसमें किसी दूसरे आयोग का हस्तक्षेप न हो, यह किसी तीसरी संस्था द्वारा समय-समय पर बंदोबस्त किये जाने की अपेक्षा अच्छा है। मेरे विचार से यह लाभ अन्यों को लेना ही चाहिये जो इसे लेते रहे हैं, क्योंकि वे कुछ अन्य कारणों से एक अलग कन्नड़ भाषी राज्य बनाना चाहते हैं। परन्तु इसके लिये हमें कोई शिकायत नहीं है। मेरा यह मानना है कि वृहत द्विभाषी बम्बई राज्य बनाने से उसमें शामिल किसी भी भाग के आर्थिक हितों की हानि नहीं होगी। राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि ये सारे कटु विचार अपने आप तेजी से दब जायेंगे। यह मेरा व्यक्तिगत विचार है।

आम आदमी ईर्ष्यालु नहीं होता या उस हद तक उत्तेजित नहीं होता जब तक उसे लोग न उकसायें जिन्हें कि मैं बुरा तो नहीं पर उनके विश्वास पात्र कहूंगा इसी के कारण उन्हें समाज में खास तरह का व्यवहार और विशेष दृष्टिकोण अपनाना पड़ता है, ढोंग करना पड़ता है। एक स्वतंत्र व्यक्ति के और किसी के उकसाने पर बोलने वाले व्यक्ति के कथन में काफी अंतर होता है। आज यदि आप बम्बई के "मूलजी जेठा" कपड़ा बाजार के किसी कपड़े के विक्रेता से पूछें तो वे कहेंगे कि बम्बई चाहे महाराष्ट्र में जाये या गुजरात में इससे उनका कोई मतलब नहीं है। वे तो अपना कपड़ा बेचने में ही खुश हैं। व्यापार तो मराठी या हिन्दी भाषी लोगों के हाथ में है। पूना के मुख्य व्यापारिक मार्ग "लक्ष्मी रोड" पर पचास प्रतिशत थोक विक्रेता गुजराती हैं। और इस अवधि के दौरान उनका जरा भी नुकसान नहीं हुआ है।

मैं पूना की बात इसलिये कर रहा हूं कि क्योंकि मैंने हाल ही में कुछ दिन वहां रह कर पूछताछ की थी। उनका कुछ भी नुकसान नहीं हुआ। इसलिये मुझे पूरा विश्वास है कि ये झूठी आशंकायें और भय पूरी तरह से निराधार हैं और यदि ये दोनों लोग जो सदियों से प्रसन्नता से साथ-साथ रहते आये हैं, पुनः साथ-साथ ही रहने लगे तो आम आदमी को बड़ी प्रसन्नता होगी।

मैंने अपने पहले भाषण में नेताओं की परेशानियों का उल्लेख किया था। एक माननीय सदस्य ने मुझे गुस्से से यह कहा था कि मेरा तात्पर्य गुजराती नेताओं से था। उन्हें पता होगा कि मैंने केवल नेताओं का उल्लेख किया था, गुजराती नेताओं का नहीं। यदि मैं सत्य कहूं तो मराठी भाषी लोगों की तरफ से ही अधिक परेशानियां आयेंगी, इसलिये नहीं कि वे बुरे हैं बल्कि वे सोचते हैं कि उनका हित इसी में है। डा० पी० एस० देशमुख मेरी ओर गुस्से से देख रहे हैं। विदर्भ के लोग एक द्विभाषी क्षेत्र से निकलने के बाद दूसरे द्विभाषी क्षेत्र में नहीं फंसना चाहते हैं। दूसरे शब्दों में वे किसी हिंदी भाषी क्षेत्र से अभी-अभी अलग हुये हैं और उनकी आशंका है कि वे दूसरे द्विभाषी क्षेत्र में फंस जायेंगे। नागपुर के आस-पास लोग अभी यह आशा कर रहे हैं कि बम्बई शहर महाराष्ट्र में नहीं जायेगा जिससे नागपुर राजधानी बन सकेगा। इन निहित स्वार्थों को आसानी से समझा जा सकता है लेकिन सदन को इस पर पक्षपातपूर्ण रुख नहीं अपनाना चाहिये। यह इस न्यायिक संस्था सदन का कर्त्तव्य है कि सब कुछ सुनने के बाद न्याय करें और ऐसी कार्यवाही करें जिससे लोग पास आयें न कि राष्ट्रीय एकता में बाधित हों। केवल वाणी से राष्ट्रीय एकता की बात करना और महाराष्ट्र, गुजरात, बम्बई शहर, क्षेत्रीय परिषद्, निकास बोर्ड जैसे क्षेत्रों को बनाये जाने से कोई लाभ नहीं है। आप एकता को बढ़ावा दे रहे हैं या अनेकता को? यदि आप किसी और चीज को बढ़ावा देना चाहते हैं तो फिर उसके

लिए अपने प्रभाव का इस्तेमाल कीजिए। उसकी रक्षा आप क्यों नहीं करते? यदि आप किसी और मामले में दृढ़ हैं तो इस बड़े मामले में आप दृढ़ क्यों नहीं होते। मैं महाराष्ट्र के लोगों को यह बताने के लिए महाराष्ट्र की यात्रा करने को तैयार हूं कि वृहत् द्विभाषी क्षेत्र व्यापक रूप से लोगों के हित में होगा।

अब यह तो सत्य ही है कि जब आप किसी क्षेत्र को तीन भागों में बांटते हैं तो फिर तीन मंत्रालय बनने हैं, तीन मुख्य मंत्री, तीन वित्त मंत्री, तीन गृह मंत्री होते हैं हर चीज लुभावनी लगती है। फिर भी, अपने कटु अनुभव से मैंने देखा कि इन क्षेत्रों में अभी भी उच्चस्तर की राजनीतिकता और प्रशासनिक योग्यता प्रचुर मात्रा में नहीं है इसलिए मेरे विचार से इच्छुक लोगों को थोड़ा इन्तजार करना और राज्य की सफलता के लिए योग्य व्यक्तियों को अपने साथ-साथ आने देना ठीक रहेगा। मुझे भी यह भरोसा दिलाया गया है कि वृहत् द्विभाषी राज्य भारत के सबसे अच्छे राज्यों में से एक होगा और यह देश के अन्य भागों में ईर्ष्या जगाने के लिए नहीं कहा गया है। मैं काका साहब कालेलकर के छोटे एककों और छोटे राज्यों के विचार से पूरी तरह असहमत हूं। मैं समझता हूं कि यह गलत है क्योंकि यह राज्य बनाने की बात तो करता है पर इसके लिए संसाधनों का उपबन्ध नहीं करता। जैसा कि मैंने पिछले दिन कहा था कि यदि बड़े क्षेत्र होंगे तो संपन्न लोग और संपन्न भाग बिना इस बात का ध्यान किये कि उन पर कर लगाया जा रहा है, कम विकसित और गरीब लोगों के लिए धन दे देंगे। इस तरह के आदान-प्रदान को हतोत्साहित करने के बजाये बढ़ावा देना चाहिये। मैं यह बात महसूस कर के कह रहा हूं, यद्यपि अब मैं वित्त मंत्री नहीं रहा पर मुझे पता है कि तब क्षेत्रीय असमताओं को दूर करने का भार केन्द्रीय वित्त मंत्रालय पर आता है और केन्द्रीय वित्त मंत्री इन क्षेत्रों को एक उचित स्तर तक उठाने के लिए धन की व्यवस्था करने में परेशान हो जाता है जबकि बड़े राज्यों के गठन से अनिवार्य रूप से ऐसा स्तर प्राप्त हो जाता है। इसलिए मैं यह भी सोचता हूं कि उत्तर प्रदेश के टुकड़े न करने का निर्णय एक बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय था। फिर भी, मेरे विचार से पश्चिमी उत्तर प्रदेश चीनी तथा विभिन्न अन्य कारण से पूर्वी उत्तर प्रदेश की अपेक्षा कुछ बेहतर स्थिति में है और थोड़ा अधिक समृद्ध है। पूर्वी उत्तर प्रदेश की जनसंख्या अधिक है। मेरे विचार से यह भारत के सबसे गरीब भागों में से है। मैं समझता हूं कि यह केरल जैसा गरीब है। गोरखपुर में जोत भूमि औसतन लगभग आधे एकड़ के बराबर है। कुछ फालतू वे कहीं से जुटा कर अपना काम चला लेते हैं। 60 मिलियन लोगों के लिए उनके पास 65 से 70 करोड़ रुपये का बजट है। यह बजट बहुत थोड़ा है।

अतः मैं बड़े एककों के पक्ष में हूं, और इसी सामान्य सिद्धांत के अनुसार जिसका मैं पक्षधर हूं मेरा कहना है सभा इस संशोधन 462 को अपना समर्थन दे और मुझे आशा है

कि कांग्रेस दल के सदस्यों को इस पर स्वतंत्र रूप से अपना मत देने की अनुमति दी जायेगी।

** ** ** **

*अध्यक्ष, महोदय, "विचार किये जाने" के चरण के बाद, विधेयक का अब जो रूप निकला है, उसके और विशेषकर उस संशोधन से जिस के कारण मुम्बई को नया राज्य बनाया गया है, मैं काफी संतुष्ट हूं। मैं यह मानता हूं कि इन परिषदों से बहुत अधिक आशा नहीं की जा सकती है। इनके द्वारा प्रक्रिया को, जिस का प्रयोग अब भी विभिन्न राज्यों के बीच उत्पन्न हुए विवादों का निपटारा करने के लिये किया जाता है, वैधानिक रूप दे दिया गया है। मेरी राय में वर्तमान प्रक्रिया अधिक लचीली है। एक दिन मैंने एक उदाहरण दिया थाः तुंगभद्रा परियोजना की समस्याओं का हल, योजना आयोग के उपसभापति के हस्तक्षेप से हल किया गया था। फिर भी, मतदान के उपबंध संबंधी मामले को छोड़कर जिसे अब बनाया गया है। विधायी तंत्र के कारण मुझे कोई बड़ी समस्या नहीं है।

यदि इन परिषदों के गठन को देखा जाये तो मालूम होगा कि सामान्यतः दोनों पक्ष बराबर के होंगे; सामान्यतः दोनों पक्षों में तीन-तीन मंत्री होंगे और संतुलन एक संघ मंत्री के हाथ में होगा। जिसे सामान्य रूप से अध्यक्षता ही करनी होगी। इसका अर्थ हुआ कि उसे एक मध्यस्थ की भूमिका अदा करनी होगी जो शायद असुविधाजनक हो क्योंकि, कई मामलों में, क्षेत्रीय परिषदों की सिफारिशें केन्द्रीय सरकार के पास भेजी जायेंगी और पूर्व में उसके द्वारा निर्णय करने के बाद उन पर पुनः विचार करना उसके लिए बड़ा अटपटा होगा। फिर भी मुझे आशा है कि सभी सम्बद्ध पक्षों के सहयोग से यह तंत्र ठीक प्रकार कार्य करेगा।

मैं इस बात से बहुत चिंतित हूं कि इन सभी सीमा विवादों को अनिश्चय की स्थिति में छोड़ दिया गया है, यद्यपि अब हमने उन पर अपनी स्वीकृति की मोहर लगा दी है, मेरी राय में "विचार किये जाने" के चरण के बाद विधेयक में जो आवश्यक अस्थायी उपबन्ध हैं उनके अनुसार, मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि इन विवादों को सम्बद्ध क्षेत्रीय परिषदों के सामने पुनः प्रस्तुत किया जायेगा। मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि किसी सूत्र के न होने की स्थिति में भी दोनों पक्ष ऐसा दृष्टिकोण अपनायेंगे जिससे मामले को मतदान द्वारा अथवा सभापति के निर्णायक मत द्वारा निपटा लेंगे।

अब, यदि यह मान लिया जाये कि सभापति सिद्धांतों के अनुरूप कार्य करेगा तो कोई भी इस व्यवस्था पर एतराज नहीं करेगा। लेकिन ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है कि इन सिद्धांतों

---

*10 अगस्त, 1956 को अपना वक्तव्य जारी रखते हुए।

पर भली भांति विचार किया गया है और न ही ऐसी कोई बात है जिसके अनुसार प्रत्येक विवाद को अन्तिम निर्णय हेतु केन्द्रीय सरकार के पास भेजा जायेगा। माननीय गृह मंत्री ने कहा थाः "मुझे आशा है कि क्षेत्रीय परिषदों के अच्छे परिणाम निकलेंगे। यदि सब प्रयास विफल हो जाते हैं और समस्या वास्तव में विशेष महत्व की है और विशेष परिस्थितियां हैं, तो सरकार स्थिति का जायजा लेगी और यह सुनिश्चित करेगी कि इसे कैसे हल किया जा सकता है।" ये ऐसे शब्द हैं जिनमें कई अगर-मगर हैं और मुझे शक है कि अधिकांश सीमा विवाद अनिर्णीत रह जायेंगे। जैसा कि मैंने कल हस्तक्षेप करते हुए बताया था कि मेरी सूचना के अनुसार कुल 4 करोड़ व्यक्ति प्रभावित हैं। यह संख्या बहुत अधिक है और मुझे विश्वास है कि जिस वर्तमान सिद्धान्त के अनुसार गणना की गयी है, यदि उसमें संशोधन किया जाये तो प्रभावित व्यक्तियों की संख्या काफी कम की जा सकती है। मैं यह तो नहीं कह सकता कि इस संख्या को कितना कम किया जा सकेगा। अपनी टिप्पणी में माननीय गृह मंत्री ने यह भी कहा था—मैं उसे पुनः उद्धृत करता हूं—

> "मेरा निवेदन किसी सूत्र के लिए नहीं था क्योंकि मेरी अपनी भावनायें इस प्रकार हैं। जहां तक उन मतभेदों का प्रश्न है उन्हें बेहतर ढंग से हल किया जा सकता है यदि हम किसी विशेष सूत्र पर दृढ़ रहने की अपेक्षा कोई लचीला सूत्र अपनायें। अन्यथा, हमारे पास पहले से ही एक सूत्र मौजूद है, वह सूत्र जिसका प्रस्ताव दर आयोग ने किया था, जिसे राज्य पुनर्गठन आयोग द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई थी और हम इसमें इसे सरलता से फेर-बदल नहीं कर सकते।"

दूसरे शब्दों में, माननीय गृह मंत्री का दृष्टिकोण ऐसा लगता है कि कुल मिलाकर यह सबसे अच्छा सूत्र है जिसकी हम कल्पना कर सकते हैं और यदि दोनों पक्ष इस सूत्र से सहमत न हों तो मामलों को उसी स्थिति में रहने दिया जायेगा। जिसमें कि वे आज हैं।

इस स्थिति की वास्तविकता के बारे में मैं निश्चित तौर पर तो नहीं कह सकता कि माननीय गृह मंत्री दर आयोग की बात करके पृष्ठ 12 के 63वें पैराग्राफ का हवाला देना चाहते हैं क्योंकि जहां तक मैं समझता हूं 50 से 70 प्रतिशत फार्मूले का केवल यही एक मात्र संदर्भ है। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है, मैं आपकी आज्ञा से इसे पढ़ना चाहूंगाः

> "हमारे समक्ष पेश किए सभी साक्ष्य में यह माना गया है कि किसी क्षेत्र को तब तक एकभाषी क्षेत्र नहीं कहा जा सकता जब तक कि उस क्षेत्र में एक भाषा बोलने वालों की संख्या 70 प्रतिशत नहीं हो और जिस क्षेत्र में यह संख्या 70 प्रतिशत से कम हो उसे द्विभाषीय या बहुभाषीय माना जा सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार भाषायी प्रदेशों के सभी समर्थकों ने कहा है कि सभी सीमावर्ती जिलों को जहां 50 से 70 प्रतिशत लोग एक प्रमुख भाषा बोलते हों द्विभाषीय माना जाये और उन्हें छोटे-छोटे

ग्रामीण खण्डों में बांटा जाये और वहां की जनसंख्या को समीपवर्ती भाषा क्षेत्रों से संबद्ध किया जाये। यही तरीका है जिससे कि द्विभाषीय क्षेत्रों में वहां रहने वाले परस्पर विरोधी भाषा गुटों के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है।"

फिर वे कहते हैं:

"यदि ऐसे सीमावर्ती जिलों, जो द्विभाषीय हों तथा जिन्होंने अपनी एक अलग संगठनात्मक एवं आर्थिक पहचान स्थापित कर ली है, को तोड़ना है....."

फिर वे तर्क पेश करते हैं कि यही बात शहरों पर भी लागू होनी चाहिये।

इससे मैं यह निष्कर्ष निकालता हूं कि उन्होंने इस सिद्धांत को स्वीकार किया, लेकिन जैसा कि मैं समझता हूं, वे इस 50 से 70 प्रतिशत फार्मूले का प्रयोग पहले यह जानने के लिये करते हैं कि कौन सी बड़ी इकाई को द्विभाषीय इकाई माना जा सकता है। मेरे ख्याल से किसी राज्य के एक भाषीय या द्विभाषीय होने के प्रश्न पर भावनाओं का प्रभाव नहीं अपितु ऐसे परिकलन का प्रभाव पड़ना चाहिये जिससे किसी क्षेत्र विशेष की आर्थिक समृद्धि हो सके, कभी किसी क्षेत्र व इसके भाषा गुट में समानता होती है। कभी किसी क्षेत्र में दो या तीन भाषाओं के गुट होते हैं। इसलिये हमें इस एकभाषीय या द्विभाषीय राज्य की बात को ज्यादा तूल नहीं देनी चाहिये। हमें केवल यह पता लगाना चाहिये कि संसद से स्वीकृत कोई व्यवस्था उनके हितों के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती है कि नहीं।

इस मानदण्ड के आधार पर मुझे विश्वास है—और मैं अधिकारपूर्वक कह सकता हूं—कि नये मुम्बई राज्य के बारे में जो व्यवस्था की गई है वह राज्य के सभी भागों तथा वर्गों के हितों के लिये उपयोगी सिद्ध होगी। यह जानते हुए ही मैंने आयोग को यह सुझाव दिया था कि भारत में द्विभाषीय राज्य की कम से कम एक अच्छी मिसाल होनी चाहिये।

मैंने संक्षेप में इस पृष्ठभूमि का उल्लेख करना आवश्यक समझा क्योंकि श्री एच० एन० मुखर्जी ने मेरे विचारों का उल्लेख किया है। मेरे विचार प्रदक्षिणा जैसे हैं और मैं वहीं आ पहुंचा हूं जहां से मैं चला था।

लोगों की प्रतिक्रिया मुझ तक पहुंचाई गई है। हाल की घटनाओं के कारण बहुत से लोग मुझे तार व पत्र लिखते रहे हैं। मुझ पर तारों की बौछार हो गई है। साधारणतया मुझे लगता है कि इस बम्बई के नये द्विभाषीय राज्य के प्रति अच्छी प्रतिक्रिया हुई है, यह सच है कि महाराष्ट्र और गुजरात में कुछ अल्पसंख्यक हैं और मुझे पूरा विश्वास है कि यह अल्पसंख्यक ही हैं—जो कि कुछ भयभीत व संकोची हैं, लेकिन मेरे विचार में अल्पसंख्यकों की शंकाएं और असंतुष्टियां एक दूसरे को निष्प्रभावी करती हैं।

मैं समझता हूं कि ऐसा समाधान जो किसी एक दल या भाग के लोगों के लिये विजय सूचक हो अच्छा समाधान नहीं है। हां, मेरे विचार में, जब आशाएं पूरी होती दिखें, उस समय थोड़ी सी उदारता दिखाना बुद्धिमता का काम है और किसी गुट-विशेष के हितों की सुरक्षा किसी व्यवस्था की सफलता का सिद्धांत नहीं हो सकती, राष्ट्रीय हित को बढ़ावा देना उतना ही महत्वपूर्ण होना चाहिए और एक उचित समाधान वह है जो दोनों तरह के हितों में सामंजस्य स्थापित करे। मुझे संतोष है कि संसद द्वारा स्वीकृत द्विभाषीय बम्बई एक ऐसा ही समाधान है। अब बम्बई शहर सभी के लिये अपने दरवाजे खोल सकता है जैसा कि यह पहले भी करता आया है और हमें फिर कभी इसके विभाजन के बारे में नहीं सोचना चाहिये तभी, केवल बम्बई ही नहीं अपितु भारत के सभी शहर जनसंख्या प्रतिशत इत्यादि की चिन्ता किये बिना वास्तव में भारत के होंगे और वे किसी क्षेत्र विशेष के नहीं कहलाये जा सकेंगे। भूगोल निश्चय ही सरकार के साधन निर्धारित करेगी लेकिन सभी सरकारों को स्थानीय व राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा निश्चित करनी चाहिए।

मुझे विश्वास है कि यदि सभी साझेदार साझेदारी को बनाने न कि बिगाड़ने* के नियमों का अध्ययन करेंगे तो यह साझेदारी जरूर सफल होगी।

---

* विधेयक संशोधित रूप में पारित किया गया।

परिशिष्ट

डा० सी० डी० देशमुखः कालानुक्रम

1896 (14 जनवरी)	जन्म
1917	बी०ए० (कैम्ब्रिज)
1919	यू०के० वकालत परीक्षा
1919	भारतीय सिविल सेवा में प्रवेश
1932	आजीवन सदस्य और सदस्य, सलाहकार समिति, बम्बई नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटी।
1932	सदस्य, लेजिस्लेटिव काउंसिल, सेंट्रल प्रोविंस और बेरेर, 1937 तक
1941	भारतीय सिविल सेवा से त्यागपत्र
1943	कालीदास का मेघदूतम—एक अनुवाद*
1943	डिप्टी गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक, 1949 तक
1944	वर्ल्ड मोनेटरी कांफ्रेंस, ब्रेटन वुड, में भारत के प्रतिनिधि।
1946	अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक में 1956 तक भारत के लिए गवर्नर
1946	प्रेजिडेंट, भारतीय सांख्यकीय संस्थान, 1964 तक।
1949	यूरोप और अमरीका में 1950 तक भारत के वित्तीय प्रतिनिधि।
1950	सदस्य, योजना आयोग।
1950	चेयरमैन, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक, ससद सदस्य, 1956 तक केन्द्रीय वित्त मंत्री।
1950	1956 तक योजना आयोग के पदेन सदस्य

*व्याख्यान, भाषण और पुस्तकें, डा० सी० डी० देशमुख द्वारा लिखे गये हैं।

1956 1960 तक चेयरमैन, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग।

1957 **गांधी सूक्ति मुक्तावली:** मौलिक संस्कृत श्लोकों में महात्मा गांधी की चुनींदा उक्तियां।*

1957 कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा डी०एस०सी० की मानद उपाधि से सम्मानित, अन्नामलाई विश्वविद्यालय द्वारा डाक्टर आफ लैटर्स की मानद उपाधि से सम्मानित।

1957 चेयरमैन, नेशनल बुक ट्रस्ट 1960 तक।

1959 नागपुर और पंजाब विश्वविद्यालयों द्वारा डी० लिट्० की मानद उपाधि से सम्मानित।

1959 उत्कृष्ट सरकारी सेवा के लिए रेमन मेगासेसे पुरस्कार।

1959 **सिटिजैन्स आफ नो मीन कन्ट्री:** सेवानिवृत्त माननीय श्रीनिवास शास्त्री संस्करण व्याख्यान*

1959 **इन दि पोर्टल्स आफ इंडियन यूनिवर्सिटीज:** दीक्षान्त समारोह और अन्य भाषण।

1959 संस्थापक आजीवन प्रेजिडेंट, इंडिया इन्टरनेशनल सेन्टर, नई दिल्ली।

1960 चेयरमैन, एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कालेज आफ इंडिया, हैदराबाद।

1960 वाइस-प्रेजिडेंट, इंडियन काउंसिल फार कल्चरल रिलेशन्स 1967 तक।

1962 **प्रि-रिक्विजिट्स आफ डेवलपमेंट इन अन्डरडेवलप्ड कन्ट्रीज:** नागपुर विश्वविद्यालय में दिये गये किन खेड़े संस्मरण के तीन व्याख्यानों की श्रंखलाओं का पुनर्मुद्रण।*

1962 1967 तक कुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय।

1963 'इनर टैम्पल' के सदस्य के रूप में 'बार' में आमंत्रित।

1963 प्रिंसटेन विश्वविद्यालय, न्यू जर्सी, यू०एस०ए० और लीसेस्टर, यू०के० द्वारा डाक्टर्स ऑफ लॉज़ की मानद उपाधि से सम्मानित।

1963 भारतीय सांख्यकीय संस्थान, कलकत्ता और कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ द्वारा डी०एस०सी० की मानद उपाधि से सम्मानित।

1963 **जान मथाई मैमोरियल लैक्चर्स,** केरल विश्वविद्यालय*

1964 **कामनवैल्थ एज इंडिया सीज इट**—मई 1963, में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय* में दिया गया स्मट्स संस्मरण व्याख्यान।

1964 चेयरमैन, इंडियन इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन।

---

*व्याख्यान, भाषण और पुस्तकें, डा० सी० डी० देशमुख द्वारा लिखे गये हैं।

1965 **परस्पेक्टिव प्लानिंग एंड एज्यूकेशन फार इकानोमिक एंड सोशियल डेवलपमेंट।***

1968 **संस्कृत-काव्य-मलिका:** संस्कृत कविताओं का संग्रह।*

1970 **फ्री बैंट फेटर्ड: दि इलिट्रेट सिटिजन**
(बम्बई: फोरम आफ फ्री इन्टरप्राइज)।*

1970 **सोसियल चेन्ज इन इंडिया**
(बंगलौर: गोखले इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक अफेयर्स) ।*

1970 1982 तक प्रेजिडेंट, भारतीय जनसंख्या परिषद्।

1972 **रिफलैक्शन्स ऑन फाइनेंस एज्यूकेशन एंड सोसाइटी**
(दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास)।*

1972 **आसपेक्ट आफ डेवलपमेंट**—भारत में राजनैतिक और आर्थिक घटनाओं का विश्लेषण।*

1972 **हिन्दुस्तानी: राष्ट्रभाषा और लिंगुआ फ्रेंका**
(बम्बई; महात्मा गांधी मैमोरियल रिसर्च सेंटर)।*

1972 **यूनिवर्सिटी आफ पूना कन्वोकेशन एड्रैस।***

1973 दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा डाक्टर आफ लैटर की मानद उपाधि से सम्मानित, पूना विश्वविद्यालय और गुरु नानक विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट् की मानद उपाधि से सम्मानित।

1974 **दि कोर्स आफ माई लाइफ:**
आटोबायग्राफी।*

1976 **भगवद्गीता:** कामैंट्री।*

1977 **धम्मपद:** बुद्ध के सिद्धांतों का अध्ययन।*

1981 **अमरकोस:** जम्स फ्राम दि ट्रीजर हाउस आफ संस्कृत वर्डस।*

1982 मृत्यु।

(2 अक्टूबर)

---

*व्याख्यान, भाषण और पुस्तकें, डा० सी० डी० देशमुख द्वारा लिखे गये हैं।

सुविख्यात सांसद मोनोग्राफ सीरीज
डा0 चिन्तामणि द्वारकानाथ देशमुख
का
शुद्धि पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	के स्थान पर	पढ़िये
3	24	यह	वह
16	नीचे से 4	"मिक्षरा"	"मिताक्षरा"
	नीचे से 3	"दयाभागा"	"दायभाग"
21	10	अगर इसलिए	और
88	नीचे से 7	प्रकाम्प	परकाम्य
110	21	सांवधिक	सावधिक
167	8	मठोक	मोठक
171	2	अतः	अंतर
173	6	प्रति	प्रांत
199	7	"अकालकोट"	"अकालकोट"
201	14	"मूल अंग्रेजी में" शब्द हटाए	